THE

HISTORY OF RAJPUTANA

VOLUME III

PART I

राजपूताने का इतिहास

जिल्द तीसरी

भाग पहला

THE

HISTORY OF RAJPUTANA

VOL. III. PART I.

History of the Dungarpur State.

BY

MAHĀMAHOPĀDHYĀYA RĀI BAHĀDUR,

Gaurishankar Hirachand Ojha

PRINTED AT THE VEDIC YANTRALAYA,

AJMER.

First Edition. } 1936 A. D. { Price Rs. 5/
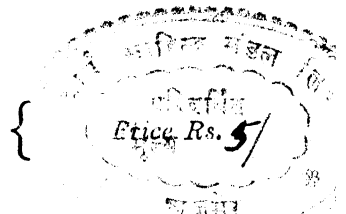
राजपूताने का इतिहास

जिल्द तीसरी

भाग पहला

डूंगरपुर राज्य का इतिहास

ग्रन्थकर्त्ता

महामहोपाध्याय

रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा

मुद्रक

वैदिक-यन्त्रालय, अजमेर
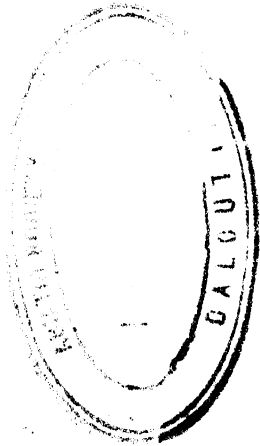
प्रथम संस्करण } विक्रम संवत् १९९३ { मूल्य ५)

महारावल विजयसिंह

आर्य संस्कृति के परम उपासक

गुहिलवंशभूषण

विद्यानुरागी

महारावल विजयसिंह

की

पवित्र स्मृति को

सादर समर्पित

भूमिका

संसार के साहित्य में इतिहास का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। इसके द्वारा ही हमें किसी देश अथवा जाति की भूतकालीन प्रगति का ज्ञान होता है। यही नहीं इतिहास भूत का ज्ञान कराकर वर्तमान का निर्माण और भविष्य का निर्देश करता है। वस्तुतः इतिहास किसी भी देश अथवा जाति के जीवित होने का सूचक है। वैसे तो भूमंडल की हर एक जाति का अपना इतिहास रहा है, पर जो जाति उन्नति की ओर जितना अधिक प्रगतिशील रही है, उसका इतिहास भी उतना ही अधिक पूर्ण पाया जाता है। यदि किसी देश अथवा जाति का इतिहास न हो तो यही समझना चाहिये कि उसका अस्तित्व लुप्तप्राय ही है।

भारतवर्ष बड़े प्राचीन काल से ही संसार में सभ्यता और इतिहास का केन्द्र रहा है। उसमें भी राजपूताने का स्थान बड़े महत्व का है। यहां का कोई अंश ऐसा नहीं जो शोणित-धारा से न सींचा गया हो। मरहटाकाल तक यहां लड़ाइयों का दौर-दौरा बना रहा। ऐसी दशा में यहां के वास्तविक प्राचीन इतिहास का सुरक्षित रहना नितान्त कठिन था। विजेताओं-द्वारा नाश किये जाने तथा यहां के निवासियों में इतिहास-संरक्षण-प्रेम की कमी होने एवं उनके अज्ञान के कारण, बहुतसी इतिहासोपयोगी सामग्री नष्ट हो गई, परन्तु सौभाग्यवश जो कुछ बच गई, वह विद्वानों के परिश्रम के फलस्वरूप शनैः शनैः उपलब्ध होती जा रही है।

अंग्रेज़ सरकार के साथ संधि स्थापित होने के पश्चात् इधर आनेवाले अंग्रेज़ अफ़सरों के विद्यानुराग के कारण यहां के निवासियों में भी इतिहास-प्रेम का अंकुर उत्पन्न हुआ, जैसा कि 'राजपूताने के इतिहास' की पहली जिल्द की भूमिका में लिखा जा चुका है। आज राजपूताने के इतिहास पर जितना

प्रकाश पड़ रहा है, उसका सारा श्रेय कर्नल टॉड को है, जिसने एक सौ से अधिक वर्ष पूर्व राजपूत जाति की वीरता पर मुग्ध होकर छत्तीस राजवंशों के संक्षिप्त इतिहास के अतिरिक्त, उदयपुर, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, आंबेर (जयपुर, शेखावाटी सहित), बूंदी और कोटा राज्यों का अंग्रेज़ी भाषा में बृहत् इतिहास लिखकर साक्षर वर्ग में उपस्थित किया। पुरातत्वानुसंधान से अनुराग होने के कारण उक्त विद्वान् ने बड़े परिश्रम से कई प्रशस्तियां, सिक्के और प्राचीन पुस्तकें भी खोज निकालीं, परन्तु प्राचीन लिपियों का ठीक-ठीक ज्ञान न होने के कारण उनके पढ़ने में कई स्थलों पर भूलें रह गईं। पुराण, महाभारत, अलग-अलग राज्यों-द्वारा दिये हुए वहां के इतिहास, उस समय तक छपे हुए कुछ फ़ारसी इतिहास-ग्रन्थों के अंग्रेज़ी अनुवाद, भाटों की ख्यातों तथा जनश्रुतियों आदि के आधार पर ही उसे अपना इतिहास तैयार करना पड़ा, क्योंकि उस समय तक राजपूताने में शोध का श्रीगणेश ही हुआ था।

इसी समय के आसपास इंग्लैंड की राजधानी लन्दन में 'रॉयल एशियाटिक सोसाइटी' नामक संस्था का जन्म हुआ और उसकी शाखाएं भारत में कलकत्ता तथा बम्बई में भी स्थापित हुईं, जिनके द्वारा पुरातत्वानुसंधान के कार्य में विशेष सहायता मिली। फिर तो अंग्रेज़ सरकार ने भी भारत में पुरातत्वान्वेषण का कार्य आरंभ किया, जिसका यहां के विद्वानों पर भी प्रभाव पड़ा और वे इस कार्य में आगे बढ़े, जिससे धीरे-धीरे इतिहासोपयोगी सामग्री—शिलालेख, दानपत्र, सिक्के, संस्कृत, फ़ारसी तथा भाषा की प्राचीन पुस्तकें आदि—प्रकाश में आने लगी।

ई० स० की उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से भारत के देशी नरेशों का ध्यान भी इस ओर आकर्षित हुआ और 'वीरविनोद', 'वकाये राजपूताना', 'इतिहास राजस्थान' आदि के अतिरिक्त ख्यातों आदि के आधार पर राजपूताने के जोधपुर, बीकानेर आदि कुछ राज्यों के इतिहास लिखे गये, परन्तु उनके एक पक्षीय होने के कारण उनसे वास्तविक बातों पर बहुत कम प्रकाश पड़ा।

इतिहास-सम्बन्धी शोध को पूर्ण स्थान देते हुए और भ्रान्ति-मूलक बातों का निराकरण करते हुए मैंने वि० सं० १९८१ से राजपूताने का इतिहास लिखना और खण्डशः प्रकाशित करना आरंभ किया। वर्तमान पुस्तक उक्त इतिहास की तीसरी जिल्द का पहला भाग है, जिसमें डूंगरपुर राज्य का इतिहास प्रकाशित किया जा रहा है। पहले चार चार सौ पृष्ठों का एक-एक खण्ड प्रकाशित किया जाता था, परन्तु उसमें ग्राहकों को असुविधा होने की शिकायतें आईं और मेरे कई विद्वान् मित्रों ने भी यही सम्मति दी कि राजपूताने का इतिहास भविष्य में खण्ड (fasciculus) रूप में न निकाला जाकर यदि प्रत्येक राज्य का इतिहास एक या अधिक स्वतंत्र जिल्दों में निकाला जाय और प्रत्येक भाग के अंत में अनुक्रमणिका रहे तो पाठकों को विशेष सुभीता रहेगा। उसी के अनुसार यह परिवर्तन किया गया है, जिसको आशा है पाठकगण भी पसन्द करेंगे।

डूंगरपुर राज्य राजपूताने के उस भाग में है, जहां भीलों की बस्ती से परिपूर्ण पहाड़ियां अधिक हैं। अंग्रेज़ सरकार के साथ संधि स्थापित होने के पूर्व वहां कोई अंग्रेज़ विद्वान् नहीं गया था। वागड़ की सीमा मालवे से मिली हुई है, इसलिए अंग्रेज़ सरकार से डूंगरपुर और बांसवाड़ा राज्यों की सन्धि मालवे के रेज़िडेन्ट कर्नल मालकम के द्वारा हुई थी। उसने अपनी 'मेमॉयर्स ऑव् सेन्ट्रल इण्डिया' नामक पुस्तक में डूंगरपुर और बांसवाड़ा राज्यों के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, वह नहीं के समान ही है। कर्नल टॉड को मेवाड़ में रहते समय इतना अवकाश न मिल सका कि वह वहां के दक्षिणी पहाड़ी प्रदेश अर्थात् डूंगरपुर की ओर जाकर उस प्रान्त का निरीक्षण कर उसके सम्बन्ध में कुछ लिखता। इसके अनन्तर ई० स० १८७९ में 'राजपूताना गैज़ेटियर' लिखा गया और फिर 'वक़ाये राजपूताना', 'वीरविनोद', चारण रामनाथ रत्नू रचित 'इतिहास राजस्थान', 'इम्पीरियल गैज़ेटियर', 'ट्रीटीज़ एंगेजमेंट्स एंड सनदज़', 'हिन्द राजस्थान' आदि पुस्तकें प्रकाशित हुईं, जिनमें डूंगरपुर राज्य का कुछ-कुछ वर्णन है।

उदयपुर में रहते समय मुझे दो-तीन बार डूंगरपुर तथा बांसवाड़ा राज्यों में जाने का अवसर मिला, जहां मैंने वागड़ के परमारों की राजधानी अर्थूणा के ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी के लेखों की नक़लें लीं, किन्तु अन्य प्राचीन स्थानों, देवमन्दिरों आदि को भलीभांति देखने और खोज करने का अवसर न मिला। अजमेर आने के पश्चात् मुझे कई बार डूंगरपुर राज्य का दौरा करने का अवसर मिला, जिसमें मैंने वहां के लगभग सभी प्राचीन स्थानों को देखा। वहां से लगभग तीन सौ शिलालेख और दानपत्र मिले हैं। बांसवाड़ा राज्य के सरवाणिया गांव से क्षत्रपों के २३९३ सिक्के और अन्य कई स्थानों से वंशावलियां आदि प्राप्त हुई। इनमें से कुछ डूंगरपुर राज्य के इतिहास के लिए उपयोगी हैं, जिनका मैंने यथाप्रसङ्ग उल्लेख किया है। जिस समय राजपूताने में गुजरात के सोलंकियों और अजमेर के चौहानों का प्रभुत्व था उस समय अर्थात् आज से ७६० वर्षों से वागड़ पर गुहिलवंशियों का राज्य चला आ रहा है। उन्होंने मेवाड़ से वागड़ में जाकर नवीन राज्य स्थापित किया था।

भाटों को यह तो ज्ञात था कि गुहिलवंश में उदयपुर के राजवंश की शाखा छोटी और डूंगरपुर की बड़ी है, परन्तु उन्होंने समरसिंह के पीछे रत्नसिंह और उसके पीछे कर्णसिंह तथा उसके पुत्रों—माहप एवं राहप—के नाम देकर माहप को डूंगरपुर राज्य का संस्थापक मान लिया। इस हिसाब से माहप-राहप का समय चौदहवीं शताब्दी के अन्त के आसपास पड़ता है, जो कपोलकल्पना मात्र है और शिलालेखों के विरुद्ध है। उनका यह लिखना तो ठीक है कि कर्णसिंह के पुत्र माहप और राहप हुए, परन्तु कर्णसिंह, जिसको रणसिंह भी कहते थे, रत्नसिंह के पीछे नहीं, किन्तु उससे नौ पुश्त पहले हुआ था। कर्णसिंह (रणसिंह) का पुत्र क्षेमसिंह था, जिसके वंशज मेवाड़ के स्वामी रहे और उसके भाइयों—माहप तथा राहप—को सीसोदा जागीर में मिला, जिससे उनके वंशज सीसोदिया कहलाये। क्षेमसिंह के दो पुत्र—सामंतसिंह और कुमारसिंह—थे, जिनमें से सामंतसिंह पहले मेवाड़ का स्वामी रहा, परन्तु गुजरात के सोलंकी

राजा अजयपाल को युद्ध में सख्त घायल करने के कारण गुजरातवालों ने मेवाड़ पर चढ़ाई कर वहां अधिकार कर लिया, जिससे सामन्तसिंह ने वागड़ में जाकर नया राज्य स्थापित किया। वहां उसका वि० सं० १२३६ का शिलालेख मिला है, जिससे सिद्ध है कि डूंगरपुर राज्य का संस्थापक सामंतसिंह था, न कि माहप।

सामन्तसिंह के वंशजों ने दूसरे राज्यों की भूमि दबाकर अपने राज्य को बढ़ाने की अपेक्षा विजित भूमि पर ही अपना अधिकार दृढ़ करने का उद्योग किया, जिससे वे राज्य का विस्तार अधिक न कर सके। वागड़ की रक्षा के लिए उन्हें समय समय पर गुजरात और मालवा के सुलतानों तथा दिल्ली के मुग़ल बादशाहों, मेवाड़ के महाराणाओं और मरहटों एवं सिंधियों से युद्ध करना पड़ा, जिसमें कई बार राजधानी हाथ से निकल गई और उसपर दूसरों का अधिकार हो गया। ऐसी अवस्था में संभवतः वहां के इतिहास की बहुतसी उपयोगी सामग्री नष्ट हो गई, जिससे वहां का क्रमबद्ध इतिहास नहीं मिलता। प्राचीनता की दृष्टि से राजपूताने के अन्य राज्यों की अपेक्षा डूंगरपुर राज्य का महत्व कम नहीं है। सुदीर्घ काल से उस विजित प्रदेश पर, जहां अपने बाहुबल से सामंतसिंह ने अधिकार किया था, उसके वंश का राज्य अब तक विद्यमान है। इतने प्राचीन राज्य का इतिहास लिखने के लिए प्रचुर सामग्री का प्राप्त होना नितांत आवश्यक था, अतः मैंने वहां की सामग्री एकत्र करना आरंभ किया। इस सामग्री के निम्नांकित विभाग किये जा सकते हैं—

(१) शिलालेख, दानपत्र और सिक्के।

(२) बहुधा भाटों तथा राणीमंगों की ख्यातें और प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकें।

(३) मुसलमानों के लिखे हुए इतिहास, जिनमें डूंगरपुर राज्य सम्बन्धी उल्लेख हैं।

(४) राजकर्मचारियों के यहां के संग्रह और वंशावलियां।

(५) राजकीय पत्रव्यवहार और सनदें।

(६) उन्नीसवीं शताब्दी में लिखे हुए विद्वानों के इतिहास, जिनमें डूंगरपुर राज्य का वृत्तान्त है ।

उपर्युक्त सामग्री में से डूंगरपुर राज्य से प्राप्त शिलालेख और दान-पत्र वहां के इतिहास पर काफ़ी प्रकाश डालते हैं। डूंगरपुर राज्य के निवासियों को इतिहास संरक्षण का विशेष अनुराग था, जिससे वहां अनेक शिलालेख और ताम्रपत्र प्राप्त हुए । इनमें से कुछ तो अत्यन्त सुन्दर लिपि में लिखे हुए हैं और किसी किसी में वंशावलियां भी दी हैं । वहां के प्रायः सभी बड़े-बड़े मंदिरों और बावड़ियों में सुन्दर प्रशस्तियां लगी हैं, जिनसे जान पड़ता है कि डूंगरपुर के नरेशों, राणियों तथा वहां की प्रजा को लोकोपयोगी कार्यों से विशेष अनुराग था। इससे यह भी ज्ञात होता है कि यह राज्य पहले वैभव-सम्पन्न था और यहां के निवासियों में उच्च कोटि की धार्मिक भावनाएं थीं ।

ख्यातों में मिलनेवाली कथाएं कुछ अंशों में सत्यता की कसौटी पर ठीक नहीं जंचती । इसका राजपूताने के इतिहास की प्रथम जिल्द की भूमिका में बहुत-कुछ विवेचन किया जा चुका है । डूंगरपुर राज्य की—बड़वे और राणीमंगे की—ख्यातें भी अधिकांश कल्पित बातों से भरी हैं और उनमें लिखे हुए राणियों के कुछ नाम तथा संवत् शिलालेख से मेल नहीं खाते । वहां से केवल इनी-गिनी हस्तलिखित ऐतिहासिक पुस्तकें मिली हैं। डूंगरपुर राज्य से वहां के वृत्तान्त की बहियां, वंशावलियां, पत्र और सनदें बहुत कम मिली हैं, क्योंकि शत्रुओं के आक्रमणों के समय बहुतसी ऐतिहासिक सामग्री नष्ट हो गई । जो कुछ बची वह पुराने राजकर्मचारियों के यहां दबी हुई है, जिसे दिखलाने में भी वे डरते हैं कि कहीं इसी बहाने राज्य उनके घर न सम्हाल ले । यह सब होते हुए भी जो कुछ सामग्री उपलब्ध हुई वह उपयोगी है और उससे डूंगरपुर राज्य का इतिहास लिखने में बहुत सहायता मिली है ।

उपर्युक्त सब साधनों को ध्यान में रखते हुए मैंने डूंगरपुर राज्य के इतिहास की रचना की है, जो मैं समझता हूं कि पाठकों को रुचि-प्रद

होगी। इसमें विवादास्पद विषयों की विवेचना की गई है और जहां मतभेद हुआ, वहां यथोचित स्पष्टीकरण भी किया गया है । मैं यह मानता हूं कि अभी डूंगरपुर का यह इतिहास अपूर्ण ही है, क्योंकि शोध के इस युग में अभी कितने ही नवीन ऐतिहासिक इतिवृत्त ज्ञात होने की संभावना है, जिनसे बहुतसे अंधकारग्रस्त विषयों पर प्रकाश पड़ेगा; फिर भी मेरी यह आशा व्यर्थ न होगी कि उस समय मेरा यह इतिहास भावी इतिहासकारों का पथ-प्रदर्शक बनेगा।

साधारण कोटि के लोग इतिहास के वास्तविक महत्व से अपरिचित होने के कारण अत्युक्तिपूर्ण किंवदंतियों, ख्यातों और काव्यों में लिखित प्रशंसात्मक वर्णनों को ही इतिहास का सच्चा साधन मान लेते हैं। अतः उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन अपेक्षित है। सच्चे इतिहासवेत्ता का यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि वह प्रत्येक बात पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करे और अनुसंधान की कसौटी पर जो बात ठीक जंचे, उसे ही अपने इतिहास में स्थान दे। अतिशयोक्तिपूर्ण और जातीय-पक्षपात-सूचक बातों पर विश्वास करना उचित नहीं। खोज से जो नवीन बातें ज्ञात हों उन्हें स्थान देकर परस्पर विरोधी मतों का निर्देश करते हुए उचित एवं युक्ति-संगत पक्ष को ग्रहण करना ही उचित है । मैंने भी अपने इतिहास में इसी नीति का अवलम्बन किया है।

पिछले दस वर्षों से मेरी नेत्र-शक्ति मंद हो गई है और वृद्धावस्था भी अपना प्रभाव बतला रही है, इसलिए मातृभाषा हिन्दी की मैं विशेष सेवा नहीं कर सका हूं। फिर भी मुझ से जो कुछ बन सका वह पाठकों को भेंट है । अब तक डूंगरपुर राज्य का शोधपूर्ण कोई इतिहास नहीं लिखा गया था, इसलिए प्राचीन शिलालेखों आदि के आधार पर सर्वप्रथम मैंने ही वहां का इतिहास लिखने का प्रयास किया है। यद्यपि डूंगरपुर राज्य का इतिहास भी वीर-गाथाओं से ओत-प्रोत है, परन्तु अब तक वह अन्धकार के आवरण में ही छिपा रहा। मुझे विश्वास है कि इस इतिहास से डूंगरपुर राज्य का प्राचीन गौरव अवश्य प्रकाश में आयेगा।

भूल मनुष्यमात्र से होती है और मैं भी उसके लिए अपवाद नहीं हूं। आशा है सुयोग्य पाठक त्रुटियों के लिए मुझे क्षमा प्रदान करेंगे। यदि वे सप्रमाण परामर्श भेजेंगे तो उनके सारासार का निर्णयकर ग्रन्थ के द्वितीय संस्करण में सहर्ष यथावश्यक संशोधन कर दिया जायगा। कुछ स्थलों पर लेखक-दोष से साधारणसी त्रुटियां रह गई हैं, जिनके लिए पुस्तक के अंत में शुद्धि पत्र लगा दिया गया है। पुस्तक पढ़ने के पूर्व पाठक उसे देखकर संशोधन कर लें।

मैं उन ग्रन्थकर्ताओं का, जिनके ग्रन्थों की नामावली अन्त में दी गई है और जिनसे सहायता ली गई है, अत्यन्त अनुगृहीत हूं। इस इतिहास की प्रेसकापी का संशोधन करने में मेरे चिरंजीव पुत्र प्रोफ़ेसर रामेश्वर ओझा, एम० ए०, ने योग दिया है और मैटर छांटने, प्रेसकापी करने, प्रूफ़ पढ़ने आदि में मेरे निजी इतिहास विभाग के कार्यकर्ता पं० किशनलाल दुबे, चिरंजीलाल व्यास तथा नाथूलाल व्यास ने तत्परता से काम किया है। इसी प्रकार डूंगरपुर राज्य के शिलालेखों तथा ताम्रपत्रों को छापने में डूंगरपुर निवासी कालूराम निहालचन्द जोशी ने कुशलता दिखलाई है, जिसका यहां उल्लेख करना मैं आवश्यक समझता हूं।

अजमेर
विजयादशमी
वि० सं० १९९३

गौरीशंकर हीराचंद ओझा.

विषय-सूची

डूंगरपुर राज्य का इतिहास

पहला अध्याय

भूगोल-सम्बन्धी वर्णन

दूसरा अध्याय

वागड़ के प्राचीन राजवंश

(गुहिलवंश के अधिकार से पूर्व)

तीसरा अध्याय

चौथा अध्याय

पांचवां अध्याय

महारावल जयतसिंह से प्रतापसिंह तक

छठा अध्याय

महारावल गोपीनाथ से उदयसिंह (प्रथम) तक

सातवां अध्याय

महारावल पृथ्वीराज से महारावल कर्म्मसिंह (दूसरे) तक

विषय	पृष्ठांक

आठवां अध्याय

महारावल पुंजराज से महारावल शिवसिंह तक

नवां अध्याय

महारावल वैरिशाल से महारावल जसवन्तसिंह (दूसरे) तक

दसवां अध्याय

महारावल उदयसिंह (दूसरा) से वर्तमान समय तक

विषय	पृष्ठांक

ग्यारहवां अध्याय

परिशिष्ट

चित्रसूची

ग्रन्थकर्त्ता-द्वारा रचित तथा संपादित ग्रन्थ आदि—

स्वतंत्र रचनाएं—		मूल्य
(१) प्राचीन लिपिमाला (प्रथम संस्करण)		अप्राप्य
(२) भारतीय प्राचीन लिपिमाला (द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण)	...	रु० ४०)
(३) सोलंकियों का प्राचीन इतिहास-प्रथम भाग	...	अप्राप्य
(४) सिरोही राज्य का इतिहास	...	अप्राप्य
(५) बापा रावल का सोने का सिक्का	...	॥)
(६) वीरशिरोमणि महाराणा प्रतापसिंह	...	॥=)
(७) * मध्यकालीन भारतीय संस्कृति	...	रु० ३)
(८) राजपूताने का इतिहास—पहला खंड (दूसरा संस्करण)	...	प्रेस में
(९) राजपूताने का इतिहास—दूसरा खंड	...	अप्राप्य
(१०) राजपूताने का इतिहास—तीसरा खंड	...	रु० ६)
(११) राजपूताने का इतिहास—चौथा खंड	...	रु० ६)
(१२) राजपूताने का इतिहास—पांचवां खंड (डूंगरपुर राज्य का इतिहास)	...	रु० ४)
(१३) उदयपुर राज्य का इतिहास—पहली जिल्द	...	अप्राप्य
(१४) उदयपुर राज्य का इतिहास—दूसरी जिल्द	...	रु० ११)
(१५) † भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की सामग्री	...	॥)
(१६) ‡ कर्नल जेम्स टॉड का जीवनचरित्र	...	।)
(१७) ‡ राजस्थान—ऐतिहासिक—दन्तकथा, प्रथम भाग ('एक राजस्थान निवासी' नाम से प्रकाशित)	...	अप्राप्य
(१८) × नागरी अंक और अक्षर	...	"

---

* हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग-द्वारा प्रकाशित । इसका उर्दू अनुवाद भी उक्त संस्था ने प्रकाशित किया है । गुजरात वर्नाक्यूलर सोसाइटी (अहमदाबाद) ने भी इस पुस्तक का गुजराती अनुवाद प्रकाशित किया है, जो वहां से १) रुपये में मिलता है ।

† काशी नागरीप्रचारिणी सभा-द्वारा प्रकाशित ।

‡ खड्गविलास प्रेस बांकीपुर से प्राप्य ।

× हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग-द्वारा प्रकाशित ।

सम्पादित—

मूल्य

(१६) * अशोक की धर्मलिपियां—पहला खंड
(प्रधान शिलाभिलेख) ... ... रु० ३)

(२०) * सुलैमान सौदागर ... ... „ १।)

(२१) * प्राचीन मुद्रा ... ... „ ३)

(२२) * नागरी प्रचारिणी पत्रिका (त्रैमासिक) नवीन संस्करण
भाग १ से १२ तक, प्रत्येक भाग „ १०)

(२३) * कोशोत्सव स्मारक संग्रह ... ... „ ३)

(२४-२५) ‡ हिन्दी टॉड राजस्थान—पहला और दूसरा खंड
(इनमें विस्तृत सम्पादकीय टिप्पणियों-द्वारा टॉडकृत 'राजस्थान' की अनेक ऐतिहासिक त्रुटियां शुद्ध की गई हैं)।

(२६) जयानक-प्रणीत 'पृथ्वीराज-विजय-महाकाव्य' सटीक ... (प्रेस में)

(२७) जयसोम रचित 'कर्मचंद्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' ... (प्रेस में)

(२८) * मुहणोत नैणसी की ख्यात—दूसरा भाग ... ... रु० ४)

(२९) गद्य-रत्न-माला (हिन्दी)—संकलन ... ... रु० १।)

(३०) पद्य-रत्न-माला „ — „ ... ... रु० ।।।)

* काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा—द्वारा प्रकाशित।

‡ खड्गविलास प्रेस (बांकीपुर) द्वारा प्रकाशित।

——:o:——

ग्रन्थकर्ता—द्वारा रचित पुस्तकें 'व्यास एण्ड सन्स', अजमेर के यहां मिलती हैं।

राजपूताने का इतिहास

तीसरी जिल्द

डूंगरपुर राज्य का इतिहास

पहला अध्याय

भूगोल-सम्बन्धी वर्णन

डूंगरपुर राज्य का पुराना नाम 'वागड़' है, जो गुजराती भाषा के 'वगडा' शब्द से मिलता हुआ है। उसका अर्थ 'जङ्गल' (कम आबादीवाला प्रदेश) होता है[1]। कतिपय संस्कृत के विद्वानों ने 'वागड़' को संस्कृत के ढांचे में ढालने का प्रयत्न कर उसको 'वाग्वर[2]', 'वैयागड[3]', वागट[4]'

---

(१) बीकानेर राज्य का कितना एक हिस्सा और कच्छ का एक भाग भी वागड़ कहलाता है, जिसका कारण भी यही है जो ऊपर बतलाया गया है।

(२) संवत् १५७१ वर्षे कार्तिकवदी(दि) २ शनौ वाग्वरदेशे राजाधिराजराउलश्रीउदयसिंहविजयराज्ये नूतनपुरे..................

बांसवाड़ा राज्य के नौगावां गांव के जैनमन्दिर की प्रशस्ति।

(३) स्वस्ति श्रीनृपविक्रमार्कसमयातीतसंवत् १५९३ वर्षे वैशाखवदि १ गुरौ अनुराधानक्षत्रे शिवनामयोग(गे) वैयागडदेशे राजश्रीराउल जगमालजीविजयराज्ये..................

बांसवाड़ा राज्य के चींच गांव की ब्रह्मा की वर्तमान मूर्ति पर का लेख।

(४) जयति श्रीवागटसंघः।

राजपूताना म्यूज़िअम् की एक जैन-मूर्ति का वि० सं० १०५१ का लेख।

या 'वार्गट[१]' और प्राकृत के विद्वानों ने उसका प्राकृत रूप 'वग्गड़[२]' बनाया है, परन्तु अधिकतर शिलालेखों और ताम्रपत्रों में 'वागड़[३]' शब्द का ही प्रयोग मिलता है।

---

(१) वार्गटिकान्वयोद्भूतसद्विप्रकुलसंभवः [॥ ३० ॥]

विं० सं० १०३० आषाढ़सुदि १५ की शेखावाटी के हर्षनाथ के मंदिर की प्रशस्ति; ए० इं०; जि० २, पृ० १२२।

(२) तओ हम्मीरजुवराओ वग्गडदेसं मुहडासयाइं नयराणि य भंजिय आसावल्लीए पत्तो। कएणदेवराओ अ नट्ठो ॥

जिनप्रभसूरि; 'तीर्थकल्प', पृ० ६४, कलकत्ता संस्करण।

हरगोविन्ददास टीकमचन्द शेठ; पाइअसद्द-महण्णवो, पृ० ७७८।

(३) ॐ ॥ स्वस्ति श्रीनृपविक्रमकालातीतसंवत्सरद्वादशशतेषु द्विचत्वारिंशदधिकेषु अंकतोऽपि संवत् १२४२ वर्षे कार्तिकसुदि १५ रवावद्येह श्रीमदणहिलपाटकाधिष्ठितपरमेश्वरपरमभट्टारकश्रीउमापतिवरलब्धप्रसादराज्यराजलक्ष्मीस्वयंवरप्रौढप्रतापश्रीचौलुक्यकुलमार्त्तंडअभिनवसिद्धराजश्रीमहाराजाधिराजश्रीमद्भीमदेवीयकल्याणविजयराज्ये.........अस्य च प्रभोः प्रसादपत्तलायां भुज्यमानवागडवटपद्रकमंडले.................

उदयपुर राज्य की जयसमुद्र झील के समीपवर्ती वीरपुर गांव से मिले हुए ताम्रपत्र की छाप से।

संवत् १२६१ वर्षे पौषसुदि ३ रवौ वागडवटपद्रके महाराजाधिराजश्रीसिहडदेवविजयोदयी.................................

डूंगरपुर राज्य के भेकरोड़ गांव के तालाब के निकट के वैजवा माता के मंदिर के लेख से।

संवत १३०८ अषे (वर्षे) काती(र्ति)कसुदि १५ सोमदिने अद्येह वागडमंडले महाराजकुलश्रीजयस्यंघदेवकल्याणविजयराज्ये झाडोलग्रामे श्रीविजयनाथदेव......................... ।

उदयपुर राज्य की जयसमुद्र झील के निकट के झाडोल गांव के शिव-मंदिर के लेख से।

संवत् १३४३ वैशाखशु १५ रवावद्येह वागडवटपद्रके महाराजकुलश्रीवीरसिंहदेवविजयराज्ये......................... ।

डूंगरपुर राज्य के माल गांव से मिले हुए महारावल वीरसिंहदेव के ताम्रपत्र की छाप से।

प्राचीन 'वागड़' देश में वर्तमान डूंगरपुर और बांसवाड़ा राज्यों तथा उदयपुर राज्य का कुछ दक्षिणी विभाग अर्थात् छप्पन नामक प्रदेश का समावेश होता था। वागड़ देश की पुरानी राजधानी बड़ौदा थी। जब से डूंगरपुर नगर की स्थापना हुई और वहां राजधानी स्थिर हुई, तभी से वागड़ को 'डूंगरपुर राज्य' भी कहने लगे। पीछे से इस राज्य के दो विभाग हुए, जिनमें पश्चिमी विभाग 'डूंगरपुर राज्य' और पूर्वी 'बांसवाड़ा राज्य' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

स्थान और क्षेत्रफल

डूंगरपुर राज्य दक्षिणी राजपूताने में २३° २०' से २४° १' उत्तर अक्षांश और ७३° २२' से ७४° २३' पूर्व देशान्तर के बीच फैला हुआ है। उसका क्षेत्रफल १४६० वर्ग-मील है।

सीमा

इस राज्य के उत्तर में मेवाड़ (उदयपुर राज्य), पश्चिम में ईडर, दक्षिण में कडाणा और सौंथ के राज्य तथा पूर्व में बांसवाड़ा है। इसकी अधिक-से-अधिक लम्बाई (पूर्व-पश्चिम) ६४ मील और चौड़ाई (उत्तर-दक्षिण) ४५ मील है।

पर्वत-श्रेणी

सारे राज्य में अर्वली की छोटी-छोटी श्रेणियां आ गई हैं, जो उत्तरी और पश्चिमी भाग में विशेष तथा दक्षिण और पूर्व में कम हैं। इन पहाड़ियों की ऊंचाई अधिक नहीं है, तो भी उत्तर-पश्चिम की एक पहाड़ी, जिसको रमणावाली पहाड़ी कहते हैं, समुद्र की सतह से १८११ फुट ऊंची है।

नदियां

इस राज्य में साल भर बहनेवाली एक भी नदी नहीं है। यहां की मुख्य नदी 'माही' है, जो ग्वालियर राज्य से निकलकर अनुमान १०० मील तक मध्य-भारत में बहने के पश्चात् बांसवाड़ा राज्य में प्रवेश कर डूंगरपुर और बांसवाड़ा राज्यों की सीमा बनाती हुई पश्चिम को मुड़ जाती है

संवत् १३५९ वर्षे आषाढसुदि १५ वागडवटपद्रके महाराजकुल-श्रीवीरसिंहदेवकल्याणविजयराज्ये.................... ।

डूंगरपुर राज्य के वरवासा गांव के लेख की छाप से।

इक्षुक्षेत्रपवित्रभूर्विजयते नीवृद्वरोवागडः ॥ ३ ॥

डूंगरपुर राज्य के आंतरी गांव की वि० सं० १५२५ की प्रशस्ति से।

और गुजरात में बहकर खंभात की खाड़ी में गिरती है। इस नदी का तट बहुत ऊंचा होने के कारण इसके जल का खेती के लिए उपयोग नहीं हो सकता।

सोम—यह उदयपुर राज्य के दक्षिण-पश्चिमी विभाग के बीचावेरा के पास के पहाड़ों से निकलकर उत्तर-पूर्व की ओर ५० मील तक उदयपुर और डूंगरपुर राज्यों की सीमा बनाने के पश्चात् डूंगरपुर राज्य में प्रवेश करती है और वहां से उत्तर-दक्षिण में १० मील बहकर बेणेश्वर के समीप माही में जा मिलती है।

भादर—यह छोटी नदी इस राज्य के दक्षिण में धम्बोला के निकट की पहाड़ियों से निकलती है और दक्षिण-पश्चिम की ओर बहती हुई कडाणा राज्य में माही में मिल जाती है।

मोरन—यह डूंगरपुर के पास की पहाड़ियों से निकलकर राज्य के मध्य भाग में पहुंचती है और दक्षिण-पूर्व में लगभग ४० मील बहकर गलियाकोट से कुछ उत्तर में माही से मिलती है।

झीलें

इस राज्य में छोटी-छोटी झीलें बहुत हैं। उनमें सबसे बड़ी झील पूंजेला (पूंजपुर गांव के पास) है। पूरी भर जाने पर उसकी लम्बाई क़रीब ढाई मील और चौड़ाई दो मील तक हो जाती है। यह झील महारावल पूंजा की बनवाई हुई है और उसकी मरम्मत महारावल विजयसिंह ने करवाई थी। दूसरी झील राजधानी डूंगरपुर में गैबसागर (गोपालसागर) है, जिसको महारावल गोपीनाथ ने बनवाई थी। पूरी भर जाने पर उसकी लम्बाई-चौड़ाई एक मील से अधिक हो जाती है। तीसरी झील एडवर्ड समुद्र है, जो राजधानी डूंगरपुर से ८ मील दूर दक्षिण-पश्चिम में है। उसको परलोकवासी सम्राट् एडवर्ड सप्तम की स्मृति में महारावल विजयसिंह ने बनवाना आरम्भ किया था और वर्त्तमान महारावल के समय में सम्पूर्ण हुई। यह अन्य झीलों की अपेक्षा गहराई में अधिक है और उसका जल नहर-द्वारा राजधानी डूंगरपुर के निकट लाया जाकर नलों से शहर में पहुंचाया जाता है। थूंडावाड़ा की झील भी अच्छी झील है और वहां पहाड़ी पर वर्त्तमान महारावल के बनवाये हुए सुन्दर महल हैं।

साधारणतया यहां का जलवायु अच्छा नहीं कहा जा सकता। पहाड़ी-प्रदेश होने के कारण जल में खनिज पदार्थ और वनस्पति का अंश मिल जाने से वह भारी होता है, जिससे यहां के निवासी विशेष हृष्ट-पुष्ट एवं बलवान नहीं देख पड़ते। वर्षा के अन्त में बहुतसे लोग मलेरिया ज्वर से पीड़ित रहते हैं और उनकी तिल्ली बढ़ जाती है।

जलवायु

इस राज्य में वर्षा की औसत २७ इंच के लगभग है। अधिक पहाड़ी-वाले प्रदेश में पहाड़ियों के बीच की समतल भूमि ही पैदावार के उपयुक्त होती है। पूर्वी भाग में, जहां पहाड़ियां कम हैं, खेती अच्छी होती है। विशेषतः मोरन नदी के तट का प्रदेश अच्छा उपजाऊ है। इस राज्य में खरीफ़ (सियालू) और रबी (उन्हालू) दोनों फसलें होती हैं। खरीफ़ की फ़सल सर्वत्र होती है, जिसका आधार वर्षा का पानी है। रबी की फ़सल मुख्यतः कुओं और तालावों से होती है, परन्तु खरीफ़ की अपेक्षा कम होती है। पहाड़ियों के ढालू हिस्सों में, जहां हल नहीं चल सकते, भील आदि लोग भूमि खोदकर खेती करते हैं। इस प्रकार की खेती को 'वालरा' (प्राकृत में 'वल्लर') कहते हैं। खेती की यह प्रणाली प्राचीन काल से चली आती है, परन्तु राज्य ने अब इसकी रोक कर दी है। पहाड़ियों के मध्य भाग में, जहां पानी बहुतायत से होता है, चावल पैदा होता है। इस राज्य में माल (काली मिट्टी) की ज़मीन, जिसे 'सीरमा' कहते हैं और जहां बिना जल पहुंचाये दोनों फसलें होती हैं, कम है।

वर्षा और फसल

मक्का, जौ, चना, गेहूं, चावल, मूंग, उड़द, तिल, सरसों, कुरी, कोदरा, हल्दी, धनिया, जीरा, मेथी आदि यहां की मुख्य पैदावार हैं। पहले अफ़ीम की खेती भी यहां होती थी, किन्तु अब वह बन्द है। राज्य ने रुई और गन्ने की खेती की उन्नति का प्रयत्न आरम्भ किया है। अदरक, रतालू, अरवी, करेला, तुरई, बैंगन, केले, भिंडी आदि सब तरह का शाक भी आवश्यकता के अनुसार हो जाता है।

पैदावार

पश्चिमी भाग में जंगल विशेष है, जो तीन भागों में विभक्त हैं—
(१) गामाई–इससे नागरिकों को घास, लकड़ी आदि आवश्यक वस्तुएं

मिल जाती हैं, (२) रखत और (३) शिकार का जंगल। जंगलों में उपयोगी

जंगल

एवं बड़े बड़े वृक्षों की संख्या कम है, क्योंकि पहाड़ी ज़मीन होने के कारण उनकी जड़ें ज़मीन के भीतर अधिक नहीं जाने पातीं। फिर भी सागवान, शीशम, आम, इमली, महुआ, धामण (फालसा), टींबरू, बड़, पीपल, चन्दन, नीम, खैर, खेजड़ा, बबूल, धव, हलदू, कालियासिरस, सालर, सेमल आदि वृक्ष होते हैं। आम और महुए के वृक्ष विशेषतः खेतों पर लगाये जाते हैं। यहां के आम अच्छे होते हैं। जंगल विभाग की पैदायश में सागवान, बांस, महुआ आदि इमारती काम की लकड़ी तथा गोंद, बेहड़ा, लाख आदि हैं।

जंगली जानवरों में शेर (व्याघ्र), चीता, भेड़िया (जिसको यहां 'घरगड़ा' या 'ल्याळी' कहते हैं), रींछ, सांभर, सूअर, हिरण, रोझ (नील-

जानवर

गाय), चीतल, जरख, लोमड़ी, सियार आदि विशेष पाये जाते हैं। पक्षियों में गिद्ध, चील, शिकरा, मोर, तोता, कोयल, तीतर, कबूतर और बटेर आदि हैं। जलाशयों के समीप रहनेवाले सारस, बगुला, बतख आदि तथा जल-जन्तुओं में मगर, कछुआ, मछलियां, केंकड़ा, जलमानस आदि पाये जाते हैं।

इस राज्य में लोहे और तांबे की खानें बहुत हैं। पहले उनसे ये धातुएं बहुत निकलती थीं, किन्तु विदेश से लोहा और तांबा सस्ता आने के

खानें

कारण अब वे सब बन्द हैं। पट्टियें तथा इमारती काम का पत्थर कई जगह निकलता है। एक प्रकार का संगमरमर (श्वेत पाषाण) तथा 'परेवा' नाम का सफेद, श्याम व भूरे रंग का मुलायम पत्थर कई स्थानों में निकलता है और मूर्तियां, कटोरे, खिलौने आदि बनाने के काम में आता है। बोड़ी गांव में स्फटिक जैसा चमकीला पत्थर भी निकलता है। अब तक इस राज्य में खनिज पदार्थों की खोज एवं खुदाई का कार्य नहीं हुआ है। उसके होने पर और भी कई प्रकार के उपयोगी पदार्थों का पता लगना संभव है।

इस राज्य में अब तक रेल का प्रवेश नहीं हुआ। अजमेर तथा मालवे में जानेवालों के लिए सबसे समीप का स्टेशन उदयपुर है, जो डूंगरपुर

रेल्वे से ६७ मील है। ऐसे ही अहमदाबाद आदि की तरफ़ जानेवालों के लिए तलोद का स्टेशन है, जो डूंगरपुर से ७५ मील दूर है।

सड़कें राज्य में अबतक पक्की सड़कें बहुत कम हैं। जगह जगह कच्ची सड़कें ही हैं, जिनके द्वारा राज्य के भीतरी और बाहरी भागों में जाना-आना होता है। इनकी मरम्मत बराबर होती रहती है। इन मार्गों से लोग प्रायः बैलगाड़ी, तांगे, मोटर आदि से यात्रा करते हैं। डूंगरपुर से उदयपुर, अहमदाबाद और दावद (दोहद) इन तीनों स्थानों के लिए मोटर सर्विस है।

जन-संख्या इस राज्य में अब तक छः वार मनुष्य-गणना हुई है। यहां की जन-संख्या ई० स० १८८१ में १५३३८१, ई० स० १८९१ में १६५४००, ई० स० १९०१ में १००१०३, ई० स० १९११ में १५९१९२, ई० स० १९२१ में १८९२७२ और ई० स० १९३१ में २२७५४४ थी। ई० स० १८९१ की अपेक्षा ई० स० १९०१ में जन-संख्या कम होने का कारण वि० सं० १९५६ (ई० स० १८९८-९९) का भयङ्कर अकाल था।

धर्म प्रचलित धर्मों में यहां हिन्दू और इस्लाम प्रधान हैं। कुछ वर्षों से ईसाई धर्म का भी इस राज्य में प्रवेश हुआ है। हिन्दुओं में शैव, वैष्णव, शाक्त और जैन आदि हैं। भील और मीने हिन्दू-धर्म के अनुयायी हैं। वे हिन्दुओं के शिव, विष्णु (सांवलाजी, ऋषभदेव), दुर्गा, भैरव, नाग आदि अनेक देवी-देवताओं को पूजते हैं। उनका विवाह-संस्कार भी हिन्दुओं की भांति अग्नि की साक्षी से होता है। जैनों में दो भेद—दिगम्बर और श्वेताम्बर—हैं। उनमें अधिक संख्या दिगम्बर सम्प्रदाय के लोगों की है। मुसलमानों में भी दो भेद—शिया और सुन्नी—हैं। दाउदी बोहरे शिया मत के अनुयायी हैं।

जातियां हिन्दुओं में प्रधान जातियां ब्राह्मण, राजपूत, महाजन, कुनबी, कायस्थ, चारण, भाट, सुनार, दरोगा, दर्जी, लुहार, सुथार (बढ़ई), कुम्हार, माली, नाई, धोबी, बनजारे, मोची, बलाई, भील, मीने, गरासिये आदि हैं। भील, मीने और गरासिये जंगलों में रहते हैं, इसलिये उनकी गणना जंगली

जातियों में की जाती है। मुसलमानों में शेख, सैयद, मुग़ल, पठान, रंगरेज़, सक्का (भिश्ती) और बोहरे आदि हैं, जिनके विवाह प्रायः अपने अपने फ़िर्क़ों में होते हैं। ईसाई और पारसियों की संख्या नाम मात्र ही है।

अधिकांश लोगों का रोज़गार कृषि है। कई ब्राह्मण, राजपूत और महाजन भी खेती करते हैं। कई लोग पशुपालन, मज़दूरी एवं दस्तकारी से

उद्योग

अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। अधिकांश ब्राह्मण पूजापाठ, पुरोहिताई और कुछ नौकरी करते हैं। राजपूतों का मुख्य कार्य सैनिक सेवा है। महाजन व्यापार, लेन-देन आदि का व्यवसाय तथा नौकरी करते हैं। देहाती लोग सूत कातते और कपड़ा बुनते हैं। विदेशी वस्त्र का व्यवसाय बढ़ जाने से स्वदेशी वस्त्र-व्यवसाय कम हो गया है। जेलखाने में गलीचे, दरियां और कपड़ा बुनने का काम क़ैदियों-द्वारा होता है। भील और मीने पहले चोरी करते और डाका डालते थे, किन्तु राज्य के प्रबन्ध से वे शनैः शनैः अब इसे छोड़कर कृषि-कार्य करते हैं, तो भी दुष्काल के समय अपने पुराने पेशे को नहीं छोड़ते।

सामान्यतः यहां के पुरुषों की पोशाक पगड़ी या साफा, कुरता, लम्बा अंगरखा, धोती या पायजामा है। राजकीय लोग अंगरखे पर कमर भी

वेश-भूषा

बांधते हैं। वर्तमान समय में कुछ लोगों ने अपनी प्राचीन वेश-भूषा में परिवर्तन कर लिया है, जिससे वे अचकन, कोट, कमीज़, साफ़ा, टोपी आदि पहनते हैं और यह रिवाज़ बढ़ता जाता है। ग्रामीण लोग पगड़ी के स्थान पर फैंटा बांधते हैं और कुरता अथवा छोटा अंगरखा और ऊंची धोती पहनते हैं। स्त्रियां साड़ी, घाघरा (लहंगा) और कांचली (अंगिया) का उपयोग करती हैं। मुसलमानों की स्त्रियां पाजामा और कुर्ता पहनती हैं और ऊपर एक दुपट्टा डालती हैं। बोहरों की स्त्रियां बहुधा लहंगा पहनती हैं और बाहर जाते समय मुंह पर नकाब (बुर्क़ा) डालती हैं।

भाषा

डूंगरपुर राज्य की मुख्य भाषा वागड़ी है, जो गुजराती का रूपान्तर है।

प्रचलित लिपि नागरी है, किन्तु लोग प्रायः उसे लकीर खींचकर

लिपि

घसीट रूप में लिखते हैं। उसमें ह्रस्व, दीर्घ और शुद्धता की ओर ध्यान कम दिया जाता है।

'परेवा' पत्थर के बरतन, खिलौने तथा मूर्त्तियां आदि अच्छे बनते हैं। तांबे-पीतल के बरतन और भील-स्त्रियों के पहनने के ज़ेवर एवं सोने-चांदी

दस्तकारी

के आभूषण बहुतायत से बनते हैं। लकड़ी के रंग-बिरंगे खिलौने तथा अन्य वस्तुएं और कपड़े तथा लाख की रंगाई का काम भी अच्छा होता है।

रेल्वे-स्टेशन दूर रहने, पक्की सड़कें न होने और अन्य साधनों के अभाव से अन्य स्थानों की अपेक्षा यहां व्यापार बहुत कम है। अन्न, तिल,

व्यापार

सरसों, घी, गोंद, मोम, ऊन, महुआ, चमड़ा आदि वस्तुएं राज्य से बाहर जाती हैं और कपड़ा, गुड़, शक्कर, नमक, तंबाकू, मिट्टी का तेल, सब प्रकार की धातुएं, काँच का सामान आदि वस्तुएं बाहर से आती हैं।

यहां के मुख्य त्योहार रक्षा-बन्धन, नवरात्रि, दीवाली, होली, गणगोर आदि हैं। ब्राह्मणों का मुख्य त्योहार रक्षा-बन्धन, क्षत्रियों का नवरात्रि

त्योहार

(दशहरा), महाजनों का दीवाली और अन्य जातियों का होली है। मुसलमानों के मुख्य त्योहार दोनों ईदें और मुहर्रम (ताज़िया) हैं।

मेले व्यापार की उन्नति में सहायक होते हैं। इस राज्य में भी मेले होते हैं, जिनमें विदेशी व्यापारी आते हैं। फाल्गुन मास में वेणेश्वर का मेला

मेले

भरता है। इसमें व्यापारी लोग रुई, कपड़ा, बरतन, काँच का सामान, खिलौने और बैल आदि पशु लाते हैं। गलियाकोट में पीर फ़खरुद्दीन का मेला होता है, जो मुहर्रम महीने की ता० २७ को भरता है। इसमें दूर दूर से दाऊदी बोहरे बहुत आते हैं।

इस राज्य में सरकारी डाकखाने और तारघर अधिक नहीं हैं। डूंगरपुर, सागवाड़ा, गलियाकोट और बनकोड़ा में अंग्रेज़ी डाकखाने हैं तथा

डाकखाने और तारघर

डूंगरपुर और सागवाड़े में तारघर भी हैं। राज्य की तरफ से प्रजा के सुबीते के लिए इलाके भर में चिट्ठियां आदि पहुंचाने के लिए डाक का प्रबन्ध है। गणेशपुर, आसपुर, नठावा,

सागवाड़ा, गलियाकोट, धंबोला और कणवा में राज्य के डाकखाने हैं। वहां से जानेवाले पत्रों, रजिस्ट्रियों आदि पर राज्य के ही टिकट काम में आते हैं।

शिक्षा — शिक्षा के लिए राज्य की ओर से डूंगरपुर में 'पिन्हे हाईस्कूल,' 'विजय-संस्कृत-पाठशाला' और 'पिन्हे पुस्तकालय' तथा कन्याओं के लिए 'देवेन्द्र-कन्या-पाठशाला' है। सागवाड़े में सेकराडरी स्कूल तथा आसपुर, वड़ौदा, वनकोड़ा, गलियाकोट, नठावा, ओवरी, पीठ, सावला, पाड़वा, सेमलवाड़ा, खडगदा, धंबोला, भीलोड़ा, सरोदा, कणवा, जेठाणा, पूंजपुर और सामलिया में प्रारंभिक पाठशालाएं हैं। सागवाड़े में एक कन्या-पाठशाला भी है।

अस्पताल — चिकित्सा के लिए राज्य की ओर से डूंगरपुर में बड़ा अस्पताल और सागवाड़े में छोटा अस्पताल बना हुआ है।

ज़िले — इस राज्य में तीन ज़िले—डूंगरपुर, सागवाड़ा और आसपुर—हैं। उनके हाकिम ज़िलेदार कहलाते हैं और 'अमात्य कार्यालय' (महकमा खास) के अधीन हैं। राज्य के सारे खालसे में पैमाइश होकर बन्दो-बस्त हो गया है, जिससे लगान में नक़द रुपये लिये जाते हैं।

न्याय — शासन, राज्यतन्त्र-शासन-प्रणाली से होता है। दरबार को राज्य के भीतरी मामलों में पूरा अधिकार है। न्याय और राज्य-प्रबन्ध का संक्षिप्त परिचय नीचे लिखे अनुसार है—

प्रत्येक ज़िलेदार को फ़ौजदारी मामलों में दूसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट के अधिकार प्राप्त हैं और वह दीवानी मामलों में १०० रु० तक का दावा सुनता है। उसके किये हुए फ़ैसलों की अपील और उसके अधिकार के बाहर की सुनवाई राजधानी डूंगरपुर में फ़ौजदार के पास होती है, जो प्रथम श्रेणी का मजिस्ट्रेट है और १०००० रु० तक के दीवानी दावे सुनता है। फ़ौजदार के अधिकार के बाहर के मुक़द्दमे कौंसिल से तय होते हैं। कौंसिल में विशेष अवसरों पर 'आसेसर' भी बिठाये जाते हैं। बड़े बड़े मुक़द्दमों का अन्तिम निर्णय और मृत्यु-दण्ड की सज़ा महारावल की आज्ञा से होती है।

माली और मुल्की कार्य के लिए 'अमात्य-कार्यालय' है और राज्य की समस्त बागडोर उसके हाथ में है। मालगुज़ारी (रेविन्यु), चुंगी (कस्टम्स), एक्साइज़ (नशीली चीज़ों का व्यवसाय), परराष्ट्र, सेना, पुलिस, शिक्षा-विभाग, मेडिकल, जङ्गल, इंजीनियरी और हिसाब-दफ़्तर (अकाउन्टेन्ट-ऑफिस) आदि सब महकमे अमात्य-कार्यालय के अधीन हैं। प्रत्येक विभाग पर अलग अलग हाकिम नियत हैं और वे उस (अमात्य-कार्यालय) की निगरानी में अपना अपना कार्य करते हैं। ऊपरी मामलों के आखिरी फ़ैसले 'राजप्रबन्ध-कारिणी सभा' की सलाह से होते हैं, जिसमें उच्च कर्मचारी, सरदार और प्रजा के प्रतिनिधि रहते हैं, जो दरबार की आज्ञा से नियुक्त किये जाते हैं।

इस राज्य में भूमि तीन भागों—जागीर, माफ़ी (खैरात) और खालसा—में बंटी हुई है। इनमें से खालसा की पैदावार राज्य लेता है। जागीर में जो गांव आदि दिये गये हैं वे या तो उन्हें भाइयों में बंटवारा होने से अथवा अच्छी सैनिक-सेवाओं के उपलक्ष्य में मिले हैं। ऐसे जागीरदारों को प्रतिवर्ष खिराज देने के अतिरिक्त स्वयं राजधानी में जाकर नियत समय पर नौकरी देनी पड़ती है तथा आवश्यकतानुसार सैनिक-सेवा के लिए राजकीय आज्ञा का पालन करना पड़ता है।

जागीर

जागीरदारों में तीन श्रेणियां हैं। प्रथम श्रेणीवाले 'सोलह' कहलाते हैं, जो नीचे लिखे अनुसार हैं—

(१) बनकोड़ा, (२) पीठ, (३) बीछीवाड़ा, (४) मांडव, (५) ठाकरड़ा, (६) सोलज, (७) बमासा, (८) लोड़ावल, (९) रामगढ़, (१०) सावली, (११) ओड़ां, (१२) नांदली, (१३) चीतरी और (१४) सेमलवाड़ा।

दूसरी श्रेणी के सरदार 'बत्तीस' कहलाते हैं, जिनकी सूची अन्त में दी गई है। इस श्रेणी में इस समय १५ ठिकाने हैं जिनके अधीन ३५००० रु० वार्षिक आय की जागीर है।

तीसरी श्रेणी के सरदार 'गुड़ाबंद' कहलाते हैं। ऐसे सरदारों की

संख्या १३० है, जिनके अधीन ५०००० रु० वार्षिक आय की भूमि है।

प्रथम श्रेणी के सरदार ताज़ीमी हैं और उन्हें पांव में सोना पहिनने का सम्मान है। इन सरदारों को न्याय-सम्बन्धी (Judicial) अधिकार नहीं हैं और न वे राज्य की अनुमति के विना दत्तक ले सकते हैं। किसी सरदार की मृत्यु हो जाती है, तब उत्तराधिकारी की नियुक्ति के समय तलवारबन्दी के नाम से राज्य उससे नज़राने की रकम लेता है। राज्य की आज्ञा का उल्लंघन करने तथा अन्य गंभीर अपराधों के कारण जागीर ज़ब्त भी हो जाती है।

माफ़ी

ब्राह्मण, चारण, भाटों, देवमंदिरों, मसजिदों आदि के निमित्त अथवा किसी सेवा के उपलक्ष्य में गांव, ज़मीन, मकान आदि दिये गये हैं वे माफ़ी या खैरात कहलाते हैं। माफ़ी यहां चार प्रकार की है—

(१) माफ़ी-पुण्यार्थ—जिनको पुण्य की दृष्टि से यह दी गई है, उनसे कोई सेवा नहीं ली जाती।

(२) मंदिरों के पूजन, मसजिदों, पुरोहिताई, कथा-व्यास आदि कार्यों के लिए जो भूमि दी गई है वह माफ़ी धरमादा (धर्मदाय) कहलाती है, जो उपर्युक्त कार्य बराबर होते रहने तक क़ायम रहती है।

(३) माफ़ी-इनामी—यह ब्राह्मण, चारण और भाटों को ही नहीं प्रत्युत अन्य लोगों को भी अच्छी सेवा के उपलक्ष्य में किसी खास अवसर पर इनाम में दी गई है।

(४) माफ़ी-चाकराना—यह नियत सेवा के लिए लोगों को दी गई है और उनको उसके कारण सेवा करनी पड़ती है।

कोई भी माफ़ीदार राज्य की आज्ञा के विना दत्तक नहीं ले सकता तथा जिस व्यक्ति को माफ़ी की ज़मीन दी गई हो उसकी संतान के विद्यमान रहने तक ही वह क़ायम रहती है। बहुधा माफ़ीदारों को 'अबूवाव' नामक पिलाई की लागत राज्य को देनी पड़ती है, परंतु कोई कोई इस कर से मुक्त भी हैं।

सेना

डूंगरपुर राज्य की कवायदी सेना में २८ सवार, १२४ पैदल, ६ तोपें और ५ गोलंदाज़ हैं। इनके अतिरिक्त पुलिस की संख्या ३१२ है।

वर्त्तमान समय में इस राज्य की वार्षिक आय ७५०००० रुपये के लगभग है। आय के मुख्य साधन ज़मीन का हासिल, दाण (कस्टम्स), आबकारी, सरदारों का खिराज, स्टाम्प आदि हैं। वार्षिक व्यय अनुमान ६७५००० रुपये है। व्यय के मुख्य सीगे सेना, पुलिस, महल, अदालतें, विद्याविभाग, तामीर आदि हैं।

आय-व्यय

डूंगरपुर राज्य का चांदी का कोई सिक्का नहीं मिलता। मेवाड़ के पुराने चीतोड़ी और प्रतापगढ़ के सालिमशाही रुपयों का ही यहां पर चलन था, परन्तु भाव की घटा-बढ़ी होने के कारण बड़ी असुविधा देख ई० स० १९०४ में सरकार अंगरेज़ी से लिखा-पढ़ी कर राज्य ने १२५ रु० चीतोड़ी अथवा २०० रु० सालिमशाही के बदले १०० रु० कलदार लेना स्थिर किया तब से ही कलदार का चलन है। पहले यहां की टकसाल के बने हुए पैसे चलते थे, जिनपर एक तरफ़ 'सरकार गिरपुर' और दूसरी तरफ़ संवत् का अंक (१९१७), उसके नीचे तलवार का चिह्न तथा उसके नीचे वृक्ष की डाली बनी हुई थी।

सिक्का

इस राज्य में वर्ष आषाढ़ सुदि १ को प्रारम्भ होकर ज्येष्ठ बदि अमावास्या को समाप्त होता है और महीने सुदि १ से प्रारम्भ होकर बदि अमावास्या को समाप्त होते हैं, इसलिए संवत् 'आषाढादि' और मास 'अमांत' कहलाते हैं।

वर्ष और मास

इस राज्य को सरकार अंग्रेज़ी की ओर से १५ तोपों की सलामी का सम्मान प्राप्त है। सरकार अंग्रेज़ी को वार्षिक खिराज में १७५०० रु० कलदार दिये जाते हैं।

तोपों की सलामी और खिराज

इस राज्य में प्राचीन एवं प्रसिद्ध स्थान बहुत हैं, जिनमें से मुख्य मुख्य का वर्णन नीचे किया जाता है—

प्राचीन और प्रसिद्ध स्थान

डूंगरपुर—यह कस्बा इस राज्य की वर्त्तमान राजधानी है और समुद्र की सतह से लगभग १२०० फुट की ऊंचाई पर स्थित है। सन् १९३१ ई० की मनुष्यगणना के अनुसार यहां पर ८५०७ मनुष्य निवास करते हैं। महारावल डूंगरसिंह ने वि० सं० १४१५ (ई० स० १३५८) के आस-

पास अपने नाम से इस कस्बे को बसाकर वागड़ राज्य की प्राचीन राजधानी बड़ौदा (वटपद्रक) के बदले इसे अपनी राजधानी बनाया। महारावल शिवसिंह ने इसके चारों ओर पक्का कोट बनवाकर इसे सुरक्षित किया। चारों ओर पहाड़ियां आ जाने से वर्षा-ऋतु में यहां का प्राकृतिक सौन्दर्य मनोमोहक हो जाता है। दक्षिणी ओर की पहाड़ी के छोर पर एक छोटा-सा दुर्ग बना हुआ है। वहां महारावल विजयसिंह ने महल भी बनवाया है। इस पहाड़ी के नीचे पुराने राजमहल हैं, जो भिन्न भिन्न समय के बने हुए हैं और जहां इस समय राजकीय दफ़्तर हैं। महारावल गोपाल (गैबा) ने यहां गैबसागर तालाब बनवाया, जिसके दक्षिणी तट पर उदयविलास नामक भवन महारावल उदयसिंह (दूसरे) का बनवाया हुआ है। विजय-हॉस्पिटल, पिन्हे-हाईस्कूल, लक्ष्मण-गेस्टहाउस, उदयविहार-उद्यान, गैबसागर के भीतर का बादलमहल तथा उसके तट पर का महारावल पूंजा का बनाया हुआ श्रीनाथजी का विशाल मन्दिर दर्शनीय स्थान हैं।

सागवाड़ा—यह कस्बा डूंगरपुर से दक्षिण-पूर्व में २६ मील दूर है। पहले यह अच्छा कस्बा था, जहां पर कई प्राचीन जैन-मन्दिर बने हुए हैं। यह इस राज्य की व्यापारिक मण्डी है। राज्य की ओर से यहां स्कूल और अस्पताल हैं और प्रबन्ध के लिए ज़िलेदार रहता है। यहां पर पोस्ट और टेलिग्राफ ऑफ़िस भी हैं।

गलियाकोट—यह स्थान डूंगरपुर से ३७ मील और सागवाड़ा से ११ मील दूर है। माही नदी के तट पर गलियाकोट के पुराने गढ़ के खण्डहर (भग्नावशेष) विद्यमान हैं। यह दाऊदी वोहरों का तीर्थस्थान है, क्योंकि यहां फ़खरुद्दीन नामक पीर की क़बर है, जिसकी ज़ियारत के लिए प्रतिवर्ष दूर-दूर से वोहरे लोग आते हैं। यहां उनके आराम के लिए सुन्दर सरायें बनी हुई हैं, जिनसे इस स्थान की रौनक बढ़ गई है। यहां पर एक प्राइमरी स्कूल और ब्रांच पोस्ट ऑफ़िस भी है।

बड़ौदा—यह स्थान डूंगरपुर से २८ मील दूर है। पहिले यह वागड़ की राजधानी था। यहां कई प्राचीन देवालय थे, जिनमें से कई गिर
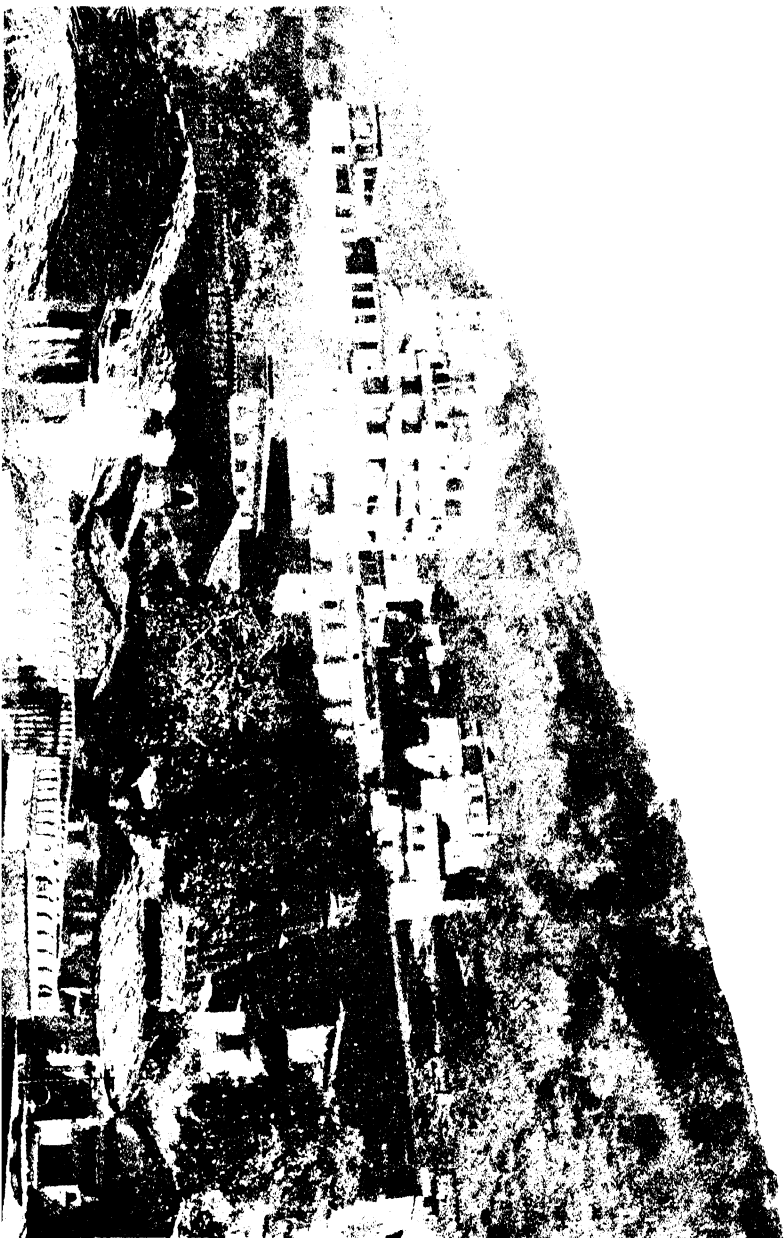
भी गये हैं। संस्कृत लेखों में इसका नाम 'वटपद्रक' मिलता है और इसको 'वागड वटपद्रक' कहते थे, जिसका कारण यह था कि वटपद्रक (बड़ौदा) नाम के भारत में एक से अधिक स्थान होने से इस (बड़ौदे) के विषय में सन्देह न रहे। यहां पर महाजनों की अच्छी बस्ती है और कई प्राचीन जैन-मन्दिर भी हैं। तालाब के पास श्वेत पाषाण का बना एक प्राचीन शिव-मन्दिर है, जिसपर सुन्दर खुदाई का काम है। उसका अधिकांश भाग गिर गया है और केवल निज-मन्दिर ही बचा है। यहां जल भरने की एक पाषाण की कुंडी पर (आषाढ़ादि) वि० सं० १३४६ वैशाख सुदि ३ (चैत्रादि १३५०=ता० ११ एप्रिल ई० स० १२६३) शनिवार का महाराजकुल (महारावल) श्रीवीरसिंहदेव के समय का लेख है, जिसमें उसके महाप्रधान (मुख्यमन्त्री) का नाम वामन लिखा है। इस मन्दिर के अहाते में सुन्दर कारीगरी के साथ बनी हुई एक पुरुष की श्याम पत्थर की क़रीब ३½ फुट ऊंची मूर्ति पड़ी हुई है, जिसके मूंछ व डाढ़ी हैं और केशों का जूड़ा दाहिनी तरफ़ कन्धे पर लटक रहा है, हाथों में कड़े व भुजबन्द हैं और दोनों हाथों में एक फूलों की माला है। उसका एक हाथ टूट गया है, गले में एक रुद्राक्ष की माला और एक तीन लड़ी कण्ठी है, जंघा तक धोती पहने हुए है, जिस-पर सुन्दर काम बतलाया है और दोनों पैर टूट गये हैं। सम्भवतः यह उक्त मन्दिर बनवानेवाले व्यक्ति या राजा की मूर्ति होनी चाहिये। यहां पर शिव, कुबेर आदि की मूर्तियां भी पड़ी हुई हैं। एक विष्णुरूप सूर्य की खड़ी हुई मूर्ति है जो चतुर्भुज है। उसके ऊपर के दाहिने हाथ में गदा, नीचे के हाथ में कमल, ऊपर के बायें हाथ में चक्र और नीचे के में कमल है। सिर पर मुकुट, छाती पर कवच और पैरों में बड़ी सुन्दरता से बने हुए लम्बे बूट हैं। नीचे सात अक्षर का एक अस्पष्ट लेख है, जिसकी लिपि ११ वीं शताब्दी की अनुमान होती है। गांव के बीच पार्श्वनाथ का मन्दिर है, जिसका नीचे का भाग पुराना और ऊपर का नया है। इस मन्दिर में यम, सूर्य और पार्श्वनाथ की मूर्तियां पड़ी हैं, जो बाहर से लाकर रक्खी हुई प्रतीत होती हैं। निज-मन्दिर में मुख्य मूर्ति पार्श्वनाथ की है, जो नवीन है, इसकी प्रतिष्ठा

(आषाढ़ादि) वि० सं० १६०४ ज्येष्ठ सुदि १ शुक्रवार के दिन भट्टारक देवेन्द्रसूरि ने की थी। सभामण्डप में एक मूर्ति वि० सं० १३५६ माघ वदि १२ (ता० १४ फ़रवरी ई० स० १३०३) गुरुवार की है और एक श्याम शिला पर चौबीस तीर्थंकरों के पंचकल्याण खुदे हुए हैं और किनारों पर चौबीस तीर्थंकरों की मूर्तियां हैं। नीचे के लेख से मालूम होता है कि इस शिला की प्रतिष्ठा (आषाढ़ादि) वि० सं० १३६४ (चैत्रादि १३६५) वैशाख सुदि ५ (ता० २६ एप्रिल ई० स० १३०८) को खरतरगच्छ के जिनचन्द्रसूरि ने की थी।

देवसोमनाथ—डूंगरपुर से उत्तर-पूर्व में १५ मील पर सोम नदी के तट पर देवसोमनाथ का विशाल और सुदृढ़ मंदिर बना हुआ है, जो डूंगरपुर राज्य के सब देवालयों से प्राचीन और भव्य है। इसके पास ही देवगांव बसा हुआ है जिससे इस मंदिर को देवसोमनाथ कहते हैं। यह मंदिर श्वेत पाषाण का बना हुआ है और चारों ओर प्राकार (कोट) है। इसके तीन द्वार (पूर्व, उत्तर और दक्षिण में) हैं। प्रत्येक द्वार पर दो दो मंज़िले झरोखे हैं और गर्भगृह पर ऊंचा शिखर बना है। गर्भगृह के सामने आठ विशाल स्तंभों का बना हुआ सभा-मंडप है। इस मंदिर में बीस तोरण थे, जिनमें से चार तो अभी पूरे विद्यमान हैं और पांच आधे। वि० सं० १६३२ (ई० स० १८७५) में सोम नदी इतनी बढ़ गई कि मंदिर की तीसरी मंज़िल में पानी पहुंच गया और लकड़ी के बड़े बड़े लट्ठों के टकराने से कई तोरण टूट गये। सभा-मंडप से निज-मंदिर में प्रवेश करने के समय आठ सीढ़ी नीचे उतरने पर शिवलिङ्ग आता है। मंदिर के पीछे एक कुंड बना हुआ है, जिसमें से शिवालय में जल लाने के लिए संगमरमर की नाली स्तंभों पर बनी हुई थी, जो उक्त जल-प्रवाह के समय टूट गई, जिससे अब मिट्टी की नाली से मंदिर में जल पहुंचाया जाता है। मंदिर के शिखर के भीतर पहुंचने पर एक अद्भुत दृश्य नज़र आता है, क्योंकि उसमें थोड़े थोड़े अन्तर पर वृत्ताकार एक नाप के पत्थर खड़े हुए हैं और उनपर आड़ी पट्टियें लगी हैं। पट्टियों के ऊपर फिर वैसे ही वृत्ताकार पत्थर खड़े हैं। इस प्रकार की वृत्ताकार रचना शिखर तक पहुंच गई है। ज्यों ज्यों पत्थर ऊंचे जाते गये त्यों त्यों उनका वृत्त कम

देवसोमनाथ का भव्य मन्दिर
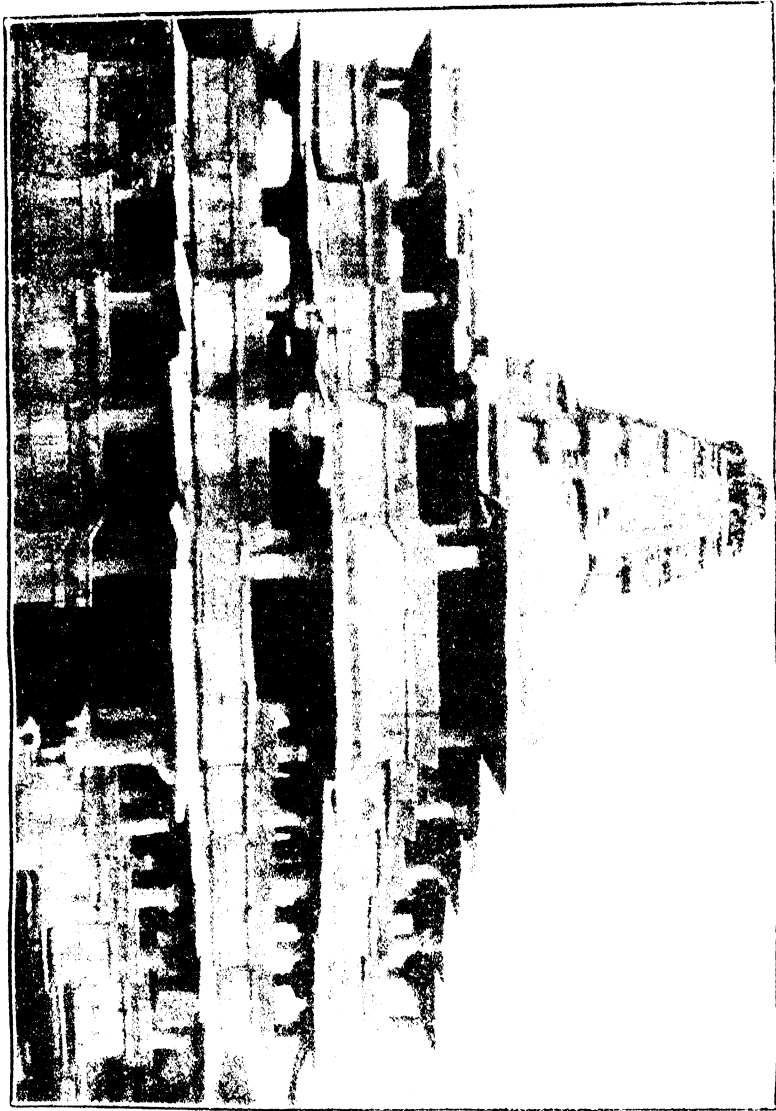
होता गया और सबसे ऊपरी वृत्त बहुत छोटा हो गया। देखनेवालों को तो यही ज्ञात होता है कि यह शिखर अभी गिर जायगा, परन्तु वह बड़ा ही सुदृढ़ है। मंदिर के पीछे नदी पर घाट बना हुआ है। इस मंदिर के बनाने का तो कोई शिलालेख नहीं मिला, परन्तु इसकी बनावट और कारीगरी आदि को देखते हुए यह कहना असङ्गत न होगा कि यह शिवालय विक्रम की बारहवीं शताब्दी के आसपास बना होगा।

मंदिर के बाहर एक स्तंभ पर महारावल सहसमल के समय का वि० सं० १६४५ पौष सुदि १३ (ई० स० १५८८ ता० २० दिसम्बर) का शिलालेख खुदा हुआ है, जिससे विदित होता है कि वहां की ज़मीन का हासिल उक्त मंदिर को भेंट होता है। वहां पर रावल गोपीनाथ का खुदवाया हुआ एक लेख भी है, परन्तु उसके अक्षर छोटे हैं और घिस गये हैं, इसलिए उसका आशय स्पष्ट नहीं होता। मंदिर के स्तंभों तथा ऊपर की मंज़िल के छबनों पर कई यात्रियों के खुदवाये हुए लेख हैं, जिनमें सबसे पुराना वि० सं० १५५० कार्तिक सुदि ११ (ई० स० १४९३ ता० २१ अक्टोबर) का है। यह शिवालय नदी-तट पर होने के कारण इसके निकट कई वीर पुरुषों के अग्नि-संस्कार हुए हैं, जिनके स्मारक-स्तंभों पर लेख खुदे हुए हैं, जिनमें सबसे पुराना वि० सं० १५३० (ई० स० १४७३) का है।

पूंजपुर—यह कस्बा रावल पूंजा का बसाया हुआ है और डूंगरपुर से २६ मील दक्षिण-पूर्व में है। इसके निकट ही साबला गांव है, जहां मावजी नाम का औदीच्य ब्राह्मण बड़ा संत हुआ। उसके शिष्यवर्ग में वह विष्णु का कल्कि अवतार माना जाता है। साबले में मावजी का मंदिर है और उसमें उसकी शंख, चक्र, गदा और पद्म सहित घोड़े पर सवार चतुर्भुज मूर्ति है। उसका पहला और तीसरा विवाह औदीच्य ब्राह्मणों की लड़कियों से, दूसरा एक राजपूत की लड़की से और चौथा एक पटेल की विधवा स्त्री से होना बतलाते हैं। वैष्णव-धर्मावलंबी कई पटेल (कुनबी), राजपूत, ब्राह्मण, सुनार, छीपे और दर्जी आदि उसके अनुयायी हैं, जो उसकी वाणी को बड़े प्रेम से सुनते और उसके रचे हुए भजनों को गाते हैं। वाणी के सिवाय 'न्याय'

नाम की उसकी बनाई हुई पुस्तक है, जिसमें जीवनदास औदीच्य के किये हुए १०८ प्रश्नों के उत्तर बड़ी योग्यता से दिये हैं। इसके अतिरिक्त 'ज्ञान-भंडार', 'अकलरमण', 'सुरानंद', 'भजनस्तोत्र', 'ज्ञान-रत्न-माला' तथा 'कालिंगा-हरण' आदि उसके रचे हुए ग्रंथ हैं। उनकी भाषा हिन्दी-मिश्रित वागड़ी है। इस सम्प्रदाय के अनुयायी अपने को विष्णुसम्प्रदाय के अन्तर्गत ही समझते हैं। मावजी का मुख्य मंदिर सावला में है, जहां उसकी गद्दी है। वहां जाकर उसके अनुयायी कंठी बंधवाते हैं। इस सम्प्रदाय के अनुयायियों की संख्या ८००० मानी जाती है। सावला और पूंजपुर के अतिरिक्त डूंगरपुर राज्य में वेणेश्वर और ढालावाला; मेवाड़ राज्य में सेंसपुर (सलूंबर के पास) तथा बांसवाड़ा राज्य में पारोदा गांव में मावजी के मंदिर हैं। मावजी की गद्दी के महन्त अविवाहित रहते हैं और औदीच्य ब्राह्मणों में से किसी को अपना शिष्य बनाते हैं। मावजी का जन्म कब हुआ, इसका तो पता नहीं चलता, परन्तु वि० सं० १७८६ (ई० स० १७३२) में उसकी मृत्यु होना माना जाता है।

बोड़ीगामा—डूंगरपुर से पूर्व में ४० मील पर यह पुराना कस्बा है, जहां के तालाब के पास की पहाड़ी पर एक शिव-मन्दिर है। दूसरी एक पहाड़ी पर सूर्य का एक प्राचीन मन्दिर था, जो टूट गया है। उसके सभा-मंडप में सूर्य की एक प्राचीन मूर्ति रक्खी हुई है। गांव के भीतर एक विष्णु का मन्दिर है, जो (आषाढ़ादि) वि० सं० १६३१ (चैत्रादि १६३२) ज्येष्ठ सुदि १३ (ई० स० १५७५ ता० २२ मई) रविवार को बना था, ऐसा उसके लेख से पाया जाता है।

वसूंदर—यह गांव डूंगरपुर से २८ मील दूर है और चारणों की माफ़ी का है। यहां वसुंदरा(वसुंधरा) देवी का प्राचीन मन्दिर है, जिसका शिला-लेख टूट गया है, परन्तु उसके दो टुकड़े विद्यमान हैं। उक्त शिलालेख की लिपि मेवाड़ के राजा अपराजित के समय के वि० सं० ७१८ (ई० स० ६६१) के कुंडा के लेख से ठीक मिलती हुई है। उक्त लेख का बहुतसा हिस्सा नष्ट हो गया है तो भी बचे हुए अंश के प्रारम्भ में देवी की स्तुति है। फिर वेदाराम

बेणेश्वर के शिवालय

गुरु का नाम पढ़ा जाता है। आगे भट्ट द्रोणस्वामी का नाम है और उसके द्वारा यज्ञ करने का वर्णन है। उपर्युक्त शिलालेख के बचे हुए दोनों टुकड़ों में किसी राजा का नाम पढ़ा नहीं जाता है। डूंगरपुर राज्य से मिलनेवाले तमाम शिलालेखों में यह सब से पुराना है।

बेणेश्वर—यह स्थान डूंगरपुर से पूर्व लगभग ५० मील दूर है, जहां बांसवाड़ा राज्य की सीमा मिलती है। भाटोली गांव के समीप बेणेश्वर का शिव-मंदिर बना हुआ है, जो महारावल आसकरण के समय का माना जाता है। इस मंदिर के सम्बन्ध में डूंगरपुर और बांसवाड़ा राज्यों के बीच झगड़ा चल रहा था, जिसका निर्णय होने पर यह मंदिर डूंगरपुर राज्य की सीमा में माना गया। इस आशय का वहां पर वि० सं० १९२२ माघ सुदि १५ (ई० स० १८६६ ता० ३० जनवरी) का एक शिलालेख लगा हुआ है, जिसपर मेजर एम० एम० मैकेंज़ी पोलिटिकल सुपरिन्टेन्डेन्ट हिली ट्रेक्ट्स के अंग्रेज़ी में हस्ताक्षर हैं। यह मंदिर सोम और माही नदियों के सङ्गम पर होने से वागड़ राज्य के निवासियों में इसका बड़ा माहात्म्य है। फाल्गुन मास में शिवरात्रि के अवसर पर यहां १५ दिन तक बड़ा मेला होता है, जहां दूर दूर से हज़ारों लोग आते हैं और इस अवसर पर वहां व्यापार भी अच्छा होता है।

बोरेश्वर—डूंगरपुर से पूर्व ६० मील दूर सोलज गांव के निकट बोरेश्वर महादेव का शिव-मन्दिर है। वहां के कुंड पर पड़ा हुआ एक आठवीं सदी का शिलालेख मिला, परन्तु उसपर मसाला पीसने से वह नष्ट-सा हो गया है, इसलिए उसका पूरा आशय निकल नहीं सकता। उक्त मन्दिर की दीवार पर महारावल सामंतसिंह के समय का वि० सं० १२३६ (ई० स० ११७९) का लेख लगा हुआ है। वागड़ में गुहिलवंशी राजाओं का सबसे पहला लेख यही है।

दूसरा अध्याय

वागड़ के प्राचीन राजवंश

(गुहिलवंश के अधिकार से पूर्व)

गुहिलवंशियों के पूर्व वागड़ पर किस किस राजवंश का अधिकार रहा, यह निश्चितरूप से नहीं जाना जाता, क्योंकि उस प्रदेश से अधिक प्राचीन शिलालेख आदि नहीं मिले हैं। अब तक के शोध से इतना ही ज्ञात होता है कि पहले वहां क्षत्रपवंशियों एवं परमारों का राज्य रहा था और परमारों से ही गुहिलवंशियों ने वागड़ का राज्य छीना था।

क्षत्रप

क्षत्रप जाति के शक थे। ईरान और अफ़ग़ानिस्तान के बीच के प्रदेश शकस्तान से उनका भारत में आना माना जाता है। शिलालेखों और सिक्कों के अतिरिक्त 'क्षत्रप' शब्द संस्कृत साहित्य में कहीं नहीं मिलता। यह प्राचीन ईरानी भाषा के 'क्षत्रपावन'[1] शब्द से बना है, जिसका अर्थ देश या ज़िले का शासक होता था। भारतवर्ष में क्षत्रपों की दो शाखाओं के राज्य रहे, जिनमें से एक ने मथुरा के आसपास के प्रदेश और दूसरी शाखा ने राजपूताना, गुजरात, काठियावाड़, कच्छ तथा दक्षिण के कितने एक अंश पर शासन किया। विद्वानों ने पिछली शाखा का 'पश्चिमी क्षत्रप' नाम से परिचय दिया है। इसी शाखा के क्षत्रपों का राज्य वागड़ पर होना निश्चित है, क्योंकि वर्त्तमान बांसवाड़ा राज्य के, जो पहले वागड़ (डूंगरपुर) राज्य का ही एक विभाग था, सरवाणिया नामक गांव से दिसम्बर सन् १९११ ई० (वि० सं० १९६८) में क्षत्रपवंशियों के चांदी के २३९३ सिक्के एक पात्र में गड़े

---

(१) जे. एम. कैम्बेल्; गेज़ेटियर ऑव् दि बॉम्बे प्रेसिडेन्सी; जिल्द १, भाग १, पृ० २१, टिप्पण ६।

हुए मिले, जो हमारे पास पढ़ने के लिए लाये गये[1]। उनसे जान पड़ता है कि इस प्रदेश पर इस वंश का राज्य रहा था। क्षत्रपों के शिलालेखों तथा सिक्कों में 'महाराजाधिराज', 'परमेश्वर', 'परमभट्टारक' आदि उपाधियां नहीं मिलतीं। उनके स्थान पर राजा को 'महाक्षत्रप राजा[2]' तथा राजकुमारों को, जो ज़िलों पर शासन करते थे, 'क्षत्रप राजा[3]' ही लिखा हुआ मिलता है। इनमें एक अनूठी रीति यह थी कि राजा के जितने पुत्र होते वे सब अपने पिता के पीछे क्रमशः राज्य के स्वामी बनते और उन सब के पीछे ज्येष्ठ पुत्र का बेटा यदि जीवित होता तो राज्य पाता। राजा और उसके पुत्र आदि (ज़िलों के शासक) अपने अपने नाम के सिक्के बनवाते थे, जो बहुत छोटे होते और जिनपर शक संवत् रहता था। ये सिक्के द्रम्म कहलाते थे, जिनपर बहुधा एक तरफ़ राजा का सिर तथा संवत् का अंक एवं दूसरी ओर बिरुद सहित अपने तथा अपने पिता के नामवाला लेख तथा मध्य में सूर्य, चन्द्र, मेरु और गंगा नदी सूचक चिह्न रहते थे।

इन क्षत्रपों का संक्षिप्त वृत्तांत, वंशवृक्ष तथा महाक्षत्रपों और क्षत्रपों की समय सहित तालिका हमने राजपूताने के इतिहास की पहली जिल्द (पृ० ६६-११०) में दी है। सरवाणिया से मिले हुए उपर्युक्त सिक्के शक सं० १०३ से २७५ (वि० सं० २३८ से ४१०=ई० स० १८१ से ३५३) तक के निम्नलिखित महाक्षत्रपों और क्षत्रपों के हैं।

महाक्षत्रप

(१) रुद्रसिंह (प्रथम)-शक सं० १०३-११४ (वि० सं० २३८-२४६=ई० स० १८१-१६२) के।

(२) ईश्वरदत्त-(राज्यवर्ष १ और २) के।

(१) राजपूताना म्यूज़िअम् (अजमेर) की ई० स० १६१३ की रिपोर्ट; पृ० ३-४।

(२) 'राज्ञो महाक्षत्रपस दामसेनपुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस विजयसेनस'। इ. जे. रापसन; कैटलॉग ऑफ़ दि कॉइन्स ऑफ आंध्र डाइनेस्टी, दि वेस्टर्न क्षत्रप्स, दि त्रैकूटक डाइनेस्टी एण्ड दि बोधि डाइनेस्टी; पृ० १३०-३१,

(३) 'राज्ञो मह(हा)क्षत्रपस दामसेन पुत्रस राज्ञः क्षत्रपस विजयसेनस'। वही; पृ० १२६-३०।

(३) रुद्रसेन (प्रथम)–शक सं० १३५-१४२ (वि० सं० २७०-२७७=ई० स० २१३-२२०) के ।

(४) दामसेन शक सं० १५०-१५७ (वि० सं० २८५-२९२=ई० स० २२८-२३५) के ।

(५) यशोदामा–शक सं० १६१ (वि० सं० २९६=ई० स० २३९) के ।

(६) विजयसेन शक सं० १६१-१७२ (वि० सं० २९६-३०७=ई० स० २३९-२५०) के ।

(७) दामजद्श्री (तीसरा)–शक सं० १७२-१७६ (वि० सं० ३०७-३११=ई० स० २५०-२५४) के।

(८) रुद्रसेन (दूसरा)–शक सं० १७८-१९६ (वि० सं० ३१३-३३१=ई० स० २५६-२७४) के।

(९) विश्वसिंह ।

(१०) भर्तृदामा–शक सं० २०६-२१५ (वि० सं० ३४१-३५०=ई० स० २८४-२९३) के ।

(११) स्वामी रुद्रसेन (तीसरा) शक सं० २७०-२७५ (वि० सं० ४०५-४१०= ई० स० ३४८-३५३) के ।

क्षत्रप

(१) रुद्रसेन (प्रथम) शक सं० १२१ (वि० सं० २५६=ई० स० १९९) के।

(२) दामजद्श्री (दूसरा)–शक सं० १५५ (वि० सं० २९०=ई० स० २३३) के।

(३) वीरदामा–शक सं० १५८-१६० (वि० सं० २९३-२९५ = ई० स० २३६-२३८) के ।

(४) यशोदामा।

(५) विजयसेन शक सं० १६० (वि० सं० २९५=ई० स० २३८) के ।

(६) विश्वसिंह–शक सं० १९८-२०० (वि० सं० ३३३-३३५=ई० स० २७६-२७८) के ।

(७) भर्तृदामा–शक सं० २००-२०४ (वि० सं० ३३५-३३९=ई० स० २७८-२८२) के ।

(८) विश्वसेन–शक्र सं० २१५-२२६ (वि० सं० ३५०-३६१=ई० स० २९३-३०४) के ।

(९) रुद्रसिंह (दूसरा)–शक सं० २२६-२३६ (वि० सं० ३६१-३७१=ई० स० ३०४-३१४) के ।

(१०) यशोदामा (दूसरा)–शक सं० २३९-२५४ (वि० सं० ३७४-३८९=ई० स० ३१७-३३२) के ।

इन क्षत्रपों में से महाक्षत्रप रुद्रसेन (तीसरे) के पश्चात् चार और महाक्षत्रपों ने राज्य किया था, परन्तु उनके सिक्के उक्त संग्रह में नहीं थे । अन्तिम राजा स्वामी रुद्रसिंह से गुप्तवंश के महाप्रतापी राजा चन्द्रगुप्त (दूसरे) ने, जिसका विरुद 'विक्रमादित्य' था, शक सं० ३१० (वि० सं० ४४५=ई० स० ३८८) के आसपास क्षत्रप राज्य को अपने राज्य में मिलाकर उक्त राज्य की समाप्ति कर दी, जिससे राजपूताने पर से उनका अधिकार उठ गया ।

क्षत्रपों के पीछे यहां गुप्तों, हूणों, कन्नौज के बैसवंशी राजा हर्ष और कन्नौज के रघुवंशी प्रतिहारों (पड़िहारों) का राज्य रहना सम्भव है, परन्तु उनका कोई शिलालेख, ताम्रपत्र या सिक्का अब तक वागड़ से नहीं मिला ।

परमार

वागड़ के परमार मालवे के परमारवंशी राजा वाक्पतिराज के दूसरे पुत्र डंबरसिंह[1] के वंशज थे । उनके अधिकार में वागड़ तथा छप्पन का प्रदेश था । सम्भव है कि डंबरसिंह को वागड़ का इलाक़ा जागीर में मिला हो । उसके अनन्तर धनिक हुआ, जिसने उज्जैन के महाकाल-मन्दिर के समीप धनेश्वर का देवालय बनवाया[2] । धनिक के पश्चात् उसका भतीजा

(१) मेरा राजपूताने का इतिहास; जिल्द १, पृ० २०६ ।

(२) अत्राशी(सी)त्परमारवंशवितते लब्धा(ब्धा)न्वयः पार्थिवो नाम्ना श्रीधनिको धनेस्व(श्व)र इव त्यागैककल्पद्रुमः ······॥ २६ ॥

श्रीमहाकालदेवस्य निकटे हिमपांडुरं ।

वि० सं० १११६ का पाणाहेड़ा (बांसवाड़ा राज्य) का शिलालेख ।

चच्च[1] और तदनंतर कंकदेव हुआ। मालवे के परमार राजा श्रीहर्ष (सीयक दूसरे) ने कर्णाटक के राठोड़ राजा खोट्टिकदेव पर चढ़ाई की, उस समय कंकदेव उसके साथ था। नर्मदा के किनारे खलिघट्ट नामक स्थान में युद्ध हुआ, जिसमें कंकदेव हाथी पर सवार होकर लड़ता हुआ मारा गया[2]। इस लड़ाई में श्रीहर्ष की विजय हुई। उसने आगे बढ़कर निज़ाम राज्यान्तर्गत मान्यखेट (मालखेड़) नगर को, जो राठोड़ों की राजधानी थी, वि० सं० १०२९ (ई० स० ९७२) में लूटा[3]। कंकदेव के चंडप और उसके सत्यराज नामक पुत्र हुआ, जिसका वैभव सुप्रसिद्ध राजा भोज ने बढ़ाया। वह गुजरातवालों से लड़ा था। उसकी स्त्री राजश्री चौहानवंश की थी[4]। सत्यराज के लिम्बराज और मंडलीक नामक दो पुत्र थे, जिनमें से ज्येष्ठ (लिंबराज) उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसके पीछे उसका छोटा भाई मंडलीक, जिसे मंडनदेव

---

(१) चच्चनामाभवत्तस्माद्भ्रातृसूनुर्महानृपः···॥ २८ ॥

पाणाहेड़ा का शिलालेख।

(२) तस्यान्वये करिकरोद्धुरबा(बा)हुदण्डः।

श्रीकंकदेव इति लब्ध(ब्ध)जयो ब(ब)भूव······॥ १७ ॥

आरूढो गजपृष्ठमद्भुतस(श)रासारै रणे सर्व्वतः

कर्णाटाधिपतेर्ब्ब(र्ब्ब)लं विदलयंस्तन्नर्म्मदायास्तटे।

श्रीश्रीहर्षनृपस्य मालवपतेः कृत्वा तथारिक्षयं

यः स्वर्गं सुभटो ययौ सुरवधूनेत्रोत्पलैरर्च्चितः·········॥१९॥

वि० सं० ११३६ की अर्थूणा गांव (बांसवाड़ा राज्य) की प्रशस्ति।

यः श्रीखोट्टिकदेवदत्तसमरः श्रीसीयकार्थे कृती।

रेवायाः खलिघट्टनामनि तटे युध्वा(द्‌ध्वा) प्रतस्थे दिवम्॥ २९ ॥

पाणाहेड़ा के लेख की छाप से।

(३) विक्कमकालस्स गए अउणत्तीसुत्तरे सहस्सम्मि (१०२९)।

मालवनरिंदधाडीए लूडिए मन्नखेडम्मि ॥

धनपाल; पाइअलच्छीनाममाला (भावनगर संस्करण), पृ० ४५।

(४) पाणाहेड़ा का शिलालेख।

भी कहते थे, वागड़ का स्वामी हुआ। वह मालवे के परमार राजा भोज और उसके उत्तराधिकारी (पुत्र) जयसिंह (प्रथम) का सामंत रहा। उसने प्रबल सेनापति कन्ह को पकड़कर उसके घोड़ों और हाथियों सहित जयसिंह के सुपुर्द किया और वि० सं० १११६ (ई० स० १०५६) में पाणाहेड़ा गांव (बांसवाड़ा राज्य) में अपने नाम से मंडलेश्वर नामक शिव-मन्दिर बनवाया[1]। उसका पुत्र चामुंडराज था, जिसने वि० सं० ११३६ (ई० स० १०७६) में अर्थूणा नगर (बांसवाड़ा राज्य) में अपने पिता मंडलीक के निमित्त मंडनेश (मण्डलेश्वर) का विशाल शिवालय निर्माण करवाया[2]। उसने सिंधुराज को नष्ट किया। यह सिन्धुराज कहां का था, इसका पता नहीं चलता। उसके समय के वि० सं० ११३६, ११३७, ११५७ और ११५६ (ई० स० १०७६, १०८०, ११०० और ११०२) के चार शिलालेख अबतक मिले हैं। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र विजयराज हुआ, जिसका सांधिविग्रहिक वालभ जाति के कायस्थ राजपाल का पुत्र वामन था। उसके समय के वि० सं० ११६५ और ११६६ (ई० स० ११०८ और ११०६) के दो शिलालेख मिले हैं[3]। उसके पीछे के किसी राजा का शिलालेख न मिलने से उसके उत्तराधिकारियों के नामों का पता नहीं चलता।

वि० सं० १२३६ (ई० स० ११७६) से कुछ पूर्व मेवाड़ के गुहिलवंशी राजा सामंतसिंह ने मेवाड़ का राज्य छूट जाने पर वागड़ की राजधानी बड़ौदे पर अपना अधिकार जमाया। फिर उसने तथा उसके वंशजों ने शनैः-शनैः इन परमारों से सारा वागड़ छीन लिया। अब इनके वंश में सौंथ (महीकांठा, गुजरात) के परमार राजा हैं।

वागड़ के परमारों की राजधानी अर्थूणा नगर थी। इस समय वह प्राचीन नगर नष्ट हो गया है और उसके पास अर्थूणा गांव नया बसा है, परन्तु परमारों के राज्य-काल में वह एक वैभव-संपन्न नगर था, जिसके बहुतसे मन्दिर आदि अबतक विद्यमान हैं।

---

(१) राजपूताना म्यूज़िअम् की ई० स० १९१६ की रिपोर्ट; पृ० २-३।

(२) अर्थूणा के मंडलेश्वर के शिवालय की बड़ी प्रशस्ति।

(३) मेरा राजपूताने का इतिहास; जिल्द १, पृष्ठ २०७।

४

तीसरा अध्याय

वागड़ पर गुहिलवंशियों का अधिकार

डूंगरपुर राज्य के प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में सभी इतिहास-वेत्ता यह स्वीकार करते हैं कि डूंगरपुर के राजा मेवाड़ के गुहिलवंश की बड़ी शाखा में हैं और उदयपुर के राजा छोटी शाखा में, परन्तु पहले इसका ठीक ठीक निर्णय नहीं हुआ था कि वागड़ के राज्य का संस्थापक कौन और कब हुआ? भिन्न भिन्न इतिहासकारों ने इस विषय में जो कुछ लिखा है उसकी समालोचना करने से पूर्व उसका सारांश नीचे लिखा जाता है—

(अ) मेवाड़ में राजसमुद्र नामक सुविशाल तालाब के राजनगर क़स्बे की तरफ़ के बांध पर २५ ताकों में लगी हुई २५ बड़ी शिलाओं पर खुदा हुआ 'राजप्रशस्तिमहाकाव्य', जो वि० सं० १७३२ (ई० स० १६७६) में समाप्त हुआ था, सुरक्षित है। उसमें लिखा है—"उस (रावल समरसिंह) का पुत्र रावल कर्ण था। कर्ण का ज्येष्ठ पुत्र माहप डूंगरपुर का राजा हुआ। उसके दूसरे पुत्र राहप ने अपने पिता की आज्ञा से मंडोवर (मंडोर, जोधपुर राज्य) जाकर मोकलसी को जीता और उसे बांधकर वह अपने पिता के पास ले आया, जिसपर कर्ण ने उस (मोकलसी) का 'राणा' खिताब छीनकर अपने प्रिय पुत्र राहप को दिया और उसे (मोकलसी को) छोड़ दिया[1]"।

---

(१) तस्यात्मजोभून्नृपकर्णरावलः प्रोक्तास्तु षड्विंशतिरावला इमे ।
कर्णात्मजो माहपरावलोऽभवत्स डुंगराद्ये तु पुरे नृपो बभौ ॥२८॥
कर्णस्य जातस्तनयो द्वितीयः श्रीराहपः कर्णनृपाज्ञयोग्रः ।
वाक्येन वा शाकुनिकस्य गत्वा मंडोवरे मोकलसीं स जित्वा ॥२९॥
तातांतिके त्वानयति स्म बद्धं कर्णोस्य राणाविरुदं गृहीत्वा ।
मुमोच तं चारु ददौ तदीयं राणाभिधानं प्रियराहपाय ॥३०॥
राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ३ ।

(आ) 'वीरविनोद' नामक मेवाड़ के बृहत् इतिहास के रचयिता महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास ने उक्त ग्रन्थ में लिखा है—"दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ का क़िला बड़े रक्त-प्रवाह के साथ लिया, जब कि समरसिंह के पुत्र रावल रत्नसिंह वहां के राजा थे। आखिरकार हि० स० ७०३ मुहर्रम (वि० सं० १३६० भाद्रपद=ई० स० १३०३ ऑगस्ट) में अलाउद्दीन ने चारों तरफ़ से क़िले पर सख्त हमला किया। राजपूतों ने जोश में आकर क़िले के दर्वाज़े खोल दिये और रावल रत्नसिंह मय कई हज़ार राजपूतों के बड़ी बहादुरी के साथ लड़कर मारा गया। बादशाह ने भी नाराज़ होकर क़त्ले-आम का हुक्म दे दिया और ६ महीना ७ दिन तक लड़ाई रहकर हि० स० ७०३ ता० ३ मुहर्रम (वि० सं० १३६० भाद्रपद शुक्ला ४=ई० स० १३०३ ता० १८ ऑगस्ट) को बादशाह ने क़िला फ़तह कर लिया। रावल रत्नसिंह ने अपने कई भाई-बेटों को यह हिदायत करके क़िले से बाहर निकाल दिया था कि यदि हम मारे जावें, तो तुम मुसलमानों से लड़कर क़िला वापस लेना। बाज़ लोगों का क़ौल है कि रावल रत्नसिंह के दूसरे भाई और बाज़ लोग कहते हैं कि रत्नसिंह के बेटे, कर्णसिंह पश्चिमी पहाड़ों में रावल कहलाये। उस ज़माने में मंडोवर का रईस मोकल पड़िहार पहिली अदावतों के कारण रावल कर्णसिंह के कुटुम्बियों पर हमला करता था, इस सबब से उक्त रावल का बड़ा पुत्र माहप तो आहड़ में और छोटा राहप अपने नये आबाद किये हुए सीसोदा गांव में रहता था। माहप की टालाटूली देखकर अपने बाप की इजाज़त से राहप मोकल पड़िहार को पकड़ लाया, तब कर्णसिंह ने उस (मोकल पड़िहार) का 'राणा' खिताब छीनकर राहप को दिया और मोकल को 'राव' की पदवी देकर छोड़ दिया। इसके बाद कर्णसिंह तो चित्तौड़ पर हमला करने की हालत में मारा गया और माहप चित्तौड़ लेने से नाउम्मेद होकर डूंगरपुर को चला गया। बाज़े लोग इस विषय में यह कहते हैं कि माहप ने अपने भाई राणा राहप की मदद से डूंगर्या भील को मारकर डूंगरपुर लिया था[1]"।

(१) वीर-विनोद; भाग १, पृ० २७३, २८८।

(इ) कर्नल जेम्स टॉड ने अपने 'राजस्थान' नामक इतिहास में लिखा है—"समरसी के कई पुत्र थे, परन्तु करण उसका वारिस था।......करण सं० १२४९ (ई० स० ११९३) में गद्दी पर बैठा........चित्तोड़ का राज्य छोटे भाई के वंश में गया और बड़ा भाई डूंगरपुर शहर आबाद कर एक नई शाखा स्थापित करने को पश्चिम के जंगलों में चला गया । इस विषय में इतिहासों के कथन में एक दूसरे से भिन्नता है। आम तौर पर यह कहा जाता है कि करण के दो पुत्र—माहप और राहप—थे, परन्तु यह भूल है। समरसी और सूरजमल भाई थे। समरसी का पुत्र करण और करण का माहप हुआ, जिसकी माता बागड़ के चौहान-वंश की थी । सूरजमल का पुत्र भरत किसी राज्य-प्रपंच के कारण चित्तोड़ से निकाला जाने पर सिंध में चला गया और वहां के मुसलमान राजा से उसको अरोर की जागीर मिली। उसने पुंगल के भट्टि (भाटी) राजा की पुत्री से विवाह किया, जिससे राहप उत्पन्न हुआ। भरत के चले जाने और माहप के अयोग्य होने के दुःख से करण मर गया। माहप उस(करण)को छोड़कर अपने ननिहालवाले चौहानों में जा रहा।"

"जालोर के सोनगरे राजा ने करण की पुत्री से विवाह किया था, जिससे रणधवल पैदा हुआ । उस सोनगरे ने मुख्य मुख्य गुहिलोतों को छल से मारकर अपने पुत्र (रणधवल) को चित्तोड़ की गद्दी पर बिठला दिया। माहप में अपना पैतृक राज्य प्राप्त करने का सामर्थ्य न होने तथा उसके लिए यत्न करने की इच्छा न रहने से बप्पा रावल का राज्य-सिंहासन चौहानों के आधीन हो जाता, परन्तु उस घराने के एक परम्परागत भाट ने उसे बचा दिया। वह भाट अरोर जाकर भरत से मिला। सिंध की सेना के साथ भरत माहप के छोड़े हुए राज्य के लिए वहां से चला और उसने पाली के पास सोनगरों को परास्त किया। मेवाड़ के राजपूत उसके झंडे के नीचे चले गये और उनकी सहायता से वह चित्तोड़ की गद्दी पर बैठ गया[1]"।

---

(१) कर्नल जेम्स टॉड; 'राजस्थान' (क्रुक-सम्पादित), जिल्द १, पृ० ३०३-३०६।

(ई) मेजर के. डी. अर्सकिन ने अपने डूंगरपुर राज्य के गेज़ेटियर में लिखा है—"बारहवीं शताब्दी के अन्त में करणसिंह मेवाड़ का रावल था और उसकी राजधानी चित्तोड़ थी । उसके माहप और राहप नामक दो पुत्र थे। मंडोर (जोधपुर राज्य) का पड़िहार राणा मोकल उसके देश को बर्बाद करता था, जिससे रावल ने मोकल को वहां से निकालने के लिए माहप को भेजा, परन्तु वह उस कार्य को न कर सका । इसपर उसने राहप को यह काम सौंपा। वह तुरन्त उस पड़िहार को क़ैद कर ले आया। इससे करणसिंह ने राहप को अपना उत्तराधिकारी नियत किया, जिससे अप्रसन्न होकर माहप अपने पिता को छोड़ कुछ समय तक अहाड़ (उदय-पुर के पास) में जा रहा। वहां से दक्षिण में जाकर वह अपने ननिहालवाले वागड़ के चौहानों के यहां रहा। फिर शनैः-शनैः भील सरदारों को हटाकर वह तथा उसके वंशज उस देश के अधिकांश के स्वामी बन गये। इधर उक्त वंश की राणा शाखा का पहला पुरुष मेवाड़ के करणसिंह का छोटा पुत्र राहप हुआ । यद्यपि इस जनश्रुति के विरुद्ध यह निश्चित है कि डूंगरपुर से मिले हुए शिला-लेखों में से किसी में भी माहप को वागड़ का राजा नहीं लिखा, तो भी यह सम्भव है कि माहप ऊपर लिखे अनुसार वागड़ को चला गया हो और उसने अपने ननिहालवालों के यहां आलस्य में पड़ा रहना पसन्द किया हो जिससे उसका नाम शिलालेखों में छोड़ दिया गया हो।"

"दूसरा कथन है कि ई० स० १३०३ में अलाउद्दीन खिलजी के चित्तोड़ के घेरे में मेवाड़ के रावल रत्नसिंह के मारे जाने के पश्चात् उसके वंश के जो लोग बचे वे वागड़ को भाग गये और वहां उन्होंने पृथक् राज्य स्थापित किया। यदि यह बात ठीक है, तो हमें यह मानना पड़ेगा कि वागड़ के पहले ९ राजाओं ने मिलकर करीब ९० वर्ष राज्य किया, क्योंकि डेसां से मिले हुए शिलालेख से विदित होता है कि दसवां राजा ई० स० १३९६ (वि० सं० १४५३) में विद्यमान था।"

"फिर भी यह निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि वागड़ के राजा,

अर्थात् वर्तमान डूंगरपुर और बांसवाड़ा के महारावल, गहलोत या सीसोदिया वंश के हैं और उनके पूर्वजों ने १३ वीं या १४ वीं (सम्भवतः १३ वीं) शताब्दी में उस देश में जाकर रावल का खिताब और अपना कौमी नाम अहाड़िया (अहाड़ गांव पर से) धारण किया और वे उदयपुर के वर्तमान राजवंश की बड़ी शाखा में होने का दावा करते हैं"[1]।

(उ) मुंहणोत नेणसी ने अपनी प्रसिद्ध ख्यात में, जो वि० सं० १७०५ और १७२२ (ई० स० १६४८ और १६६५) के बीच में संग्रह की गई थी, लिखा है—"रावल समतसी[2] (सामंतसिंह) चित्तोड़ का राजा था। उसके छोटे भाई ने उसकी अच्छी सेवा बजाई, जिससे प्रसन्न होकर उसने उसे कहा कि मैंने चित्तोड़ का राज्य तुमको दिया। इसपर छोटे भाई ने निवेदन किया कि चित्तोड़ का राज्य मुझे कौन देता है ? उसके स्वामी तो आप हैं। तब समतसी ने उत्तर दिया कि यह मेरा वचन है कि चित्तोड़ का राज्य तुम्हें दे दिया। इसपर छोटे भाई ने कहा कि यदि आप वास्तव में चित्तोड़ का राज्य मुझे देते हैं तो इन राजपूतों (सरदारों) से वैसा कहला दो। तब समतसी ने उनसे वैसा कहने के लिए कहा, जिसपर उन्होंने निवेदन किया कि आप इस बात को भली-भांति सोच लें। इसके उत्तर में उसने कहा कि मैंने प्रसन्नता पूर्वक अपना राज्य अपने छोटे भाई को दे दिया, इसमें शंका की कोई बात नहीं है। तब सरदारों ने उसे स्वीकार कर लिया। फिर उसने अपने छोटे भाई को राणा के खिताब के साथ राज्य अर्पण कर दिया और वह स्वयं अहाड़ चला गया। कुछ समय पश्चात् उसने अपने राजपूतों से कहा कि मैंने अपने भाई को राज्य दे दिया है, इसलिए अब मेरा यहां रहना उचित नहीं, मुझे अपने लिए कोई दूसरा राज्य प्राप्त करना चाहिए।"

"उस समय वागड़ में बड़ौदे का स्वामी चौरसीमलक (डूंगरपुर की

(१) डूंगरपुर राज्य का गेज़ेटियर (अंग्रेज़ी); पृ० १३१-३२।

(२) हस्तलिखित प्रति में समतसी के स्थान पर समरसी लिखा है, जो लेखक-दोष ही है।

ख्यात में 'चोरसीमल' नाम है) था। उसके अधीन ५०० भोमिये थे। उसके यहां एक डोम रहता था, जिसकी स्त्री को उसने अपनी उपपत्नी (पासवान) बना रक्खा था। वह रात को उस डोम से गवाया करता और वह भाग न जाय इसलिए उसपर पहरा नियत रखता था। एक दिन अवसर पाकर वह बड़ौदे से भागकर रावल समतसी के पास अहाड़ पहुंचा और उसने उसे चौरसी पर हमला कर बड़ौदा लेने को उकसाया। समतसी नये राज्य की तलाश में तो था ही, जिससे उसने उसके कथन को स्वीकार कर लिया। फिर वहां का हाल मालूम कर वह ५०० सवारों के साथ अहाड़ से चढ़ा और अचानक बड़ौदे जा पहुंचा। वहां घोड़ों को छोड़कर उसने अपनी सेना के दो दल बनाये। एक दल को उसने अपने पास रक्खा और दूसरे को उस डोम के साथ चौरसी के निवास-स्थान पर भेजा। वहां जाकर उसने चौरसी के महल के पहरेवालों को मार डाला, फिर महल में पहुंचकर चौरसी को भी मार लिया। इस तरह समतसी ने बड़ौदे पर अधिकार कर लिया और शनैः-शनैः सारा वागड़ देश उसके अधीन हो गया[1]"।

ऊपर उद्धृत किये हुए पांच इतिहास-लेखकों के अवतरणों में से—

(१) 'राजप्रशस्तिमहाकाव्य' के कर्त्ता ने मेवाड़ के रावल समरसिंह के पुत्र कर्ण के ज्येष्ठ पुत्र माहप-द्वारा वागड़ (डूंगरपुर) के राज्य की स्थापना बतलाई है, पर इसके लिए कोई संवत् नहीं दिया।

(२) 'वीरविनोद' में समरसिंह के पीछे उसके पुत्र रत्नसिंह का राजा होना तथा वि० सं० १३६० (ई० स० १३०३) में अलाउद्दीन खिलजी के चित्तोड़ के हमले में उसका मारा जाना लिखकर रत्नसिंह के बड़े पुत्र करणसिंह के बड़े बेटे माहप का डूंगरपुर राज्य लेना बतलाया है। इसमें से इतना तो ठीक है कि रावल समरसिंह के पीछे उसका पुत्र रत्नसिंह मेवाड़ का राजा हुआ और वह वि० सं० १३६० (ई० स० १३०३) में मारा गया, क्योंकि महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) के समय की वि० सं० १५१७ (ई० स० १४६०) की कुंभलगढ़ की प्रशस्ति में समरसिंह के बाद उसके

---

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात (हस्तलिखित); पृ० १६।

पुत्र रत्नसिंह का राजा[1] होना तथा मुसलमानों के साथ की लड़ाई में उसका मारा जाना लिखा है। समरसिंह के समय के वि० सं० १३३० से १३५८ (ई० स० १२७३ से १३०२) तक के आठ[2] शिलालेख मिल चुके हैं, जिनसे निश्चित है कि वि० सं० १३३० से १३५८ तक वह मेवाड़ का राजा था। उसके पीछे उसका पुत्र रत्नसिंह राजा हुआ, जिसके समय का वि० सं० १३५९ (ई० स० १३०३) का एक शिलालेख मिला[3] है। वह (रत्नसिंह) वि० सं० १३६० (ई० स १३०३) में मारा गया[4], जैसा कि फ़ारसी तवारीख़ों से पाया जाता है। ऐसी दशा में 'राजप्रशस्ति' और 'वीर-विनोद' के माहप का वि० सं० १३६० (ई० स० १३०३) के पीछे अर्थात् वि० सं० १३७७ (ई० स० १३२०) के आस-पास होना माना जा सकता है, जो असम्भव है, क्योंकि डूंगरपुर राज्य से मिले हुए कई एक शिलालेखों से सिद्ध होता है कि वि० सं० १२३६ (ई० स० ११७९) से पूर्व

---

(१) स(=समरसिंहः) रत्नसिंहं तनयं नियुज्य
स्वचित्रकूटाचलरक्षणाय ।
महेशपूजाहतकल्मषौघः
इलापतिस्स्वर्गपतिर्बभूव ॥ १७६ ॥
पुं(खुं)माणवंश(श्यः) खलु लक्ष्मसिंह-
स्तस्मिन् गते दुर्गवरं रक्ष ।
कुलस्थितिं कापुरुषैर्विमुक्तां
न जातु धीराः पुरुषास्त्यजंति ॥ १७७ ॥······॥ १७८ ॥
इत्थं म्लेच्छक्षयं कृत्वा संख्ये······नृपः ।
चित्रकूटाचलं रक्षन् शस्त्रपूतो दिवं ययौ ॥ १७९ ॥

कुंभलगढ़ की प्रशस्ति ।

(२) इन शिलालेखों के लिए देखो मेरा राजपूताने का इतिहास; जि० १, पृ० ४७७–८२ ।

(३) वही; पृ० ४९५ का टि० ३ ।

(४) वही; पृ० ४८४–८६ ।

डूंगरपुर (वागड़) पर वर्त्तमान राजवंश का अधिकार हो चुका था जो आगे बतलाया जायगा। डूंगरपुर राज्य से सम्बन्ध रखनेवाले लगभग २५० शिलालेख तथा दानपत्र मेरे देखने में आये, जिनमें से कई एक में वहां के राजवंश की वंशावली भी है, परन्तु उनमें से किसी भी पुराने लेख में माहप का नाम नहीं है, जैसा कि मेजर अर्स्किन ने भी लिखा है।

(३) कर्नल टॉड ने रावल समरसी (समरसिंह) के पौत्र और करण के पुत्र माहप को डूंगरपुर (वागड़) राज्य का संस्थापक माना है। यह भी ठीक नहीं है, क्योंकि कुंभलगढ़ के शिलालेख के आधार पर पहले बतलाया जा चुका है कि समरसिंह का पुत्र करण (करणसिंह) नहीं, किंतु रत्नसिंह था। इसी प्रकार करण की गद्दीनशीनी वि० सं० १२४६ (ई० स० ११६२) में होना लिखा है, जो अशुद्ध है, क्योंकि यह संवत् तो प्रसिद्ध चौहान राजा पृथ्वीराज के शहाबुद्दीन गोरी के साथ की लड़ाई में मारे जाने का है। कर्नल टॉड ने 'पृथ्वीराजरासो' के भरोसे पर मेवाड़ के रावल समरसिंह का पृथ्वीराज चौहान की सहायतार्थ शहाबुद्दीन के साथ युद्ध में मारा जाना और समरसिंह के देहान्त तथा उसके पुत्र करण की गद्दीनशीनी का वही संवत् मान लिया, परन्तु पहले बतलाया जा चुका है कि समरसिंह वि० सं० १३५८ (ई० स० १३०२) अर्थात् पृथ्वीराज चौहान के देहान्त के १०६ वर्ष पीछे तक जीवित था।

(४) मेजर अर्स्किन ने डूंगरपुर (वागड़) राज्य की स्थापना के सम्बन्ध में दो कथनों का उल्लेख किया है, परन्तु उनमें से किसी को भी उसने निश्चित रूप से स्वीकार नहीं किया। फिर भी ई० स० की १३-वीं या १४वीं शताब्दी में माहप का वागड़ में जाकर अपने ननिहालवाले चौहानों के यहां रहना और भील सरदारों से वागड़ (डूंगरपुर) का अधिकतर भाग लेना संभव माना है, जो ठीक नहीं है, क्योंकि शिलालेखों से यह निश्चित है कि वागड़ (डूंगरपुर) राज्य पर वर्त्तमान राजवंश का अधिकार वि० सं० १२३६ (ई० स० ११७६) से पूर्व हो चुका था।

(५) शिलालेख भी मुंहणोत नैणसी के इस कथन की पुष्टि करते

हैं कि राज्य छूटने पर मेवाड़ (चित्तोड़) के रावल समतसी (सामंतसिंह) ने वागड़ की राजधानी बड़ौदे पर अधिकार कर उस प्रदेश का अधिकांश अपने आधीन कर लिया, परन्तु वे इस कथन को स्वीकार नहीं करते कि सामंतसिंह ने चित्तोड़ (मेवाड़) का राज्य अपनी प्रसन्नता से अपने छोटे भाई को दिया था।

अब यह विचारणीय विषय है कि डूंगरपुर (वागड़) राज्य पर गुहिलवंशियों का अधिकार होने के विषय में शिलालेखों का क्या मत है?

आबू पर अचलगढ़ के नीचे अचलेश्वर नामक प्रसिद्ध मन्दिर के पास के मठ में मेवाड़ के रावल समरसिंह का वि० सं० १३४२ (ई० स० १२८५) का बड़ा शिलालेख लगा हुआ है, जिसमें लिखा है—"उस(क्षेमसिंह) से कामदेव से भी अधिक सुन्दर शरीरवाला राजा सामंतसिंह उत्पन्न हुआ, जिसने सामंतों का सर्वस्व छीन लिया।"

"उसके पीछे कुमारसिंह ने इस पृथ्वी को—जिसने पहले कभी गुहिलवंश का वियोग नहीं देखा था, [परन्तु] जो [पीछे से] शत्रु के हाथ में चली गई थी और जिसकी शोभा खुम्माण की संतति के वियोग से फीकी पड़ गई थी—फिर छीनकर (प्राप्तकर) उसे राजन्वती (राजा-वाली) बनाया[१]"।

इन दो श्लोकों से ज्ञात होता है कि सामंतसिंह ने अपने सामंतों (सरदारों) का सर्वस्व छीनकर उन्हें अप्रसन्न किया था और उससे मेवाड़ का राज्य छूट गया, जिसको कुमारसिंह ने पुनः प्राप्त किया।

(१) सामंतसिंहनामा कामाधिकसर्वसुन्दरशरीरः ।
भूपालोजनि तस्मादपहृतसामंतसर्वस्वः ॥ ३६ ॥
षों(खों)माणसंततिवियोगविलक्ष्लक्ष्मी-
मेनामदृष्टविरहां गुहिलान्वयस्य ।
राजन्वतीं वसुमतीमकरोत् कुमार-
सिंहस्ततो रिपुगतामपहृत्य भूयः ॥ ३७ ॥

इं. ऐं; जि० १६, पृ० ३४९।

मेवाड़ और वागड़ (डूंगरपुर राज्य) के राजा सामंतसिंह के राजत्व-काल के दो शिलालेख हमें मिले हैं, जिनमें से एक डूंगरपुर राज्य की सीमा से मिले हुए वर्त्तमान मेवाड़ के छप्पन ज़िले के जगत गांव के देवी के मन्दिर के स्तंभ पर खुदा हुआ वि० सं० १२२८ फाल्गुन सुदि ७ (ई० स० ११७२ ता० ३ फ़रवरी) गुरुवार का[1] और दूसरा डूंगरपुर राज्य में ही सोलज गांव से लगभग डेढ़ मील दूर माही नदी के तट पर बोरेश्वर महादेव के मन्दिर की दीवार में लगा हुआ वि० सं० १२३६ (ई० स० ११७६) का[2] है। इन शिलालेखों से निश्चित है कि सामंतसिंह वि० सं० १२२८ से १२३६ (ई० स० ११७२ से ११७६) तक जीवित था और उसका अधिकार वि० सं० १२३६ (ई० स० ११७६) से पूर्व वागड़ पर हो चुका था।

डूंगरपुर की ख्यात एवं अर्सकिन के डूंगरपुर के गैज़ेटियर[3] में सामंतसिंह के पीछे सेहड़ी (सीहड़देव), देदा या देदू (देवपालदेव) और वीरसिंहदेव के नाम हैं, परन्तु शिलालेखादि में उनके स्थान में जयतसिंह, सीहड़देव, विजयसिंहदेव (जयसिंहदेव), देवपालदेव और वीरसिंह नाम मिलते[4] हैं। इनमें से जयतसिंह का कोई शिलालेख नहीं मिला, किन्तु उसका नाम सीहड़देव के पुत्र विजयसिंह के वि० सं० १३०६ (ई० स० १२५०) के शिलालेख में मिलता है। सीहड़देव के दो शिलालेखों में से पहला (आषाढादि) वि० सं० १२७७ (चैत्रादि १२७८) चैत्र सुदि १४ (ई० स०

---

(१) संवत् १२२८ वरिखे (वर्षे) फ(फा)ल्गुनसुदि ७ गुरौ श्री-अंबिकादेवी(व्यै) महाराजश्रीसामंतसिंघ(ह)देवेन सुवर्न(र्ण)मयकलसं प्रदत्त(म्)······················ ।

(२) संवत् १२३६·············श्रीसावं(मं)तसिंहराज्ये······।

(३) मेजर अर्सकिन; ए गैज़ेटियर ऑव् दि डूंगरपुर स्टेट; टेबल नं० २१, पृ० ३१।

(४) बड़वे की ख्यात और गैज़ेटियर में जयतसिंह और विजयसिंह के नाम छूट गये हैं, जिसका कारण यही हो सकता है कि बड़वे को पूरे नाम नहीं मिल सके।

१२२१ ता० ८ मार्च) सोमवार[1] का उपर्युक्त जगत् गांव का तथा दूसरा डूंगरपुर राज्य के भैकरोड़ गांव के पास के वेजवा माता नामक देवी के मंदिर की दीवार में लगा हुआ वि० सं० १२९१ पौष सुदि ३ (ई० स० १२३४ ता० २४ दिसम्बर) रविवार[2] का है।

सीहड़देव के पुत्र विजयसिंहदेव के दो शिलालेखों में से एक जगत् गांव के उपर्युक्त देवी के मन्दिर से वि० सं० १३०६ फाल्गुन सुदि ३ (ई० स० १२५० ता० ६ फरवरी) रविवार[3] का मिला है और दूसरा जगत् गांव से कुछ ही मील दूर के झाड़ोल गांव के विजयनाथ के मंदिर से वि० सं० १३०८ कार्तिक सुदि १५ (ई० स० १२५१ ता० ३० अक्टोबर) सोमवार[4] का मिला है। देवपालदेव (देदू) का कोई शिलालेख नहीं मिला, किन्तु उसके उत्तराधिकारी वीरसिंहदेव का एक दानपत्र (आषाढादि) वि० सं० १३४३ (चैत्रादि १३४४) वैशाख वदि १५ (अमावास्या, ई० स० १२८७ ता० १३ अप्रेल) रविवार[5]

---

(१) संवत् १२७७ वरिषे(वर्षे)चैत्रशुदि १४ सोमदिने···महाराऊ (रावल)श्रीसीहडदेवराज्ये····················।

(२) संवत् १२९१ वर्षे। पौष शुदि ३ रवौ। वागडवट्ट(ट)-पद्रके महाराजाधिराजश्रीसीहडदेवविजयोदयी·············।

(३) ॐ॥ संवत् १३०६ वर्षे फागुण(फाल्गुन)सुदि ३ रविदिने रेवति(ती)नच्त्रे मीनस्थिते चंद्रे देवीऑबिका[यै] सुवन(सुवर्ण)डं(दं)ड-(डं) प्रतिठि(ष्ठि)त(तं)। गुहिलवंसे(शे) रा०(=रावल) जयतसी(सिं)-हपुत्रसीहडपौत्रवी(वि)जयस्यंघ(सिंह)देवेन कारापितं············।

(४) ॐ संवत् १३०८ वर्षे(वर्षे) काती(र्ति)कसुदि १५ सोमदिने अद्येह वागडमंडले महाराजकुलश्रीजयस्यंघ(सिंह)देवकल्याणविजयराज्ये झाडोलग्रामे श्रीविजयनाथदेव················।

(५) ॐ॥ संवत् १३४३ वैशाख अ(=असित) १५ रवावद्येह वागड-वटपद्रके महाराजकुलश्रीवीरसिंहदेवकल्याणविजयराज्ये······इहैव······ महाराजकुलश्रीदेवपालदेवश्रेयसे···············।

का प्राप्त हुआ है, जिसमें देवपालदेव के श्रेय के निमित्त भूमिदान करने का उल्लेख है। उक्त ताम्रपत्र के अतिरिक्त उस(वीरसिंहदेव)के तीन शिलालेख भी मिले हैं, जिनमें से पहला वागड़ की पुरानी राजधानी बड़ौदा (वटपद्रक) के शिवालय में पाषाण की कुंडी पर खुदा हुआ (आषाढ़ादि) वि० सं० १३४६ (चैत्रादि १३५०) वैशाख सुदि ३ (ई० स० १२६३ ता० ११ अप्रेल) शनिवार का[1], दूसरा बमासा गांव का वि० सं० १३५६ आषाढ़ सुदि १५ (ई० स० १३०२ ता० ११ जून) का[2] और तीसरा बरवासा गांव का वि० सं० १३५६ (ई० स० १३०२) का[3] है। इस प्रकार सामंतसिंह के पीछे वागड़ में जयतसिंह, सीहड़देव, विजयसिंहदेव (जयसिंहदेव), देवपालदेव (देदू) और वीरसिंह का राजा होना सिद्ध है।

उदयपुर राज्य के शिलालेखों में मिलनेवाली वहां के राजाओं की वंशावली में सामंतसिंह के पीछे उसके छोटे भाई कुमारसिंह का और उसके पीछे क्रमशः मथनसिंह, पद्मसिंह, जैत्रसिंह (जयतसिंह, जयतल), तेजसिंह, समरसिंह और रत्नसिंह का राजा होना लिखा है। सामन्तसिंह के पीछे के तीन राजाओं—कुमारसिंह, मथनसिंह और पद्मसिंह—का कोई शिलालेख अबतक नहीं मिला, परन्तु जैत्रसिंह के समय के वि० सं० १२७० और १२७६ (ई० स० १२१३ और १२२२) के दो लेख मिल चुके हैं[4] और उसके राजत्व-काल की हस्तलिखित पुस्तकों से वि० सं० १३०६ (ई० स० १२५२) तक[5] उसका विद्यमान होना निश्चित है। उसके उत्तराधिकारी तेजसिंह के समय के हस्तलिखित ग्रन्थ तथा दो शिलालेखों से उस(तेजसिंह)का वि० सं० १३१७ और

(१) संवत् १३४६ वर्षे वैशाखशुदि ३ शनौ महाराजकुलश्रीवि-(वी)रसिंहदेवकल्याणविजयराज्ये .... ।

(२) ॐ संवत् १३५६ वर्षे अषा[ढ]सुदि १५ वागडवटपद्रके महाराजकुलश्रीवि(वी)रसिंहदेवकल्याणविजयराज्ये .... ।

(३) संवत् १३५६ वर्षे महाराजकुलश्रीवीरसिंघ(ह)देव ... ।

(४) मेरा राजपूताने का इतिहास; जि० १, पृष्ठ ४७० ।

(५) वही; पृ० ४७०-७१ ।

१३२४ (ई० स० १२६० और १२६७) तक जीवित होना तो निर्विवाद है[1]। उस (तेजसिंह) के पुत्र समरसिंह के राज्य-समय के वि० सं० १३३० से १३५८ (ई० स० १२७३ से १३०२) तक के आठ शिलालेख[2] मिले हैं। समरसिंह के पुत्र रत्नसिंह के समय का वि० सं० १३५९ का[3] एक शिलालेख प्राप्त हुआ है और वि० सं० १३६० (ई० स० १३०३) में उसका मारा जाना निश्चित है[4]।

ऊपर लिखे हुए उदयपुर और डूंगरपुर राज्यों के राजाओं के शिलालेखादि से स्पष्ट है कि जब मेवाड़ पर कुमारसिंह से रत्नसिंह तक के राजाओं का राज्य रहा, उस समय वागड़ पर सामंतसिंह से वीरसिंहदेव तक ६ राजाओं ने राज्य किया, जैसा नीचे के वंशवृक्ष में बतलाया गया है—
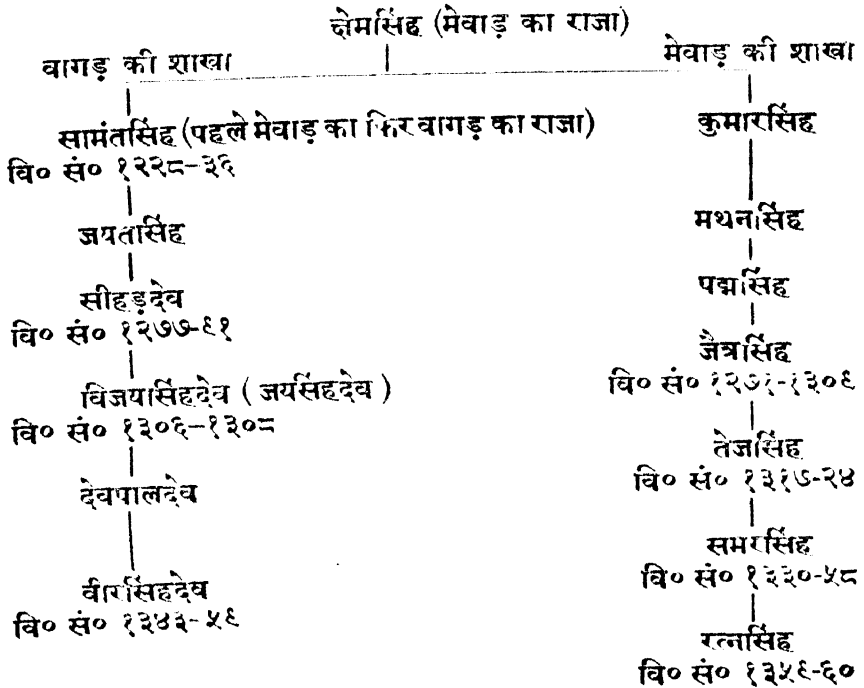
(१) मेरा राजपूताने का इतिहास; जि० १, पृ० ४७३-७४।

(२) वही; पृ० ४७७-८२।

(३) वही; पृ० ४९५।

(४) वही; पृ० ४८४। वीरविनोद भाग १; पृ० २७३-८८।

ऊपर के वंश-वृक्ष में दिये हुए मेवाड़ तथा वागड़ के राजाओं के निश्चित संवतों से स्पष्ट है कि वागड़ (डूंगरपुर) का छठा राजा वीरसिंह-देव मेवाड़ के राजा समरसिंह और रत्नसिंह का समकालीन था। ऐसी दशा में माहप को, जिसे राजप्रशस्ति तथा कर्नल टॉड ने समरसिंह का पौत्र और 'वीर-वीनोद' के कर्त्ता ने प्रपौत्र बतलाया है, वागड़ (डूंगरपुर) के राज्य का संस्थापक मानना सर्वथा असंभव है।

मुंहणोत नैणसी ने समतसी (सामंतसिंह) का बड़ौदे जाकर वहां अपना राज्य जमाना लिखा है, जो यथार्थ है, क्योंकि सीहड़देव के शिलालेख और वीरसिंहदेव के दानपत्र तथा शिलालेखों से बतलाया जा चुका है कि उनकी राजधानी 'वटपद्रक' (बड़ौदा) ही थी।

वागड़ (डूंगरपुर) के राज्य का वास्तविक संस्थापक मेवाड़ के राजा क्षेमसिंह का ज्येष्ठ पुत्र सामंतसिंह ही था, जिसने अपना राज्य छूट जाने पर वि० सं० १२३६ से पूर्व वागड़ में जाकर चौरसीमल को मारकर बड़ौदे का इलाक़ा अपने अधीन किया और वहां अपना नया राज्य स्थापित किया। फिर वह और उसके वंशज वहीं रहे। उसके छोटे भाई कुमारसिंह ने गुजरात के राजा को प्रसन्न कर आहाड़ प्राप्त किया और उसके वंशज मथनसिंह तथा पद्मसिंह आदि मेवाड़ में रहे।

हमारे इस कथन से राजपूताने के इतिहास से प्रेम रखनेवाले अवश्य यह शंका करेंगे कि 'राजप्रशस्ति,' 'वीरविनोद,' टॉड के 'राजस्थान' तथा अर्स्किन के 'डूंगरपुर राज्य के गैज़ेटियर' में मेवाड़ के रावल समरसिंह या रत्नसिंह के पीछे करणसिंह और उसके पुत्रों (माहप और राहप) का राजा होना लिखा है, परन्तु इस प्रकरण में माहप या राहप में से किसी को भी मेवाड़ या वागड़ का राजा होना स्वीकार नहीं किया, तो क्या ये दोनों नाम बिलकुल कृत्रिम हैं ? यदि ऐसा नहीं है, तो उदयपुर और डूंगरपुर के राजाओं की वंशावलियों में उनके लिए कोई स्थान है या नहीं ? इस शंका के समाधान में हमारा यह कथन है कि वे (माहप और राहप) रावल सम-रसिंह या रत्नसिंह के पीछे नहीं, किन्तु उनसे बहुत पहले हुए। उनमें से

करणसिंह मेवाड़ का राजा भी अवश्य हुआ, परन्तु माहप और राहप के लिए न तो मेवाड़ के और न डूंगरपुर के राजाओं की नामावली में स्थान है, क्योंकि उनका स्थान मेवाड़ की छोटी शाखा अर्थात् सामंतवर्ग में है। मेवाड़ की जिस छोटी शाखा में वे हुए वह 'राणा' शाखा थी और उसकी जागीर का मुख्य स्थान 'सीसोदा' गांव होने से उस शाखावाले सीसोदिये कहलाये। हमारे इस कथन का प्रमाण यह है कि राणपुर (जोधपुर राज्य के गोड़वाड़ ज़िले में सादड़ी गांव के निकट) के प्रसिद्ध जैन-मन्दिर में लगे हुए महाराणा कुम्भकर्ण के समय के वि० सं० १४९६ (ई० स० १४३९) के शिलालेख में मेवाड़ के जिस राजा का नाम रणसिंह लिखा है उसी का नाम उसी महाराणा कुंभकर्ण के समय के बने हुए 'एकलिंग-माहात्म्य' में कर्ण (कर्णसिंह) दिया है और साथ में यह भी लिखा है कि "उस (कर्णसिंह) से दो शाखाएं—एक रावल नाम की और दूसरी 'राणा' नाम की—निकलीं। 'रावल' शाखा में जितसिंह (जैत्रसिंह), तेजसिंह, समरसिंह और रत्नसिंह हुए और 'राणा' शाखा में राहप, माहप आदि हुए[1]। इससे स्पष्ट है कि रणसिंह और कर्णसिंह दोनों एक ही पुरुष के नाम हैं और महाराणा कुंभकर्ण के समय में रणसिंह या करणसिंह एवं राहप और माहप का समरसिंह या रत्नसिंह के पीछे नहीं, किन्तु जैत्रसिंह से भी पूर्व होना माना जाता था। इस जटिल समस्या को, जिसने मेवाड़ के इतिहास-लेखकों को बड़े चक्कर में डाला, अधिक सरल करने के लिए शिलालेखादि से मेवाड़ की

---

(१) अथ कर्णभूमिभर्तुः शाखाद्विती(त)यं विभाती(ति) भूलोके।
एका राउलनाम्नी राणानाम्नी परा महती ॥५०॥
अद्यापि यां (यस्यां) जितसिंहस्तेजःसिंहस्तथा समरसिंहः
श्रीचित्रकूटदुर्गेभूवन् जितशत्रवो भूपाः ॥५१॥

आगे रावल शाखा के राजाओं का रत्नसिंह तक का विस्तार से वर्णन है, फिर राणा शाखा के माहप, राहप आदि का वर्णन इस प्रकार है—

अपरस्यां शाखायां माहपराह[प]प्रमुखा महीपालाः।
यद्वंशे नरपतयो गजपतय छत्रपतयोपि ॥७०॥

'रावल' तथा 'राणा' शाखाओं का रणसिंह (करणसिंह) से लेकर राणा हम्मीर तक का वंशवृक्ष नीचे दिया जाता है—

रणसिंह या करणसिंह
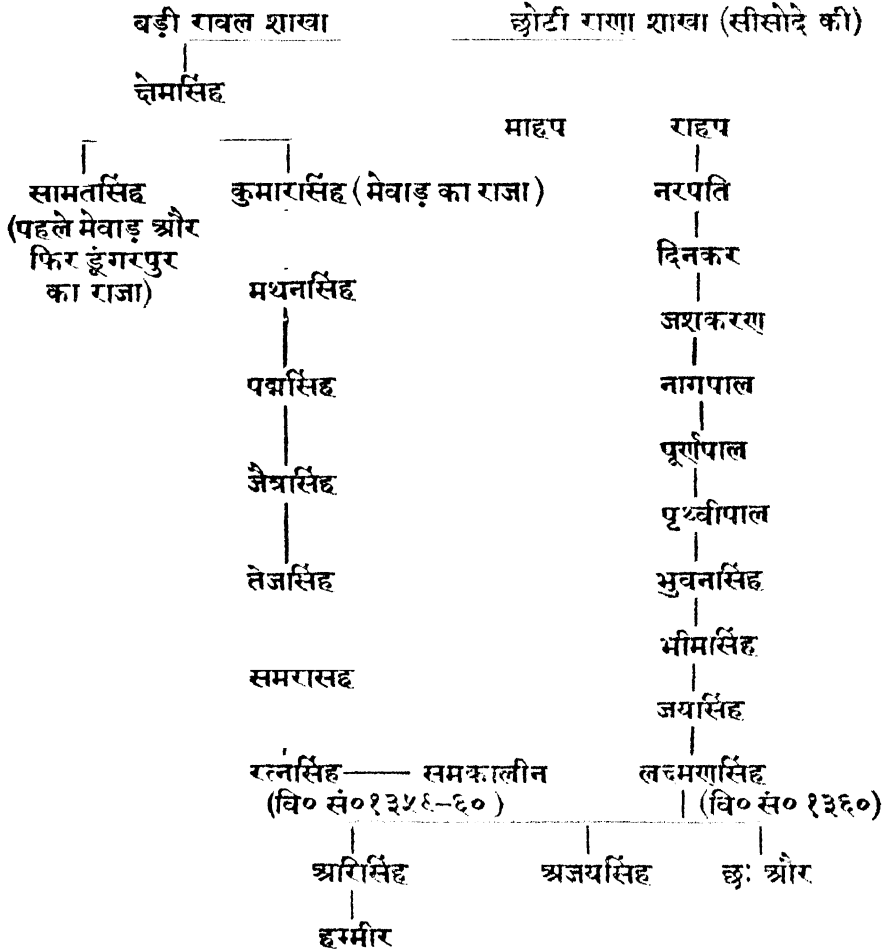
महाराणा कुंभकर्ण के समय के उपर्युक्त वि० सं० १५१७ (ई० स० १४६०) के कुंभलगढ़ के लेख से जान पड़ता है कि रावल रत्नसिंह के समय चित्तोड़ पर मुसलमानों (अलाउद्दीन खिलजी) का हमला हुआ, जिसमें राणा लखमसी (लक्ष्मणसिंह) वीरता से लड़कर अपने सात पुत्रों

सहित मारा गया[1]। इससे रावल रत्नसिंह और राणा लक्ष्मणसिंह का समकालीन होना निश्चित है। ऐसी दशा में रावल रत्नसिंह के पीछे करणसिंह तथा राहप और माहप का होना सर्वथा असंभव है। 'वीरविनोद' से पाया जाता है कि लक्ष्मणसिंह का ज्येष्ठ पुत्र अरिसिंह भी उसी लड़ाई में मारा गया और केवल अजयसिंह घायल होकर बचा। उस समय अरिसिंह का पुत्र हम्मीर बालक था, जिससे वह (अजयसिंह) राणाओं के अधीन के सीसोदे के इलाके का स्वामी बना, परन्तु उसने अपने अन्तिम समय अपने पुत्र को नहीं किन्तु हम्मीर को, जो वास्तविक हक़दार था, अपना उत्तराधिकारी नियत किया। हम्मीर ने अलाउद्दीन खिलजी के सामन्त मालदेव के पुत्र से चित्तोड़ का क़िला छीना और क्रमशः सारे मेवाड़ पर अपना राज्य जमा लिया। वि० सं० १४२१ (ई० स० १३६४) में उसका देहान्त होना माना जाता है।

अब यह जानना आवश्यक है कि उपर्युक्त इतिहास-लेखकों ने रावल समरसिंह से ८ और रत्नसिंह से ९ पुश्त पहले होनेवाले करणसिंह (रणसिंह) को समरसिंह या रत्नसिंह का उत्तराधिकारी कैसे मान लिया? अनुमान होता है कि उन्होंने बड़वों (भाटों) की पुस्तकों को प्रामाणिक समझकर उनके अनुसार लिख दिया हो, परन्तु पुरातत्वानुसंधान की कसोटी पर भाटों की पुस्तकें ई० स० की १४वीं शताब्दी के पूर्व के इतिहास के लिए अपनी प्रामाणिकता प्रकट नहीं कर सकतीं, क्योंकि उनमें उस समय से पूर्व की वंशावलियां बहुधा कृत्रिम पाई जाती हैं, शुद्ध नाम बहुत कम मिलते हैं और १४वीं शताब्दी के पूर्व के जो कुछ संवत् उनमें मिलते हैं वे भी विश्वास के योग्य नहीं हैं।

भाटों को यह तो ज्ञात था कि बड़े भाई के वंशज डूंगरपुर के राजा और छोटे भाई के वंशज उदयपुर के स्वामी हैं, परन्तु उन्हें यह ज्ञान नहीं था कि कब और किस कारण कौन से बड़े भाई ने वागड़ में आकर नया राज्य स्थापित किया? इसलिए इस उलझन को सुलझाने के लिए उन्होंने

(१) देखो मेरा राजपूताने का इतिहास; जि० १, पृ० ४०७ पर भिन्न भिन्न लेखों से दी हुई सीसोदे के राणाओं की वंशावलियां।

रत्नसिंह के पीछे करणसिंह का मेवाड़ का राजा होना, माहप का मंडोवर के प्रतिहार मोकल को सज़ा न दे सकना, उसके छोटे भाई राहप-द्वारा यह काम होने और उसके पिता का उस (राहप) को उत्तराधिकारी बनाने पर माहप का अप्रसन्न होकर चला जाना और वागड़ का नया राज्य स्थापित करना लिख दिया। उनको रावल समरसिंह के पुत्र रत्नसिंह का अलाउद्दीन के साथ की चित्तोड़ की लड़ाई में लड़कर मारे जाने का ठीक संवत् (१३६०) ज्ञात नहीं था। इसीलिए उन्होंने यह कल्पना खड़ी कर अपना कथन ठीक बतलाने के लिए मनमाने संवतों की सृष्टि की।

रावल समरसिंह के पुत्र रत्नसिंह का वि० सं० १३६० (ई० स० १३०३) में मारा जाना निश्चित है। इस अवस्था में भाटों के बतलाये हुए करणसिंह का राज्यकाल वि० सं० १३६० से १३८० तक और उसके पुत्र माहप का १३८० से १४०० तक मानना पड़ेगा, परन्तु डूंगरपुर राज्य के शिलालेखों से स्पष्ट है कि वि० सं० १२३६ के पूर्व वागड़ पर गुहिलवंशियों का राज्य स्थापित हो गया था और राजा सामन्तसिंह तथा उसके वंशज, जिनके नामों और निश्चित संवतों का पहले उल्लेख किया जा चुका है, वहां राज्य करते थे। अब तक उक्त राज्य से जितने पुराने शिलालेख मिले हैं, उनमें माहप का कहीं उल्लेख नहीं है, अतएव रत्नसिंह के वंशज माहप के द्वारा डूंगरपुर राज्य की स्थापना का सारा कथन कल्पित है।

भाटों के कथन पर विश्वास कर राजप्रशस्ति के कर्त्ता, कर्नल टॉड, कविराजा श्यामलदास और मेजर अर्स्किन आदि विद्वानों ने भी माहप को डूंगरपुर राज्य का संस्थापक मान लिया जिसका कारण यही है कि उस समय उनको डूंगरपुर राज्य से मिलनेवाले शिलालेख प्राप्त नहीं हुए थे। यदि वे उन्हें मिल जाते तो वे माहप को डूंगरपुर राज्य का संस्थापक न मानकर सामन्तसिंह को ही मानते।

चौथा अध्याय

महारावल सामन्तसिंह

मेवाड़ के राजा क्षेमसिंह के सामन्तसिंह और कुमारसिंह नामक दो पुत्र थे, जिनमें से ज्येष्ठ सामन्तसिंह[1] मेवाड़ का स्वामी बना। उसने गुजरात के राजा से युद्ध किया, जिसका मेवाड़ या गुजरात के शिलालेखों अथवा ऐतिहासिक पुस्तकों में कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता, परन्तु आबू पर देलवाड़ा गांव में तेजपाल (वस्तुपाल के भाई) के बनवाये हुए 'लूणवसही' नामक नेमिनाथ के जैन मन्दिर के शिलालेख के रचयिता गुर्जरेश्वर-पुरोहित सोमेश्वर ने लिखा है—'आबू के परमार राजा धारावर्ष के छोटे भाई प्रह्लादन की तीक्ष्ण तलवार ने गुजरात के राजा की उस समय रक्षा की जब उसका बल सामन्तसिंह ने रणखेत में तोड़ दिया था[2]'। धारावर्ष गुजरात के सोलंकियों का सामन्त था, अतएव उसने अपने छोटे भाई प्रह्लादन को सामन्तसिंह के साथ की लड़ाई में गुजरात के राजा की सहायतार्थ भेजा होगा। उस लेख से यह नहीं जान पड़ता कि सामंतसिंह ने गुजरात के किस राजा के बल को तोड़ा। अबतक सामंतसिंह के दो शिलालेख मिले हैं, जिनमें से एक डूंगरपुर की सीमा से

सामन्तसिंह का गुजरात के राजा से युद्ध

(१) मेरा राजपूताने का इतिहास, जिल्द १, पृ० ४२२। सामन्तसिंह के पूर्व के मेवाड़ के राजाओं के लिए देखो डूंगरपुर के इतिहास के अन्त का परिशिष्ट, संख्या १।

(२) शत्रुश्रेणीगलविदलनोन्निद्रनिस्तृं(स्त्रिं)शधारो
धारावर्षः समजनि सुतस्तस्य विश्वप्रशस्यः।...॥३६[॥]...
सामंतसिंहसमितिक्षितिविक्षतौजः-
श्रीगूर्ज्जरक्षितिपरक्षणदक्षिणासिः।
प्रह्लादनस्तदनुजो दनुजोत्तमारि-
चारित्रमत्र पुनरुज्ज्वलयांचकार॥ ३८॥

आबू की वि० सं० १२८७ की प्रशस्ति; ए. इं; जि० ८, पृ० २११।

मिले हुए मेवाड़ के छप्पन ज़िले के जगत नामक गांव में देवी के मंदिर के स्तंभ पर खुदा हुआ वि० सं० १२२८ फाल्गुन सुदि ७ गुरुवार (ई० स० ११७२ ता० ३ फरवरी) का[1] है, जिसमें सामन्तसिंह की ओर से उक्त मन्दिर पर सुवर्ण कलश चढ़ाने का उल्लेख है। दूसरा डूंगरपुर राज्य में सोलज गांव से लगभग डेढ़ मील पर बोरेश्वर महादेव के मन्दिर की दीवार में लगा हुआ वि० सं० १२३६ (ई० स० ११७६) का[2] है। वि० सं० ११९९ से १२३० (ई० स० ११४३ से ११७४) तक गुजरात की गद्दी पर सोलंकी राजा कुमारपाल था। उसके पीछे वि० सं० १२३० से १२३३ (ई० स० ११७४ से ११७७) तक उसका भतीजा अजयपाल राजा रहा। फिर वि० सं० १२३३ से १२३५ (ई० स० ११७७ से ११७९) तक उस (अजयपाल) के बालक पुत्र मूलराज (दूसरे) ने, जिसको बाल मूलराज भी लिखा है, शासन किया। तदनन्तर वि० सं० १२३५ से १२९८ (ई० स० ११७९ से १२४२) तक उसका छोटा भाई भीमदेव (दूसरा, भोलाभीम) राज्य करता रहा[3]। ये चारों सामंतसिंह के समकालीन थे। इनमें से कुमारपाल बड़ा प्रतापी राजा हुआ। जैन-धर्म का पोषक होने से कई समकालीन या पिछले जैन-विद्वानों आदि ने उसके चरित्र-ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें उसके समय की प्रायः सब घटनाओं का वर्णन मिलता है, परन्तु उनमें सामंतसिंह के साथ के उसके युद्ध का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। मूलराज (दूसरा, बाल मूलराज) और भीमदेव (दूसरा, भोलाभीम) दोनों राजगद्दी पर बैठे उस समय बालक होने से युद्ध में जाने के योग्य न थे, इसलिए कुमारपाल के उत्तराधिकारी अजयपाल के साथ सामंतसिंह का युद्ध होना चाहिये। सोमेश्वर ने अपने 'सुरथोत्सव' काव्य के १५ वें सर्ग में अपने पूर्वजों का परिचय दिया

---

(१) मूल अवतरण के लिए देखो ऊपर पृ० ३५, टिप्पण १।

(२) मूल अवतरण के लिए देखो ऊपर पृ० ३५, टिप्पण २।
इस शिलालेख में सहजाक के पुत्र आमदेव, उसकी पत्नी मोहिनी और उनके दो पुत्रों के द्वारा सामंतसिंह के राज्य-समय उक्त मन्दिर के बनाये जाने का उल्लेख है।

(३) मेरा राजपूताने का इतिहास; जिल्द १, पृ० २१६-२१।

है और उनमें से जिस जिसने अपने यजमान गुजरात के राजाओं की जो जो सेवा बजाई, उसका भी उल्लेख किया है। अपने पूर्वज कुमार के प्रसंग में उसने लिखा है—'उसने कटुकेश्वर नामक शिव (अर्द्धनारीश्वर) की आराधना कर रणखेत में लगे हुए अजयपाल राजा के अनेक घावों की दारुण पीड़ा को शान्त किया[1]'। इससे निश्चित है कि सामन्तसिंह के साथ के युद्ध में गुजरात का राजा अजयपाल बुरी तरह घायल हुआ था। यह लड़ाई किसलिए हुई, यह अब तक अन्धकार में ही है, परन्तु सम्भव है कि कुमारपाल जैसे प्रबल राजा के मरने पर सामंतसिंह ने बरसों से दूसरों के अधिकार में गया हुआ अपने पूर्वजों का चित्तोड़-दुर्ग उस(कुमारपाल)-के उद्धत एवं मंदबुद्धि उत्तराधिकारी अजयपाल से छीनने के लिए यह लड़ाई ठानी हो और उसमें उसको परास्त कर सफलता प्राप्त की हो। यह घटना वि० सं० १२३१ (ई० स० ११७४) के आसपास होनी चाहिये।

रावल समरसिंह के वि० सं० १३४२ (ई० स० १२८५) के आबू के लेख में सामंतसिंह के विषय में लिखा है—'उस(क्षेमसिंह)से कामदेव से भी अधिक सुन्दर शरीरवाला राजा सामंतसिंह उत्पन्न हुआ, जिसने अपने सामंतों का सर्वस्व छीन लिया (अर्थात् अपने सरदारों की जागीरें छीनकर उनको अप्रसन्न किया)। उसके पीछे

सामंतसिंह से मेवाड़ का राज्य छूटना

(१) यः शौचसंयमपटुः कटुकेश्वराख्य-
माराध्य भूधरसुताघटितार्धदेहम्।
तां दारुणामपि रणाङ्गणजातघात-
व्रातव्यथामजयपालनृपादपास्थत् ॥३२॥

काव्यमाला में छपा हुआ 'सुरथोत्सव' काव्य, सर्ग १५।

सामंतसिंहयुद्धे हि श्रीअजयपालदेवः प्रहारपीडया मृत्युकोटिमायातः कुमारनाम्ना पुरोहितेन श्रीकटुकेश्वरमाराध्य पुनः स जीवितः।

वही; टिप्पण ५।

परमार प्रह्लादन-रचित 'पार्थपराक्रमव्यायोग' की चिमनलाल डी० दलाल-लिखित अंग्रेज़ी भूमिका, पृ० ४ ('गायकवाड़ ओरिएण्टल सीरीज़' में प्रकाशित)।

कुमारसिंह ने इस पृथ्वी को—जिसने पहले कभी गुहिलवंश का वियोग नहीं सहा था [परन्तु] जो उस समय शत्रु के हाथ में चली गई थी और जिसकी शोभा खुमाण की संतति के वियोग से फीकी पड़ गई थी—फिर छीनकर राजन्वती (राजावाली) बनाया"। इससे यही ज्ञात होता है कि कुमारसिंह के पहले किसी शत्रु राजा ने गुहिलवंशियों से मेवाड़ का राज्य छीन लिया था, परन्तु (उस) कुमारसिंहने अपना (पैतृक) राज्य पुनः प्राप्त किया। वह शत्रु राजा कौन था, इस विषय में आबू का लेख कुछ भी नहीं बतलाता, परन्तु राणा कुंभकर्ण (कुंभा) के समय के वि० सं० १५१७ (ई० स० १४६०) के कुंभलगढ़ के लेख से इस त्रुटि की किसी तरह पूर्ति हो जाती है, क्योंकि उसमें स्पष्ट लिखा है कि सामंतसिंह नामक राजा भूतल पर हुआ। उसका भाई कुमारसिंह था, जिसने अपना [पैतृक] राज्य छीननेवाले कीतू[२] नामक शत्रु राजा को देश से निकाला और गुजरात के राजा

(१) मूल अवतरण के लिए देखो ऊपर पृष्ठ ३४, टिप्पण १।

(२) यह कीतू मेवाड़ के पड़ोसी और नाडौल (जोधपुर राज्य के गोड़वाड़ ज़िले में) के चौहान राजा आल्हणदेव का तीसरा पुत्र था। साहसी, वीर एवं उच्चाभिलाषी होने के कारण अपने ही बाहुबल से जालोर (कांचनगिरि=सोनलगढ़) का राज्य परमारों से छीनकर वह चौहानों की सोनगरा शाखा का मूलपुरुष और स्वतन्त्र राजा हुआ। उसने सिवाणे का क़िला (जोधपुर राज्य में) भी परमारों से छीनकर अपने राज्य में मिला लिया था। चौहानों के शिलालेखों और ताम्रपत्रों में कीतू का नाम कीर्तिपाल मिलता है, परन्तु राजपूताने में वह 'कीतू' नाम से प्रसिद्ध है, जैसा कि मुंहणोत नैणसी की ख्यात तथा राजपूताने की अन्य ख्यातों में लिखा मिलता है। उस (कीर्तिपाल)का अब तक केवल एक ही लेख मिला है, जो वि० सं० १२१८ (ई० स० ११६१) का दानपत्र है। उससे विदित होता है कि उस समय उसका पिता जीवित था और उस(कीर्तिपाल)को अपने पिता की ओर से १२ गांवों की जागीर मिली थी, जिसका मुख्य गांव नडूलाई (नारलाई, जोधपुर राज्य के गोड़वाड़ ज़िले में, मेवाड़ की सीमा के निकट) था। जालोर से मिले हुए वि० सं० १२३९ (ई० स० ११८२) के शिलालेख से पाया जाता है कि उक्त संवत् में कीर्तिपाल (कीतू) का पुत्र समरसिंह वहां का राजा था, अतएव कीर्तिपाल (कीतू) का उस समय से पूर्व मर जाना निश्चित है। नाडौल के चौहान गुजरात के सोलंकियों के सामंत

को प्रसन्न कर आघाटपुर (आहाड़) प्राप्त किया अर्थात् गुजरात के राजा की कृपा से आघाटपुर पाया[1]।

कुछ समय पूर्व उदयपुर राज्य के आहाड़ (आघाटपुर) नामक स्थान से गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव (दूसरे, भोलाभीम) का (आषाढ़ादि) वि० सं० १२६३ श्रावण सुदि २ (ई० स० १२०६ ता० ६ जुलाई) रविवार का दानपत्र मिला है, जिसमें मूलराज से लेकर भीमदेव दूसरे तक की वंशावली उद्धृत करने के पश्चात् लिखा है कि 'परमभट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर, अभिनवसिद्धराज श्रीभीमदेव ने अपने अधीन के मेदपाट (मेवाड़) मंडल (ज़िले) के आहाड़ में एक अरहट (नाम अस्पष्ट), उससे सम्बन्ध रखनेवाली भूमि तथा कड़वा के अधिकारवाला क्षेत्र एवं उसके निकट का मकान नौली गांव के रहनेवाले कृष्णात्रियगोत्र के रायकवाल ज्ञाति के ब्राह्मण बोहड़ के पुत्र रविदेव को दान किया[2]'।

थे, इससे सम्भव है कि गुजरातवालों की ओर से कीतू मेवाड़ का शासक नियत हुआ हो। फिर कुमारसिंह ने गुजरात के राजा को प्रसन्न कर (उसकी अधीनता स्वीकार कर) कीतू को मेवाड़ से निकलवाया हो। अथवा गुजरातवालों के साथ की लड़ाई में सामंतसिंह के निर्बल हो जाने पर कीतू ने मेवाड़ को अपने अधीन कर लिया हो और कुमारसिंह ने गुजरात के स्वामी को प्रसन्न कर (उसकी अधीनता स्वीकार कर) उसके द्वारा कीतू को निकलवाकर आहाड़ प्राप्त किया हो।

(१) सामंतसिंहनामा भूपतिर्भूतले जातः ॥ १४६ ॥
भ्राता कुमारसिंहोभूत्स्वराज्यग्राहिणं परं ।
देशान्निष्कासयामास कीतूसंज्ञं नृपं तु यः ॥ १५० ॥
स्वीकृतमाघाटपुरं गूर्जरनृपतिं प्रसाद्य········· ।

कुंभलगढ़ का लेख—अप्रकाशित।

(२) ॐ स्वस्ति······समस्तराजावलीविराजितपरमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीमूलराजदेवपादानुध्यात··· ··· ···परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वराभिनवसिद्धराजश्रीमद्भीमदेवः स्वभुज्यमानमेदपाटमंडलांतःपातिनः समस्तराजपुरुषान्······वो(बो)धयत्यस्तुवः संविदितं यथा। श्रीमद्विक्रमादित्योत्पादितसंवत्सरशतेषु द्वादशेसु(षु) त्रिषष्ठि उत्तरेषु लौ० श्राम्व(व)ण-

इस दानपत्र से निश्चित है कि वि० सं० १२६३ (ई० स० १२०६) तक मेवाड़ पर गुजरात के राजाओं का अधिकार था। कुंभलगढ़ की उपर्युक्त प्रशस्ति में भी कुमारसिंह का गुजरात के राजा को प्रसन्न कर आहाड़ प्राप्त करना लिखा है, जो उक्त ताम्रपत्र के कथन की पुष्टि करता है। अजयपाल को सख्त घायल करने का बदला लेने के लिए गुजरातवालों ने सामंतसिंह पर चढ़ाई कर उससे मेवाड़ का राज्य छीन लिया, जिससे उसने वागड़ में जाकर नया राज्य स्थापित किया। संभवतः यह घटना वि० सं० १२३२ (ई० स० ११७५) के आसपास हुई होगी।

सामंतसिंह से वागड़ का राज्य भी छूटना

गुजरातवालों ने अपने शत्रु सामंतसिंह को मेवाड़ से निकाला, इतना ही नहीं, किन्तु उन्होंने उसको वागड़ में भी स्थिरता से रहने न दिया। डूंगरपुर राज्यान्तर्गत बोरेश्वर के मंदिर के शिलालेख से निश्चित है कि वि० सं० १२३६ (ई० स० ११७६) में वह (सामंतसिंह) वागड़ का राजा था। उदयपुर राज्य के प्रसिद्ध तालाब जयसमुद्र (ढेबर) के बांध के निकटवर्ती वीरपुर (गातोड़) गांव से वि० सं० १२४२ कार्तिक सुदि १५ (ई० स० ११८५ ता० ६ नवम्बर) रविवार का उसी भीमदेव (दूसरे) के सामंत महाराजाधिराज अमृतपाल का

मासशुक्लपक्षद्वितीयायां रविवारेऽत्रांकतोपि संवत् १२६३ श्राम्व(व)णशुदि २ रवावस्यां······श्रीमदाहाडतल······[वमाउवा ?]नामारघट्टस्तत्प्रतिव(ब)द्धवा(वा)ह्यभूमीकडवासत्कक्षेत्रसमं श्रीमदाहाडमध्ये अस्य स·········गृहान्वितः······नवलीग्रामवास्त० कृष्णात्रिगोत्रे(त्रेयगोत्राय)रायकवालज्ञाती० ब्रा(ब्रा)० वीहडसुतरविदेवाय शासनेनोदकपूर्वमस्माभिः प्रदत्तः···

मूल ताम्रपत्र की छाप से।

इस ताम्रपत्र का आवश्यक अंश ही ऊपर उद्धृत किया है, बाकी छोड़ दिया है। दिसम्बर १९३३ के अन्त में बड़ौदे में सातवीं इंडियन ओरिएण्टल कॉन्फ्रेन्स (अखिल भारतवर्षीय प्राच्य-परिषद्) हुई, जिसमें मैंने इसी दानपत्र के सम्बन्ध में एक निबंध पढ़ा था, जो उक्त परिषद् की रिपोर्ट में यथासमय प्रकाशित होगा। उसमें पूरे दानपत्र का संपादन किया गया है।

एक दान-पत्र मिला है, जिसमें लिखा है कि उस (भीमदेव) के कृपापात्र सामंत एवं वागड़ के वटपद्रक (बड़ौदा) मंडल (ज़िले) पर राज्य करनेवाले महाराजाधिराज गुहिलदत्त (गुहिल) वंशी विजयपाल के पुत्र महाराजाधिराज अमृतपालदेव ने भारद्वाज गोत्र के रायकवाल ब्राह्मण ठा० मदना को, जो यज्ञकर्त्ता था, छप्पन प्रदेश के गातोड़ गांव में लिहसाड़िया नाम का एक अरहट और दो हल की भूमि दान की[1]।

इस दानपत्र से पाया जाता है कि गुजरातवालों ने सामंतसिंह से वागड़ का राज्य छीनकर गुहिलवंशी विजयपाल या उसके पुत्र अमृतपाल को दिया। अमृतपाल वि० सं० १२४२ में बड़ौदे का स्वामी था और (युवराज) सोमेश्वरदेव उसका महाकुमार था। अमृतपाल का सामंतसिंह से क्या संबन्ध था, यह अज्ञात है, परन्तु इतना स्पष्ट है कि वह उसी वंश का था।

---

(१) ॐ॥ स्वस्ति श्रीनृपविक्रमकालातीतसंवत्सरद्वादशशतेषु द्विचत्वारिंशदधिकेषु अंकतोऽपि संवत् १२४२ वर्षे कार्त्तिकसुदि १५ रवावद्येह श्रीमदणहिलपाटकाधिष्ठितपरमेश्वरपरमभट्टारकश्रीउमापतिवरलब्धप्रसादराज्यराजलक्ष्मीस्वयंवरप्रौढप्रतापश्रीचौलुक्यकुलोद्यानमार्त्तंडअभिनवसिद्धराजश्रीमहाराजाधिराजश्रीमद्भीमदेवीयकल्याणविजयराज्ये............अस्य च परमप्रभोः प्रसादपत्तलायां भुज्यमानवागडवटपद्रकमंडले महाराजाधिराजश्रीअमृतपालदेवीयराज्ये.........शासनपत्रमभिलिख्यते यथा ॥ श्रीगुहिलदत्तवंशे श्रीमद्भर्तृपट्टाभिधानमहाराजाधिराजश्रीविजयपालसुतमहाराजाधिराजश्रीअमृतपालदेव-.........संवो(बो)धयत्यस्तु वः संविदितं यथा। यदस्माभिः.........मातापित्रोरात्मनश्च श्रेयसे.......भारद्वाजगोत्राय रायकवालज्ञातीयब्रा(ब्रा)०...ठकु०...सुत ठकु० मदनाजा(या)जकाय षट्पंचाशन्मंडले गातउडग्रामे लिहसाडियाभिधानमरघट्टमेकं तथा वा(बा)ह्यभूमीहलद्वयसमन्विता......शासनपूर्व्वका उदकेन प्रदत्ता।......स्वहस्तोऽयं महाराजाधिराजश्रीअमृतपालदेवस्य॥ स्वहस्तोयं महाकुमारश्रीसोमेश्वरदेवस्य॥

मूल ताम्रपत्र की छाप से।

यहां केवल आवश्यक अंश ही उद्धृत किया गया है।

पहले बतलाया जा चुका है कि सामंतसिंह वि० सं० १२३६ (ई० स० ११७९) तक वागड़ का राजा था। उसके छः वर्ष पश्चात् अर्थात् वि० सं० १२४२ (ई० स० ११८५) में गुजरात के राजा भीमदेव (दूसरे) का सामंत और विजयपाल का पुत्र अमृतपाल वागड़ का स्वामी था और बड़ौदा उसकी राजधानी थी। सम्भव है कि इन छः वर्षों में किसी समय सामंतसिंह को निकालकर गुजरात के राजा भीमदेव ने विजयपाल या उसके पुत्र अमृतपाल को बड़ौदे का राजा बनाया हो। डूंगरपुर राज्य के बड़ा दीवड़ा नामक गांव के शिव-मन्दिर की मूर्ति के आसन पर वि० सं० १२५३ (ई० स० ११९६) का लेख है, जिसका आशय यह है कि महाराज भीमदेव (दूसरे) के राज्य-समय डव्वणक (दीवड़ा) गांव में श्रीनित्यप्रमोदितदेव के मन्दिर में महंतम पल्हा के पुत्र वैजा ने मूर्ति स्थापित कराई[1]। इससे ज्ञात होता है कि उक्त संवत् (१२५३) तक तो भीमदेव का वागड़ पर अधिकार अवश्य था।

पृथाबाई की कथा

वि० सं० १६०० (ई० स० १५४३) के आसपास के बने हुए पृथ्वीराज-रासो के आधार पर सारे राजपूताने में यह प्रसिद्धि है कि सांभर और अजमेर के चौहानवंशी सुविख्यात महाराज पृथ्वीराज की बहिन पृथाबाई का विवाह मेवाड़ के रावल समरसिंह से हुआ था तथा वह पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गोरी के युद्ध में पृथ्वीराज की सहायतार्थ लड़ता हुआ मारा गया, किन्तु रावल समरसिंह के समय के आठ लेख मिले हैं, जिनमें सबसे पहला वि० सं० १३३० (ई० स० १२७३) और अन्तिम वि० सं० १३५८ (ई० स० १३०१) का है। उनसे निश्चित है कि वि० सं० १३५८ (ई० स० १३०१) अर्थात् पृथ्वीराज के मारे जाने से १०९ वर्ष पीछे तक वह (रावल समरसिंह) जीवित था। ऐसी दशा में पृथ्वीराज की बहिन

(१) सं० १२५३ वर्षे ज्येष्ठ महाराजश्रीभीमदेवविजयराज्ये······ ·········डव्वणके श्रीनित्यप्रमोदित(तं) ···महं[०]पल्हासुतवइजाक[:] प्रणमति नित्यं। प्रतिमा कारापिता।

मूल लेख की छाप से।

पृथाबाई का विवाह उसके साथ होना सर्वथा असंभव है। अलबत्ता मेवाड़ और पीछे से बागड़ के राजा सामंतसिंह का, जिसे ख्यातों में समतसी लिखा है, चौहानवंशी राजा पृथ्वीभट (पृथ्वीराज दूसरा वि० सं० १२२४–२६=ई० स० ११६७-६९), सोमेश्वर (वि० सं० १२२६–३४=ई० स० ११६९–७७) और पृथ्वीराज (तीसरा) वि० सं० १२३६–४९ (ई० स० ११७९–९२) का समकालीन होना शिलालेखों से सिद्ध है। डूंगरपुर राज्य के बड़वे की ख्यात में भी सांभर और अजमेर के चौहानों के यहां सामंतसिंह का विवाह होने का उल्लेख है। तदनुसार यदि पृथ्वीराजरासो में वर्णित पृथाबाई के विवाह की घटना में कुछ सत्य हो तो यही मानना पड़ेगा कि संभवत. पृथाबाई का विवाह मेवाड़ के रावल सामंतसिंह (समतसी) से हुआ हो। पृथाबाई पृथ्वीभट (पृथ्वीराज दूसरे) की बहिन या बीसलदेव (विग्रहराज चौथे, वि० सं० १२१०–२०=ई० स० ११५३-६३) की पुत्री हो, तो भी वह प्रसिद्ध राजा पृथ्वीराज (तीसरे) की बहिन ही कही जा सकती है[1]। भाटों की पुस्तकों में सामंतसिंह के स्थान पर समतसी और समरसिंह के स्थान पर समरसी लिखा मिलता है। समतसी तथा समरसी के नामों में थोड़ासा ही अन्तर है, इसलिए संभव है कि इतिहास के अंधकार की दशा में पृथ्वीराजरासो के

(१) प्रसिद्ध राजा पृथ्वीराज (तीसरे) से पृथाबाई का सम्बन्ध नीचे दिये हुए चौहानों के वंश-वृक्ष से स्पष्ट हो जायगा—
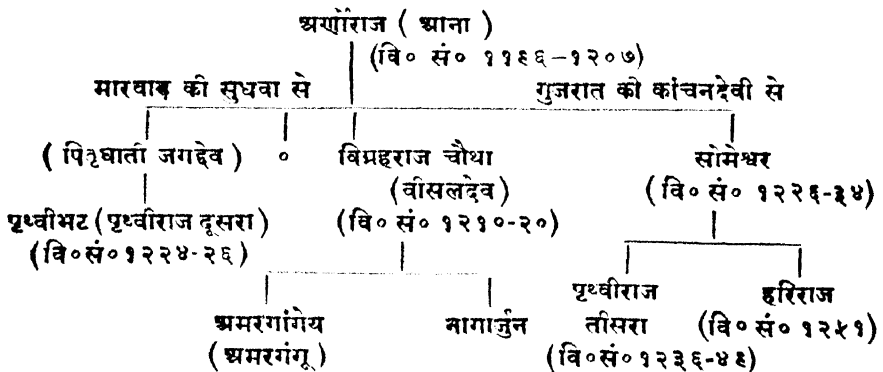
इस वंश-वृक्ष में दिये हुए संवत् शिलालेखादि से उद्धृत किये गये हैं।

कर्त्ता ने समतसी को समरसी मान लिया हो । वागड़ का राज्य छूट जाने के पश्चात् सामंतसिंह कहां गया, इसका पता नहीं चलता। यदि वह पृथ्वी-राज का बहनोई माना जाय, तो वागड़ का राज्य छूट जाने पर संभव है कि वह अपने साले पृथ्वीराज के पास चला गया हो और शहाबुद्दीन गोरी के साथ की पृथ्वीराज की लड़ाई में लड़ता हुआ मारा गया हो।

पांचवां अध्याय

महारावल जयतसिंह से महारावल प्रतापसिंह तक

जयतसिंह

डूंगरपुर के बड़वे की ख्यात में तथा उसके अनुसार आर्स्किन के गैज़ेटियर आदि पुस्तकों में सामन्तसिंह के पीछे सीहड़देव का नाम मिलता है। सामन्तसिंह का अन्तिम लेख वि० सं० १२३६ (ई० स० ११७९) का और सीहड़देव का सब से पहला लेख वि० सं० १२७७ (ई० स० १२२०) का है। इन दोनों के बीच ४१ वर्ष का अन्तर है, जो अधिक है। ख्यात में पुराने राजाओं के कुछ नाम छूट भी गये हैं। सीहड़देव के लेख में उसके पिता का नाम नहीं है, परन्तु जगत् गांव के माता के मन्दिर के एक स्तंभ पर के वि० सं० १३०६ फाल्गुन सुदि ३ (ई० स० १२५० ता० ६ फरवरी) रविवार रेवती नक्षत्र के लेख में सीहड़देव के पिता का नाम जयतसिंह लिखा है, जो ख्यात आदि की अपेक्षा अधिक विश्वास के योग्य है। अतएव जयतसिंह सामन्तसिंह का पुत्र या उत्तराधिकारी होना चाहिये[1]।

जयतसिंह कब तक जीवित रहा और उसने वागड़ का राज्य वापस लिया या नहीं, इस विषय में निश्चय-पूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता, किन्तु बड़ा दीवड़ा गांव (डूंगरपुर राज्य) के वि० सं० १२५३ (ई० स० ११९६) के शिलालेख[2] से निश्चित है कि उस समय तक तो वागड़ पर भीमदेव का राज्य था। सम्भवतः उसके पीछे और वि० सं० १२७७ (ई० स० १२२०) के पूर्व किसी समय वागड़ के राज्य पर सामन्तसिंह के उत्तराधिकारी जयतसिंह या उसके पुत्र सीहड़देव ने अधिकार कर लिया हो।

---

(१) ख्यात आदि में विजयपाल और अमृतपाल के नाम नहीं हैं, जिसका कारण यही हो कि वे सामन्तसिंह के वंशज नहीं, किन्तु कुटुम्बी थे और उनको सामन्तसिंह के शत्रु भीमदेव ने नियत किया था।

(२) उक्त लेख के लिए देखो ऊपर पृ० ८१, टिप्पण १।

सीहड़देव

गुजरातवालों ने सामन्तसिंह-द्वारा अजयपाल के सख्त घायल होने का बदला लेने के लिए उस (सामन्तसिंह) को मेवाड़ से निकाला और भीमदेव (दूसरे) के समय उससे वागड़ भी छीन लिया, परन्तु उस (भीमदेव) के बालक होने के कारण उसके मन्त्री और सामन्त शनैः शनैः उसका राज्य दबाने लगे[1], जिससे गुजरात का राज्य निर्बल होकर उसकी बड़ी दुर्दशा हुई[2], जिसका विस्तृत वर्णन गुर्जरेश्वर-पुरोहित सोमेश्वर ने 'कीर्तिकौमुदी' के दूसरे सर्ग में किया है। इस अंधाधुंधी के समय वागड़ के राजा सामन्तसिंह के क्रमानुयायी जयतसिंह या उसके पुत्र सीहड़देव ने वागड़ का राज्य पीछा अपने अधीन कर लिया।

सीहड़देव के दो शिलालेख मिले हैं, जिनमें से पहला वि० सं० १२७७ (ई० स० १२२१) का जगत् गांव के देवी के मन्दिर में लगा हुआ है। उसका आशय यह है कि महारावल सीहड़देव के राज्य-समय उसके महासांधिविग्रहिक राणा विल्हण ने रुणीजा गांव देवी के मन्दिर को अर्पण किया[3]। वि० सं० १२९१ (ई० स० १२३४) का उसका दूसरा शिलालेख भेकरोड़ गांव के पास के वैजवा (विंध्यवासिनी) माता के मन्दिर में लगा हुआ है, जिसका आशय यह है कि वागड़ के वटपद्रक (बड़ौदे) के महाराजाधिराज श्रीसीहड़देव के राज्य-समय उसका महा-प्रधान वीहड़ था। उस

---

(१) मंत्रिभिर्माण्डलीकैश्च बलवद्भिः शनैः शनैः।
बालस्य भूमिपालस्य तस्य राज्यं व्यभज्यत ॥ ६१ ॥

सोमेश्वर; कीर्तिकौमुदी, सर्ग २।

(२) वही; सर्ग २, श्लोक ८९-१०४।

(३) संवत् १२७७ वरिषे (वर्षे) चैत्रसुदि १४ सोमदिने विशाप- (खा) नक्षत्रे ······ श्रीअंबिकादेवी (व्यै) महाराऊ (रावल) श्रीसीहडदेवराज्ये महासां० (=सांधिविग्रहिक) वेल्हणाकराणा (राणकेन) रउणीजाग्रामं ········।

समय उक्त देवी के भोपा (पुजारी) मेल्हण के पुत्र वैजाक ने उस मन्दिर का पुनरुद्धार कराया[1]।

इन दोनों शिलालेखों से निश्चित है कि उस समय सीहड़देव की राजधानी बड़ौदा ही थी। उसके महाप्रधान और महासांधिविग्रहिक भी थे, जिससे उसका स्वतन्त्र राजा होना सिद्ध है[2]। सीहड़देव की मृत्यु कब हुई यह अब तक अज्ञात है, परन्तु उसके पुत्र विजयसिंह (जयसिंहदेव) का पहला लेख वि० सं० १३०६ (ई० स० १२५०) का जगत् गांव के माता के मन्दिर से मिला है, इससे पाया जाता है कि वि० सं० १२९१-१३०६ (ई० स० १२३४–१२५०) के बीच किसी समय सीहड़देव का देहान्त हुआ।

विजयसिंहदेव (जयसिंहदेव)

अपने पिता सीहड़देव के पीछे महारावल विजयसिंहदेव, जिसको जयसिंहदेव[3] भी लिखा मिलता है, वागड़ का स्वामी हुआ। उसका नाम भी

(१) संवत् १२९१ वर्षे पौषशुदि ३ रवौ ॥ वागडवटपद्रके महाराजाधिराजश्रीसीहडदेव(वो) विजयोदयी। सर्व्वमुद्रा······महाप्रधान··· वीहड॥ विंझलपुरे निवसितादेव्या[:] भोपामहिलणसुत·········वयजाकेन देव्या[:] प्रासादो············नवकारापित[:]

(२) बड़वे की ख्यात में लिखा है कि महारावल सीहड़देव दिल्ली जाकर बादशाह औरंगज़ेब से मिला, जिसपर उसने उसको वि० सं० १२८४ में बाईस लाख की रेख का झज्झर का पट्टा प्रदान किया। फिर उसने अन्तरवेद में नौ लाख की आय का बांदे का ज़िला फतह किया। बादशाह ने वह भी उसे दे दिया, परन्तु उसने ये दोनों ज़िले वापस बादशाह को सौंपकर बड़ौदे का पट्टा चाहा, जिसके मिलने पर वह वागड़ में आया और चौरसीमल को मारकर वि० सं० १३०५ चैत्र सुदि ५ को उसने बड़ौदे पर अधिकार कर लिया। भाटों की यह कथा सर्वथा कपोलकल्पित है और इतिहास के अन्धकार की दशा में खड़ी की गई है। वि० सं० १२८४ में बादशाह औरंगज़ेब के विद्यमान होने और सीहड़देव के उससे मिलने की कथा ही इन ख्यातों के लिखे जाने के समय का अनुमान करा देती है।

(३) झाड़ोल गांव के उपर्युक्त विजयनाथ के मन्दिर के लेख में वागड़ के राजा का नाम जयसिंहदेव पढ़ा जाता है और मन्दिर का नाम विजयनाथ लिखा है। संभव

ख्यात में छूट गया है, परन्तु उसके समय के दो शिलालेख विद्यमान हैं, जिनमें से पहला छप्पन प्रदेश के जगत् गांव के देवी के मन्दिर से मिला है। उसमें लिखा है कि उस(विजयसिंहदेव)ने वि० सं० १३०६ फाल्गुन सुदि ३ (ई० स० १२५० ता० ६ फरवरी) रविवार को अंबिकादेवी के मन्दिर पर सुवर्ण-दंड चढ़ाया[1]।

उसका दूसरा लेख मेवाड़ के छप्पन प्रदेश के झाड़ोल गांव के विजयनाथ के मन्दिर में लगा हुआ है, जिसका आशय यह है कि वि० सं० १३०८ कार्तिक सुदि १५ (ई० स० १२५१ ता० ३० अक्टूबर) सोमवार के दिन वागड़ मंडल के महारावल श्रीजयसिंहदेव(विजयसिंहदेव) के राज्य-समय झाड़ोल गांव में विजयनाथ नामक शिवालय बना[2]।

इन दोनों शिलालेखों से पाया जाता है कि मेवाड़ का छप्पन प्रदेश उस समय वागड़ के अन्तर्गत था और वहां महारावल विजयसिंहदेव (जयसिंहदेव) शासन करता था। इसके अतिरिक्त उसका कुछ भी वृत्तान्त नहीं मिलता।

देवपालदेव (देदू)

विजयसिंहदेव के पश्चात् महारावल देवपालदेव, जिसको ख्यातों आदि में देदू या देदा भी लिखा है, वागड़ का राजा हुआ। उसके विषय में ख्यातों में लिखा मिलता है कि उसने परमारों से गलियाकोट का इलाक़ा लिया। इसका आशय यही हो सकता है कि उसने अर्थूणा के परमार-राज्य को अपने राज्य में मिला लिया। परमारों की राजधानी गलियाकोट नहीं, किन्तु उससे कुछ ही मील दूर अर्थूणा नामक विशाल एवं प्राचीन नगर था। इसके अतिरिक्त उसका कोई वृत्तान्त नहीं मिलता। उसका पुत्र महारावल वीरसिंहदेव था। उसके समय का (आषाढ़ादि) वि० सं० १३४३ (चैत्रादि

है, राजा के नाम में 'वि' अक्षर छूट गया हो। जयसिंह और विजयसिंह दोनों पर्यायवाची शब्द हैं।

(१) मूल अवतरण के लिए देखो ऊपर पृ० ३६, टिप्पण ३।

(२) मूल अवतरण के लिए देखो ऊपर पृ० ३६, टिप्पण ४।

१३४४) वैशाख वदि अमावास्या रविवार (ई० स० १२८७ ता० १३ अप्रेल) का एक दान-पत्र मिला है, जिसमें महाराजकुल (महारावल) श्रीदेवपालदेव के श्रेय के निमित्त भूमि-दान करने का उल्लेख है। इससे अनुमान होता है कि देवपालदेव का देहान्त वि० सं० १३४३ या १३४४ में हुआ हो[1]।

वीरसिंहदेव

महारावल वीरसिंहदेव को ख्यातों में वरसिंघ या वरसी लिखा है, परन्तु शिलालेखों में उसका नाम वीरसिंहदेव मिलता है। वि० सं० १३४३ या १३४४ (ई० स० १२८६ या ८७) में उसकी गद्दीनशीनी होनी चाहिये[2]। उसके विषय में ख्यातों में लिखा है कि जहां इस समय डूंगरपुर का क़स्बा है उसके आसपास के प्रदेश पर डूंगरिया नामक बड़े उद्दंड भील का अधिकार था। वहां से क़रीब पांच मील पर थाणा नामक ग्राम में शालाशाह[3] नाम का एक

(१) मृत राजाओं के निमित्त भूमिदान प्रायः मृत्यु के बारहवें दिन (सपिंडी श्राद्ध में) अथवा वार्षिक श्राद्ध पर होता है। वार्षिक श्राद्ध पर भूमिदान के लिए देखो मालवे के परमार राजा यशोवर्मा का वि० सं० ११९२ का दानपत्र (इं० ऐ०; जि० १९; पृ० ३४६-४८)।

(२) ख्यात में उसकी गद्दीनशीनी का संवत् १३३५ दिया है, जो विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि माल गांव से मिले हुए उपर्युक्त ताम्रपत्र के अनुसार देवपालदेव का देहान्त और वीरसिंहदेव की गद्दीनशीनी वि० सं० १३४३ या १३४४ में होना पाया जाता है।

(३) शालाशाह या साल्हराज ओसवाल जाति का महाजन था। वह महारावल गोपीनाथ (गोपाल) और सोमदास का मंत्री रहा। उसके पिता का नाम सांभा और दादा का नाम भभव था। साल्हराज ने आंतरी गांव (डूंगरपुर राज्य) में जैन-मंदिर बनवाया। वहां वि० सं० १५२५ (ई० स० १४६८) का शिलालेख लगा है, जिसमें चूंडावाड़ा के भीलों पर उसके द्वारा विजय होने का उल्लेख है। इससे पाया जाता है कि जिस शालाशाह का वर्णन ख्यातों में वीरसिंहदेव के संबंध में किया गया है, वह वीरसिंहदेव के समय नहीं, किन्तु उसके डेढ़ सौ वर्ष पीछे हुआ था। भाटों ने वीरसिंहदेव के साथ जिस शालाशाह की कथा जोड़ दी है, उसका सम्बन्ध महारावल गोपीनाथ और सोमराज के मंत्री साल्हराज से होना सम्भव है, क्योंकि ख्यात में शालाशाह तथा भीलों के बीच लड़की के विवाह के सम्बन्ध में अनबन होने का उल्लेख है

धनाढ्य महाजन रहता था। उसकी रूपवती कन्या को देखकर उस(भील)ने उसके साथ विवाह करना चाहा और उसके पिता को अपने पास बुलाकर उससे अपनी इच्छा प्रकट की। जब सेठ ने स्वीकृति नहीं दी तब उसको धमकाकर कहा कि यदि तू मेरा कहना न मानेगा, तो मैं बलात् उसके साथ विवाह कर लूंगा। सेठ ने भी उस समय 'शठं प्रति शाठ्यं' की नीति के अनुसार उसका कथन स्वीकारकर उसके लिए दो माह की अवधि मांगकर कार्तिक शुक्ला १० को विवाह का दिन स्थिर किया, जिससे डूंगरिया प्रसन्न हो गया। शालाशाह ने बड़ौदे जाकर अपने दुःख का सारा वृत्तान्त वीरसिंह-देव को कह सुनाया तो उसने सलाह दी कि भील लोगों को मद्यपान बहुत प्रिय होता है, इसलिए बरात के आने पर उन्हें इतना अधिक मद्य पिलाना कि वे सब ग़ाफ़िल हो जावें। इतने में हम ससैन्य वहां पहुंचकर उन सबका काम तमाम कर देंगे। इस सलाह के अनुसार भीलों की बरात आते ही सेठ ने धूमधाम से उसका स्वागत कर बरातियों को खूब मद्य पिलाया। उनके ग़ाफ़िल हो जाने पर संकेत के अनुसार राजा ने सेना सहित आकर उनमें से अधिकांश को मार डाला और बचे हुओं को क़ैद कर उस प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया। डूंगरिया की दो स्त्रियां धनी और काली उसके साथ सती हुईं। उनके स्मारक एक पहाड़ी पर बने हैं, जिसे धनमाता की पहाड़ी कहते हैं।

ख्यातों में वीरसिंहदेव का कहीं वि० सं० १३१५, कहीं १३३५, कहीं

और आंतरी के शिलालेख में सालहराज का चूंडावाड़ा के भीलों पर विजय पाना लिखा है। चूंडावाड़ा की पाल व डूंगरपुर के बीच थाणा गांव है, जिसको ख्यात में शालाशाह का निवास-स्थान बतलाया है। वह डूंगरपुर से पांच मील दूर है। वहां शालाशाह ने एक विशाल मन्दिर बनवाना आरम्भ किया था, जो अधूरा ही पड़ा हुआ है। ज्ञात होता है कि मन्दिर का कार्य आरम्भ होने के कुछ दिनों बाद शालाशाह की मृत्यु हो गई, जिससे उसका आरम्भ किया हुआ कार्य पूरा न हो सका। इतिहास के अन्धकार की दशा में भाटों ने जिस प्रकार अन्य घटनाओं को इधर उधर जोड़कर ख्यातें बना ली हैं, उसी प्रकार संभव है शालाशाह की कथा को उन्होंने वीरसिंहदेव के साथ जोड़कर प्रसङ्ग को रोचक बना दिया हो।

१३६१ और कहीं १४१५ में डूंगरिया भील को मारकर डूंगरपुर बसाना और वहां अपनी राजधानी स्थिर करना लिखा है, परन्तु पहले के तीन संवतों में से एक भी विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि ताम्रपत्र और शिलालेखों से वि० सं० १३५६ तक बड़ौदे में राजधानी होना सिद्ध है। संवत् १४१५ में डूंगरपुर का बसना संभव हो सकता है, परन्तु वीरसिंहदेव के समय डूंगरपुर का बसाया जाना और वहां उसका अपनी राजधानी स्थिर करना कदापि संभव नहीं हो सकता, क्योंकि उक्त संवत् में वीरसिंहदेव विद्यमान नहीं था। ख्यातों के अनुसार वि० सं० १४१५ में डूंगरपुर का शासक रावल डूंगरसिंह हो सकता है, वीरसिंहदेव नहीं। डूंगरपुर राज्य के बड़वे की ख्यात में रावल डूंगरसिंह का वि० सं० १३८८ में गद्दी बैठना और वि० सं० १४१६ में उसकी मृत्यु होना लिखा है, जो अधिकतर संभव है। इसके अनुसार यदि वि० सं० १४१५ में डूंगरपुर बसाना ठीक हो, तो रावल डूंगरसिंह के द्वारा ही डूंगरपुर का बसाया जाना युक्तियुक्त हो सकता है। नगर और गांवों आदि के नाम प्रायः उनके बसानेवालों के नाम पर ही रक्खे जाते हैं, जैसे उदय-पुर, जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, किशनगढ़ आदि। इसी प्रकार डूंगरपुर का रावल डूंगरसिंह के समय में ही बसाया जाना ठीक जान पड़ता है। संवतों के परस्पर मिलाने से भी वि० सं० १४१५ (ई० स० १३५८) में रावल डूंगरसिंह का जीवित होना और डूंगरपुर का बसाया जाना ठीक जंचता है।

यह भी प्रसिद्ध है कि उक्त महारावल (वीरसिंहदेव) ने शालाशाह की योग्यता से प्रसन्न होकर उसे अपना सेनापति बनाया और उसको गुजरात पर ससैन्य भेजा। वहां उसने विजय प्राप्त की, परन्तु उसके शत्रुओं को उसका उत्कर्ष सहन न होने के कारण उन्होंने राजा को यह सुझाया कि वह तो आपको पदच्युत करना चाहता है। इसपर राजा ने उसको गुजरात से बुलवाकर मरवा डाला। कह नहीं सकते कि इस कथन में कहां तक सत्य है, परन्तु संभव है कि वागड़ से मिला हुआ गुजरात का कुछ प्रदेश उस समय वीरसिंहदेव के राज्य में मिल गया हो।

उक्त महारावल के समय का एक दान-पत्र और तीन शिलालेख मिले हैं।

१—डूंगरपुर राज्य के माल गांव से दो बड़े पत्रों पर खुदा हुआ (आषाढ़ादि) वि० सं० १३४३ (चैत्रादि १३४४) वैशाख वदि १५ (अमावास्या) रविवार (ई० स० १२८७ ता० १३ अप्रेल) का दान-पत्र मिला है। उसमें लिखा है कि 'वागड़ के वटपद्रक' (बड़ौदे) में राज्य करनेवाले महाराजकुल (महारावल) श्रीवीरसिंहदेव ने महाराजकुल श्रीदेवपालदेव के कल्याण के निमित्त भारद्वाज गोत्र के ब्राह्मण वैजा के पुत्र ताल्हा को कतिज (कतियोर) पथक (परगने) के माल गांव में डेढ़ हल भूमि और आगे पीछे की भूमि सहित एक घर दान किया। इस दान-पत्र के साक्षी रूप में कई प्रसिद्ध पुरुषों के नाम दिये हैं, जिनमें श्रीसूनलदेवी (राजमाता), मंत्री वावण, खेतल, पुरोहित मोकल, व्यास सोमादित्य, राजगुरु सूदा, सेठ पारस, भीमा, श्रोत्रिय वावण और पंडित ताल्हा आदि मुख्य हैं[1]।

वीरसिंहदेव के समय के शिलालेखादि

२—बड़ौदे के तालाब के पास के विशाल शिवालय में पत्थर की कुंडी पर खुदा हुआ लेख। उसमें (आषाढ़ादि) वि० सं० १३४९ (चैत्रादि १३५०) वैशाख सुदि ३ शनिवार (ई० स० १२९३ ता० ११ अप्रेल) के दिन महाराजकुल (महारावल) श्रीवीरसिंहदेव के विजय-राज्य समय, जब उसका महाप्रधान (मुख्य मंत्री) वामण (वावण) था, उक्त कुंडी के बनने का उल्लेख है[2]।

---

(१) ॐ ॥ संवत् १३४३ वर्षे वैशाखब(=असित, वदि) १५ रवावद्येहवागडवटपद्रके महाराजकुलश्रीवीरसिंहदेवकल्याणविजयराज्ये······ शासनपत्रमभिलिख्यते यथा। इहैव··········महाराजकुलश्रीदेवपालदेवश्रेयसे भारद्वाजगोत्राय दोर्डी० ब्राह्म० वयजापुत्राय ब्रा० ताल्हाशर्मणे कतीजपथके मालग्रामे भूमिहल १½ सार्द्धहलैकस्य भूमि गृहं १········ एतत् शासनोदकपूर्वं धर्मेण संप्रदत्तं········ मूल ताम्रपत्र की छाप से।

ऊपर केवल आवश्यक अंश ही उद्धृत किया गया है।

(२) सं० १३४९ वर्षे वैशाखशुदि ३ शनौ महाराजकुलश्रीवीरसिंहदेवकल्याणविजयराज्ये महाप्रधानपंच० श्रीवामणप्रतिपत्तौ······ मूल लेख की छाप से।

३—बमासा गांव का वि० सं० १३५६ आषाढ़ सुदि १५ (ई० स० १३०२ ता० ११ जून) का शिलालेख। उसमें वागड़वटपद्रक के महाराजकुल (महारावल) श्रीवीरसिंहदेव का ज्यो० (ज्योतिषी) माहव के पुत्र ज्यो० वाघादित्य को मंगहडक (मूंगेड़) गांव देने का उल्लेख है[1]।

४—वरवासा गांव का वि० सं० १३५६ (ई० स० १३०२) का लेख। उसमें महाराजकुल श्रीवीरसिंहदेव का पुरोहित श्रीशंकर को वसवासा (वरवासा) गांव देने का निर्देश है[2]।

इन लेखों और उस समय के बने हुए मंदिर आदि को देखने से विदित होता है कि उस समय राजधानी वड़ौदा एक संपन्न नगर था और गांव आदि के दान करने से महारावल वीरसिंहदेव का उदार और वैभव-शाली होना प्रतीत होता है।

भचुंड, डूंगरसिंह और कर्मसिंह (पहला)

बड़वे की ख्यात में लिखा है कि महारावल वीरसिंहदेव के पश्चात् वि० सं० १३६० से १३८८ (ई० स० १३०३ से १३३१) तक रावल भचुंड (भूचंड) ने राज्य किया, परन्तु उसके समय का कोई शिलालेख नहीं मिला, जिससे यह नहीं कहा जा सकता कि यह राज्य-समय कहां तक ठीक है। भचुंड का उत्तराधिकारी उसका पुत्र डूंगरसिंह हुआ, जिसका राजत्वकाल ख्यात में वि० सं० १३८८-१४१६ (ई० स० १३३१-१३६२) दिया है। ऊपर महा-रावल वीरसिंहदेव के वर्णन में बतलाया जा चुका है कि एक ख्यात में वीर-सिंह के द्वारा वि० सं० १४१५ (ई० स० १३५८) में डूंगरपुर बसाया जाना

(१) संवत् १३५६ वर्षे आषाढशुदि १५ वागडवटपद्रके महाराज-कुलश्रीवीरसिंहदेवकल्याणविजयराज्ये ······ महामो[ढ]ज्योतिषीमाहवसुत-ज्योतिवाघादित्यस्य(त्याय) मंगहडग्रामं उदकेन प्रदत्तं ॥

मूल लेख की छाप से।

(२) संवत् १३५६ वर्षे महाराजकुलश्रीवीरसिंहदेव(वेन) पुरो०श्री-सं(शं)कर(राय) वसवासाग्रामं प्रदत्तं ॥

मूल लेख की छाप से।

माना है, परन्तु उस समय वीरसिंहदेव का अस्तित्व नहीं हो सकता, किन्तु डूंगरपुर बसने का यह संवत् ठीक हो, तो यही मानना होगा कि डूंगरसिंह ने उक्त संवत् में डूंगरपुर की नींव डाली। बड़वे की ख्यात में उसके उत्तराधिकारी रावल कर्मसिंह का वि० सं० १४१६ से १४४१ (ई० स० १३६२ से १३८४) तक वागड़ प्रदेश का राज्य करना और उक्त रावल का शहर व क़िला (गढ़) पूरा करवाना भी लिखा है, जिसका यही तात्पर्य हो सकता है कि डूंगरसिंह के प्रारंभ किये हुए नगर और क़िले के अपूर्ण कार्य को कर्मसिंह ने आगे बढ़ाया।

डूंगरपुर राज्य के डेसां गांव की बावड़ी का एक शिलालेख राजपूताना म्यूज़ियम् (अजमेर) में सुरक्षित है। उसमें लिखा है कि गुहिलोतवंशी राजा भचुंड के पौत्र और डूंगरसिंह के पुत्र रावल कर्मसिंह की भार्या माणकदे [वी] ने वि० सं० १४५३ शाके १३१८ कार्तिक (चै० मार्गशीर्ष) वदि ७ सोमवार (ई० स० १३९६ ता० २३ अक्टूबर) को यह वापी बनवाई[1], परन्तु उससे यह नहीं पाया जाता कि उक्त संवत् में कर्मसिंह जीवित था या नहीं? तथापि यह निश्चित है कि कर्मसिंह की किसी राणी का नाम माणकदेवी था। बड़वे और राणीमंगे की ख्यातों में उसकी राणियों के जो नाम दिये हैं उनमें माणकदेवी का उल्लेख नहीं है, जिससे कह सकते हैं कि उनकी ख्यातों में राणियों के पुराने नाम बहुधा कल्पित हैं।

---

(१) स्वस्ति श्रीनृपविक्रमसमयातीत संवत् १४५३ वर्षे शाके १३१८ प्रवर्त्तमाने कार्तिकमासे कृष्णपक्षे सप्तम्यां तिथौ सोमवासरे रोहिणी-(? पुष्य)नक्षत्रे ग(गु)हिल(लो)तवंशोद्भवभूपभचुंडसुतडूंगरसिंहत(स्त)त्सुत-राउलकर्मसिंहभार्याबाईश्रीमाणिकदे तया इयं वापी कारापिता।

मूल लेख से।

उपर्युक्त अवतरण उक्त बावड़ी के जीर्णोद्धार के (आषाढ़ादि) वि० सं० १५२० (चैत्रादि १५२१) शाके १३८६ वैशाख सुदि ३ सोमवार रोहिणी नक्षत्र (ई० स० १४६४ ता० ९ अप्रेल) के लेख के आरम्भ का अंश है।

कान्हड़देव और प्रतापसिंह (पाता रावल)

महारावल कान्हड़देव का राज्य-समय ख्यात में वि० सं० १४४५-१४६३ (ई० स० १३८८-१४०६) दिया है। इनमें से पिछला (मृत्यु) संवत् तो सर्वथा अशुद्ध है, क्योंकि उसके पुत्र प्रतापसिंह के वि० सं० १४५६ (ई० स० १३६६), वि० सं १४६१ (ई० स० १४०४) और वि० सं० १४६८ (ई० स० १४११) के शिलालेख मिल गये हैं। रावल कान्हड़देव का और कुछ वृत्तान्त नहीं मिलता। ख्यात में इतना ही लिखा है कि उसने राजधानी डूंगरपुर को बढ़ाया और वहां एक दरवाज़ा बनाया जो उसके नामानुसार कान्हड़पोल कहलाता है।

कान्हड़देव के पश्चात् उसका पुत्र प्रतापसिंह, जो पाता रावल के नाम से प्रसिद्ध है, राज्य का स्वामी हुआ। उसने पातेला तालाब और पातेला दरवाज़ा बनवाया तथा अपने नाम से प्रतापपुर (पातलपुर) गांव बसाया। ख्यात में महारावल प्रतापसिंह की गद्दीनशीनी वि० सं० १४६३ (ई० स० १४०६) में होना लिखा है, किंतु उसके समय का सबसे पहला शिलालेख वि० सं० १४५६ (ई० स० १३६६) का है। अतएव कान्हड़देव की मृत्यु और प्रतापसिंह के राज्य का प्रारंभ वि० सं० १४५६ (ई० स० १३६६) से पूर्व हो सकता है। इसी प्रकार ख्यात में वि० सं० १४६८ में रावल प्रतापसिंह की मृत्यु और उसी वर्ष रावल गोपीनाथ का गद्दी बैठना लिखा है, परन्तु रावल गोपीनाथ का सबसे पहला लेख वि० सं० १४८३ (ई० स० १४२६) का मिला है, जिससे निश्चित है कि रावल प्रतापसिंह की मृत्यु वि० सं० १४८३ (ई० स० १४२६) से पूर्व किसी वर्ष हुई होगी। डूंगरपुर राज्य के बड़वों आदि की ख्यातों में वहां के पुराने राजाओं की गद्दीनशीनी के जो संवत् दिये हैं, उनमें से अधिकांश शिलालेखादि से जांचने पर कल्पित ठहरते हैं।

छठा अध्याय

महारावल गोपीनाथ से उदयसिंह (प्रथम) तक

गोपीनाथ (गजपाल)

महारावल प्रतापसिंह के अनंतर उसके पुत्र गोपीनाथ का, जिसको शिलालेखों में गईप, गजपाल, गोप, गोपाल एवं गोपीनाथ तथा ख्यात में गेबा लिखा है, राज्यारोहण हुआ। उसकी गद्दीनशीनी वि० सं० १४८३ (ई० स० १४२६) से पूर्व होना पहले बतलाया जा चुका है।

गुजरात के सुलतान अहमदशाह की डूंगरपुर पर चढ़ाई

तबक़ाते अकबरी में लिखा है—"हि० स० ८३६ के रजब महीने (वि० सं० १४८६ फाल्गुन=ई० स० १४३३ मार्च) में सुलतान अहमदशाह (गुजरात का) मेवाड़, नागौर और कोलीवाड़े को विजय करने चला। सिद्धपुर में पहुंचकर उसने सेना की टुकड़ियों को मंदिर गिराने के लिए इधर उधर भेजा। कुछ दिनों में वह डूंगरपुर पहुंचा तो वहां का राजा गनेश (गजपाल) भाग गया, परन्तु पछताकर सुलतान के पास आ गया। सुलतान ने उसको अपना सामंत बनाया[1]"। इस कथन के विरुद्ध आंतरी के शांतिनाथ के मंदिर की वि० सं० १५२५ (ई० स० १४६८) की प्रशस्ति में लिखा है—'वागड़ प्रदेश के स्वामी वीराधिवीर गोपीनाथ ने गुजरात के मदमत्त स्वामी की अपार सेना को नष्ट कर उसकी संपत्ति छीन ली,[2]' जो अधिक विश्वसनीय है।

---

(१) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० १२०।

(२) गर्जद्गर्जपटोत्कटोर्मिविकटं श्रीगूर्जराधीश्वरा-
त्सर्पत्सैन्यमपारमर्णवमिव व्यालो[ड्य य]ः सर्वतः ॥
संजग्राह समग्रसारकमलां वीराधिवीरः सत-
द्गोपीनाथतया प्रसिद्धिमभजच्छ्रीवागडाखंडलः ॥ ६ ॥

आंतरी के शिलालेख की छाप से।

वागड़ में भीलों की संख्या अधिक है और वे बड़े उद्दंड होते हैं, इसलिए रावल गोपीनाथ ने अपने अमात्य साल्हराज को, जो ओसवाल जाति के भुंभक का पौत्र और साभा का पुत्र[1] था, उनकी पालों को विजय करने के लिए भेजा। साल्हराज के बनाये हुए आंतरी के शांतिनाथ के मंदिर के वि० सं० १५२५ (ई० स० १४६८) के लेख से प्रकट है कि उसने भीलों की पालों को विजय कर वागड़ से भीलों का उपद्रव मिटा दिया[2]।

महाराणा कुंभा की वागड़ पर चढ़ाई

मेवाड़ का महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) बड़ा वीर एवं प्रतापी नरेश था। उसने गुजरात और मालवे आदि का बहुतसा भाग जीतकर राजपूताने का अधिकांश भी अपने अधीन कर लिया। उक्त महाराणा के बनवाये हुए कुंभलगढ़ दुर्ग के वि० सं० १५१७ (ई० स० १४६०) के शिलालेख में लिखा है—'उसने अपने अश्वसैन्य से गिरिपुर (डूंगरपुर) पर आक्रमण किया, तो रणवाद्यों का घोष सुनते ही वहां का राजा गैपाल (गोपीनाथ) क़िला छोड़कर भाग गया[3]'। संभव है कि डूंगरपुर की तरफ़ गुजरात के सुलतान का प्रभाव बढ़ता हुआ देखकर महाराणा कुंभा ने वहां अपना अधिकार जमाने के लिए यह चढ़ाई की हो।

अब तक महारावल गोपीनाथ के राज्यसमय के चार शिलालेख प्राप्त हुए हैं, जिनका आशय नीचे लिखे अनुसार है—

---

(१) राजश्रीगजपालराज्यकमलाव[ल्ली]वसंतोत्सवः

प्रे··················मुख्यसुवचः··········॥

पातूकुक्षि ·········मभवच्छ्रीसाल्हराजः सभा-

शोभाकार्युपकेशवंशतिलकः संकल्पकल्पद्रुमः ॥ १० ॥

आंतरी गांव के शांतिनाथ के मन्दिर के लेख की छाप से।

(२) अन्यायपत्रवल्लीभिल्लीमुख्यास्त्रभिल्लभृतपल्लीः ॥ ············

जित्वा यो निःशल्यीचकार वागडं देशं ॥ ११ ॥

वही।

(३) मूल अवतरण के लिए देखो मेरा राजपूताने का इतिहास, जिल्द २, पृ० ६१६।

१—ठाकरड़ा गांव के शिव-मंदिर (सिद्धेश्वर महादेव) की वि० सं० १४८३ (चैत्रादि सं० १४८४) चैत्र सुदि ५ (ई० स० १४२७ ता० ३ मार्च) की प्रशस्ति। उसमें राजा गुहिल के वंशधर खुंमाणवंशी प्रतापसिंह के पुत्र गोपीनाथ के राज्य-समय मेघ नामक बड़नगरा जाति के नागर ब्राह्मण-द्वारा उक्त मंदिर के बनाये जाने का उल्लेख है।

गोपीनाथ के समय के शिलालेख

२—गोवाड़ी गांव का वि० सं० १४९८ आषाढ़(पूर्णिमांत श्रावण) वदि अमावास्या (ई० स० १४४१ ता० १८ जुलाई) का लेख।

३—देव सोमनाथ का लेख— यह लेख श्वेतशिला पर खुदा हुआ है, परन्तु कई स्थानों में अक्षर अस्पष्ट हैं। इसमें सोमनाथ की महिमा बतलाई गई है। इससे ज्ञात होता है कि महारावल गोपीनाथ सोमनाथ का बड़ा भक्त और दानी नरेश था। उसने गुजरात के सुलतान-द्वारा तोड़े हुए उक्त मंदिर का जीर्णोद्धार करवाया। संभव है गुजरात के सुल्तान अहमदशाह ने अपनी चढ़ाई में इस मंदिर को तोड़ा हो।

उदयविलास महल के अंग्रेज़ी दफ़्तर का गोल लेख—इसका अधिकतर भाग इसको गोल बनाने में नष्ट हो गया, जिससे इसकी उपयोगिता बहुत कुछ नष्ट हो गई है और संवत् आदि का महत्त्वपूर्ण अंश बिलकुल जाता रहा। इसके अक्षर भी घिस गये हैं, फिर भी इससे इतना आशय निकलता है कि महारावल गोपीनाथ के लीलावती नाम की राणी से सोमदास नामक पुत्र हुआ था। संभवतः किसी धर्मस्थान से इस प्रशस्ति का संबंध होना चाहिये।

गोपीनाथ के बनवाये हुए स्थान

राजधानी डूंगरपुर में गैवसागर तालाव और गेपपोल नामक दरवाज़ा महारावल गोपीनाथ का बनवाया हुआ माना जाता है।

गोपीनाथ की मृत्यु

ख्यात में वि० सं० १५१३ (ई० स० १४५६) में गोपीनाथ की मृत्यु होना बतलाया है, किंतु उसके उत्तराधिकारी सोमदास का वि० सं० १५०६ (ई० स० १४४९) का लेख मिल चुका है, जिससे कह सकते हैं कि वि० सं० १५०६ के पूर्व किसी वर्ष उक्त रावल का देहान्त होना चाहिये। सोमदास के उपर्युक्त लेख से यह भी ज्ञात होता

है कि गोपीनाथ की राणी लीलावती राज श्रीसामंतसिंह की पुत्री थी और उसने बीलिया गांव में बावड़ी बनवाई थी।

सोमदास

महारावल गोपीनाथ के पीछे सोमदास बागड़ का स्वामी हुआ। तारीख फिरिश्ता में लिखा है—"मांडू के सुलतान महमूद ने हि० स० ८६३ (वि० सं० १५१६=ई० स० १४५६) में धार आकर कोली और भीलों को सज़ा देने के लिए अपने शाहज़ादे गयासुद्दीन को भेजा। फिर उसने राजपूतों पर चढ़ाई की। कुंभलगढ़ पहुंचने पर उसे जान पड़ा कि उस क़िले को विजय करने में कई वर्ष लग जायंगे, इसलिए वह वहां से डूंगरपुर को रवाना हुआ। वहां पहुंचकर उसने तालाव के किनारे डेरा डाला। डूंगरपुर का राय (राजा) शामदास (सोमदास) कोहताना (पहाड़ों) में चला गया। वहां से उसने दो लाख टंके (रुपये) और २१ घोड़े भेजे, जिन्हें लेकर वह लौट गया"[1]। निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि यह कथन कहां तक विश्वसनीय है।

डूंगरपुर पर मांडू के सुलतान महमूदशाह की चढ़ाई

प्रतापी महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) को मारकर उसका ज्येष्ठ पुत्र ऊदा (पितृघाती) मेवाड़ का स्वामी हुआ, परन्तु पांच वर्ष पश्चात् सरदारों ने उस हत्यारे को निकालकर उसके छोटे भाई रायमल को मेवाड़ का स्वामी बनाया। फिर वह (ऊदा) मांडू के सुलतान गयासशाह (गयासुद्दीन) के पास चला गया, परन्तु वहां बिजली गिरने से मर गया। तब गयासुद्दीन ने उसके पुत्रों को चित्तोड़ का राज्य दिलाने के लिए मेवाड़ पर चढ़ाई की। चित्तोड़ के पास रायमल की सेना से युद्ध हुआ। इस चढ़ाई के समय सुलतान गयासुद्दीन ने मार्ग में डूंगरपुर को भी तोड़ा था, ऐसा डूंगरपुर के रामपोल दरवाज़े के पास के वि० सं० १५३० (चैत्रादि १५३१) शक १३९६ चैत्र (पूर्णिमांत वैशाख) वदि ६ (ई० स० १४७४ ता० ७ अप्रेल) गुरुवार के एक शिलालेख से जान

मांडू के सुलतान गयासुद्दीन की चढ़ाई

(१) ब्रिग्ज़; फिरिश्ता; जिल्द ४, पृ० २२५।

पड़ता है कि जब मंडपाचलपति (मांडूपति) सुलतान गयासुद्दीन ने आकर डूंगरपुर को तोड़ा, उस समय बीलिया के पुत्र रातकाला ने स्वामी के बिना बुलाये ही वहां आकर अपने कुल-धर्म का पालन करते हुए वीरव्रत में प्राण दिये[1]।

रावल सोमदास के समय के शिलालेख

महारावल सोमदास के समय के अब तक नीचे लिखे हुए शिलालेख मिले हैं—

१—बीलिया गांव की बावड़ी का वि० सं० १५०६ का शिलालेख। इसका आशय यह है कि संवत् १५०५ (चैत्रादि १५०६) शाके १३७१ चैत्र सुदि १३ (ई० स० १४४६ ता० ६ अप्रेल) को रावल सोमदास की राणी सुरत्राणदे ने रावल गजपाल की राणी लीलाई की बनवाई हुई बावड़ी का जीर्णोद्धार करवाकर यह प्रशस्ति लगवाई।

२—बांसवाड़ा राज्य के गढ़ी पट्टे के आसोड़ा गांव का वि० सं० १५१० माघ सुदि ११ (ई० स० १४५४ ता० १० जनवरी) का लेख, जिसमें महारावल गंगपालदेव की अस्थि प्रयाग में प्रवेश की गई उस अवसर पर ब्राह्मण शोभा को आसोड़ा गांव में १ हलवाह भूमि दान करने का उल्लेख है।

३—बांसवाड़ा राज्य के तलवाड़ा गांव से मिला हुआ वि० सं० १५१७ (ई० स० १४६०) का शिलालेख, जिसमें भूमिदान करने का उल्लेख है।

४—आबू पहाड़ पर अचलगढ़ के जैन-मंदिर में आदिनाथ के पीतल के विशाल बिंब पर खुदा हुआ (आषाढ़ादि) वि० सं० १५१८ (चैत्रादि १५१६, अमांत) वैशाख (पूर्णिमांत ज्येष्ठ) वदि ४ (ई० स० १४६२ ता० १७

---

(१) संवत् १५३० वर्षे शाके १३६६ प्रवर्तमाने चैत्रमासे कृष्णपक्षे षष्ठयां तिथौ गुरुदिने वीलीआ मालासुत रातकालइ मंडपाचलपति सुरत्राण ग्यासदीन आवि······डूंगरपुर भाज तइ स्वामि न इछति आपणउं कुलमार्ग्ग अनुपालतां वीरव्रतेन प्राण छांडी सूर्यमंडल भेदी सायोज्य मुक्ति पामि।

लेख की छाप से।

बीलीया माला का पुत्र रातकाला संभवतः भील होगा।

अप्रेल) का लेख, जिसका आशय यह है कि कुंभलमेर महादुर्ग के स्वामी महाराणा कुंभकर्ण के राज्य-समय अर्बुदाचल के लिए रावल श्रीसोमदास के राज्य में ओसवाल जाति के शा० शाभा (शोभा), भार्या कर्मादे और पुत्र माला तथा साल्हा ने डूंगरपुर में सूत्रधार लूंबा और लापा आदि से आदिनाथ की यह मूर्ति बनवाई, जिसकी प्रतिष्ठा तपागच्छ के लक्ष्मीसागर-सूरि ने की।

५—उसी मंदिर में शांतिनाथ की पीतल की मूर्ति का (आषाढ़ादि) वि० सं० १५१८ (चैत्रादि १५१९, अमांत) वैशाख (पूर्णिमांत ज्येष्ठ) वदि ४ (ई० स० १४६२ ता० १७ अप्रेल) शनिवार का लेख, जिसमें डूंगरपुर के रावल श्रीसोमदास के राज्य-समय ओसवाल जाति एवं चक्रेश्वरी गोत्र के शा० भंभव की भार्या पातूसुत शा० शाभा (शोभा) की भार्या कर्मादे ने अपने पति के कल्याण के निमित्त डूंगरपुर के सूत्रधार नाथा और लुंभा से शांतिनाथ का बिंब बनवाया, जिसकी प्रतिष्ठा लक्ष्मीसागरसूरि ने की।

६—देव सोमनाथ के मंदिर का वि० सं० १५२२ आषाढ़ सुदि ७ रवि-वार (ई० स० १४६५ ता० ३० जून) का लेख, जिसमें उस(महारावल सोम-दास) के समय सोमनाथ के मंदिर में तोरण बनने का उल्लेख है।

७—आंतरी गांव की प्रशस्ति, जो (आषाढ़ादि) वि० सं० १५२५ (चैत्रादि १५२६) वैशाख (पूर्णिमांत ज्येष्ठ) वदि १० (ई० स० १४६९ ता० ६ मई) को महारावल सोमदास के समय में खोदी गई थी। उससे इतना और ज्ञात होता है कि रावल सोमदास का मुख्य मंत्री भी साल्हराज था। उस-(साल्हराज)ने चूंडावाड़ा के बारिया आदि बलवान् भीलों को सज़ा देकर कटार (कटारा) प्रदेश को उनके आतंक से बचाया[1] और वहां (आंतरी) के शांतिनाथ के मन्दिर में मंडप तथा देवकुलिकाएं बनवाईं।

---

(१) यश्चूंडचुंडवाटके बार्यादिबलिष्ठशबरकटकभटान् ।
जित्वा················करोन्निष्कंटकं कटारिदेशं ॥ २५ ॥

मूल लेख की छाप से।

८—आबू के अचलगढ़ पर आदिनाथ की पीतल की मूर्ति पर (आ०) वि० सं० १५२६ (चैत्रादि १५३०, अमांत) वैशाख (पूर्णिमांत ज्येष्ठ) वदि ४ शुक्रवार (ई० स० १४७३ ता० १६ अप्रेल) का लेख है, जिससे महारावल सोमदास के समय में उक्त मूर्ति का डूंगरपुर में बनना पाया जाता है।

९-१०—चीतरी गांव के वि० सं० १५३६ आषाढ़ सुदि १ (ई० स० १४७९ ता० २० जून) के दो लेख, जिनका अभिप्राय यह है कि महाराजाधिराज श्रीसोमदास के राजत्वकाल में बांसवाला (बांसवाड़ा) ग्राम में रहते समय युवराज श्रीगंगदास ने भट्ट सोमदत्त को चीतली गांव में चार हल की भूमि दी[1]।

इन लेखों से निश्चित है कि वि० सं० १५०६ से १५३६ (ई० स० १४४९ से १४७९) तक सोमदास विद्यमान था। उसके उत्तराधिकारी गंगदास का सबसे पहला लेख वि० सं० १५३६ का मिला है, अतएव वि० सं० १५३६ (ई० स० १४७९) में ही उस (सोमदास) की मृत्यु होना निश्चित है। ख्यात में उसका देहांत वि० सं० १५३९ में होना लिखा है, जो ठीक नहीं है। उसकी एक राणी का नाम हरखमदे था, जिसने अपने पति की मृत्यु के पीछे कल्याणपुर के पास करजी गांव में विष्णु का मन्दिर बनवाया था।

राजपूताना म्यूज़ियम् की ई० स० १९३० की रिपोर्ट; पृ० ३-४। आंतरी गांव की प्रशस्ति में सालहराज के वंश का विशद वर्णन है। खेद है कि वह कई जगह से टूटी हुई है और उसके कुछ अक्षर घिस भी गये हैं तथापि वह सालहराज और उसके वंश का इतिहास जानने के लिए उपयोगी है।

(१) ....स्वस्ति संवत् १५३६ आषाढसुदि १ पूर्वं महाराजाधिराजश्रीसोमदासविजयराज्ये अद्येह श्रीबांसवालाग्रामात् युवराजश्रीगंगदास एतैः भट्टसोमदत्त एतेभ्यः चीतलीग्रामे भूमिहल ४ च्यारि उदकधारया शासनपत्रप्रसादीकृतं ए भूमि प्रयागि संकल्प करी........

मूल लेख की छाप से।

गंगदास

महारावल गंगदास, जिसको गांगेव और गांगा भी कहते थे, वि० सं० १५३६ (ई० स० १४८०) में डूंगरपुर का स्वामी हुआ।

डूंगरपुर में वनेश्वर के मन्दिर के आषाढ़ादि वि० सं० १६१७ (चैत्रादि १६१८) ज्येष्ठ सुदि ३ (ई० स० १५६१ ता० १७ मई) के राय-रायां महारावल आसकरण के समय के शिलालेख में लिखा है कि ईडर के स्वामी भाण को १८००० सेना के साथ गंगदास का युद्ध हुआ, जिसमें उसने भाण के सिर पर प्रहार किया और उसकी सेना को तितर-बितर कर दिया[1]। इस लड़ाई का कारण अज्ञात है।

वि० सं० १५५३ और १५५५ के बीच किसी वर्ष महारावल गंगदास का शरीरांत और उदयसिंह का राज्यारोहण हुआ होगा, क्योंकि प्राप्त लेखों में गंगदास का सब से पिछला लेख वि० सं० १५५३ (ई० स० १४९६) का और उसके क्रमानुयायी उदयसिंह का सबसे पहला लेख वि० सं० १५५५ मार्गशीर्ष सुदि ५ (ई० स० १४९८ ता० १८ नवम्बर) रविवार का है।

महारावल गंगदास के समय के नीचे लिखे हुए शिलालेखादि मिले हैं—

१—बांसवाड़ा राज्य के इटाउवा गांव का वि० सं० १५३६ पौष वदि ८ (ई० स० १४८० ता० ५ जनवरी) का लेख, जिसमें रावल गंगदास के समय राठोड़ भूरा के मारे जाने का उल्लेख है।

२—बांसवाड़ा राज्य के तलवाड़ा गांव का वि० सं० १५३८ आषाढ़ सुदि १४ (ई० स० १४८१ ता० १० जून) का शिलालेख।

३—पारड़ा गांव से मिला हुआ विष्णु की पाल का वि० सं० १५४२

(१) बभूव तस्यापि सुतो बलीयान् ।
श्रीगंगदासो हि रणे विजेता ॥ ५ ॥
येनाष्टादशसाहस्रं बलं भग्नं महात्मना ।
इलादुर्गाधिपो भानुर्भाले गर्ज्जेन ताडितः ॥ ६ ॥

मूल लेख की छाप से।

फाल्गुन (चैत्रादि चैत्र) वदि [७] (ई० स० १४८६ ता० २५ फरवरी) शनिवार का दानपत्र। इसमें रावल गंगदास-द्वारा भूमिदान होने का उल्लेख है।

४—देव-सोमनाथ के मन्दिर का वि० सं० १५४८ (चैत्रादि १५४९) शाके १४१४ वैशाख सुदि ३ (ई० स० १४९२ ता० ३१ मार्च) का लेख। इसमें महारावल गंगदास के राज्य-समय देव-सोमनाथ के मंदिर में एक तोरण बनाने का उल्लेख है और उसकी उपाधि रायरायां महारावल लिखी है। उक्त संवत् के पीछे के वागड़ (डूंगरपुर और बांसवाड़ा) के राजाओं के कई एक शिलालेखादि में भी उनकी उपाधि रायरायां पाई जाती है।

५—कणवा गांव के देवी के मन्दिर का वि० सं० १५५३ शाके १४१८ मार्गशीर्ष सुदि ५ (ई० स० १४९६ ता० १० नवम्बर) गुरुवार का लेख। इसमें महारावल गंगदास के राज्यकाल में उपर्युक्त मंदिर के जीर्णोद्धार का वर्णन है।

उदयसिंह

वि० सं० १५५३ (ई० स० १४९६) और वि० सं० १५५५ (ई० स० १४९८) के बीच किसी समय महारावल उदयसिंह वागड़ का स्वामी हुआ[1]।

महाराणा रायमल के समय सुलतान ग़यासुद्दीन ने पितृघाती उदयसिंह के पुत्र सहसमल और सूरजमल को मेवाड़ का राज्य दिलाने के लिए वि० सं० १५३१ में चित्तोड़ पर चढ़ाई की, जिसमें उस (सुलतान) की हार हुई। उसका बदला लेने के लिए ग़यासुद्दीन ने फिर मेवाड़ पर चढ़ाई करने का विचार कर एक बड़े लश्कर के साथ अपने सेनापति ज़फ़रखां को मेवाड़ पर भेजा। वह मेवाड़ के पूर्वी भाग को लूटने लगा, जिसकी सूचना पाते ही महाराणा अपने पांचों कुंवर—पृथ्वीराज, जयमल, संग्रामसिंह, पत्ता (प्रताप) और रामसिंह—तथा कांधल चूंडावत (रत्नसिंहोत), सारंगदेव अज्जावत, रावत सूरजमल खेमकरणोत आदि

महाराणा रायमल की सहायतार्थ उदयसिंह का ज़फ़रखां से लड़ने को जाना

(१) बड़वे की ख्यात में वि० सं० १५६१ भाद्रपद सुदि १३ को महारावल उदयसिंह का गद्दी बैठना लिखा है, जो असंगत है।

सरदारों सहित मांडलगढ़ की तरफ बढ़ा। वहां ज़फ़रखां के साथ घमासान युद्ध हुआ, जिसमें दोनों पक्ष के बहुत से वीर मारे गये और ज़फ़रखां हारकर मालवे को लौट गया। इस युद्ध के प्रसंग में वि० सं० १५४५ (ई० स० १४८८) की एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति में लिखा है कि महाराणा ने मांडलगढ़ के पास जाफ़र के सैन्य का नाश कर शकपति ग़यास के गर्वोन्नत सिर को नीचा कर दिया। वहां से वह मालवे की ओर बढ़ा और खैराबाद की लड़ाई में यवन सेना को तलवार के घाट उतारकर मालवा-वालों से दंड लिया और अपना यश बढ़ाया।

फ़ारसी तवारीख़ों में ग़यासुद्दीन के साथ रायमल का युद्ध होने का कुछ भी उल्लेख नहीं है, परन्तु उपर्युक्त प्रशस्ति में युद्ध होने का स्पष्ट वर्णन है। महाराणा रायमल की प्रशंसा में रचे हुए रायमल रासे में भी ज़फ़रखां के साथ रायमल का युद्ध होना लिखा है। इस युद्ध में डूंगरपुर की ओर से उदयसिंह का विद्यमान होना पाया जाता है। महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास ने 'वीर-विनोद' में 'रायमलरासा' के अनुसार उक्त युद्ध के लिए सरदारों आदि को जो घोड़े दिये गये उनकी तालिका भी दी है, जिसमें रावल उदयसिंह को उच्चैश्रवा नामक घोड़ा देने का उल्लेख है।

डूंगरपुर के शिलालेखों से जान पड़ता है कि महारावल उदयसिंह वि० सं० १५५४ के आसपास से १५८४ तक वागड़ का स्वामी रहा। इस स्थिति में महारावल हो जाने के पश्चात् उसका इस युद्ध में सम्मिलित होना संभव नहीं, क्योंकि एकलिंगजी के दक्षिण द्वार की प्रशस्ति, जिसमें महाराणा रायमल का ज़फ़रखां को परास्त करने का उल्लेख है, वि० सं० १५४५ (ई० स० १४८८) में बनी थी अतएव यदि रायमलरासे का कथन ठीक हो तो यही मानना पड़ेगा कि उदयसिंह ने कुंवरपदे में महाराणा की सहायता के लिए जाकर ज़फ़रखां से युद्ध किया हो।

ईडर के राव भाण की मृत्यु होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र सूर्यमल वहां की गद्दी पर बैठा और १८ महीने राज्य कर मर गया। तब सूर्यमल का पुत्र रायमल ईडर का राजा हुआ। उसकी छोटी अवस्था होने से उसका चाचा

और उसे निकालकर वहां का स्वामी बन गया। रायमल ने चित्तोड़ पहुंचकर सुप्रसिद्ध महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) की शरण ली। उसकी कुलीनता के कारण महाराणा ने उसे अपने यहां रक्खा और अपनी पुत्री का संबंध भी उसके साथ कर दिया। कुछ समय पीछे भीम भी मर गया और उस (भीम) का पुत्र भारमल ईडर का स्वामी बना। महाराणा सांगा ने रायमल को पुनः गद्दी दिलाने के लिए अपनी सेना भेजी, जिसमें सम्मिलित होने के उद्देश्य से महारावल उदयसिंह के नाम वि० सं० १५७० माघ सुदि ४ (ई० स० १५१४ ता० ३० जनवरी) को पत्र भेजा। महारावल भी अपनी सेना सहित महाराणा के सैन्य में सम्मिलित हो गया। इस सम्मिलित सेना ने भारमल को हटाकर ईडर पर फिर रायमल का अधिकार करा दिया, जिससे भारमल गुजरात के सुलतान के पास चला गया।

ईडर के राव रायमल को गद्दी दिलाने में उदयसिंह की सहायता

हि० स० ६२० (वि० सं० १५७१= ई० स० १५१४) में गुजरात के सुलतान मुज़फ्फ़रशाह (दूसरे) ने ईडर पर भारमल का अधिकार करा देने के लिए अहमदनगर के स्वामी निज़ामुलमुल्क को हुक्म दिया। निज़ामुलमुल्क ने रायमल को ईडर से निकाल दिया और पहाड़ों में उसका पीछा किया, जिसमें उस (निज़ामुलमुल्क) को बहुत हानि उठानी पड़ी। एक बार एक भाट के सामने उस (निज़ामुलमुल्क) ने महाराणा संग्रामसिंह के लिए कुछ अपशब्द कहे। भाट-द्वारा महाराणा को निज़ामुलमुल्क की गुस्ताखी का हाल मालूम होने पर वह बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने गुजरात पर चढ़ाई कर दी। महाराणा चित्तोड़ से रवाना होकर वागड़ में होता हुआ डूंगरपुर पहुंचा। उस समय रावल उदयसिंह भी अपनी सेना लेकर महाराणा के साथ हो गया। इस सम्मिलित सैन्य के प्रभाव से भय खाकर निज़ामुलमुल्क भागकर अहमदनगर चला गया। इधर महाराणा ने ईडर के राज्य पर फिर रायमल का अभिषेक कर दिया। वहां से आगे बढ़कर महाराणा ने अहमदनगर को जा घेरा, तो मुसलमानों ने क़िले के दरवाज़े बन्द कर युद्ध आरम्भ किया। इस युद्ध में वागड़ का एक नामी सरदार—

डूंगरसिंह चौहान—बुरी तरह घायल हुआ और उसके कई भाई-बेटे मारे गये। इस अवसर पर डूंगरसिंह के पुत्र कान्हसिंह ने बड़ी वीरता दिखलाई। उक्त क़िले के लोहे के किवाड़ तोड़ने के लिए जब हाथी आगे बढ़ाया गया, तब वह उनमें लगे हुए तेज भालों के कारण मुहरा न कर सका। यह देखकर वीर कान्हसिंह ने भालों के आगे खड़े होकर महावत से कहा कि हाथी को मेरे बदन पर हूल दे। तदनुसार कान्हसिंह पर हाथी ने मुहरा किया, जिससे उसका बदन भालों से छिन्न-भिन्न हो गया और वह तत्क्षण मर गया[1], परन्तु किवाड़ टूट गये। राजपूत लोग क़िले में जा घुसे और उन्होंने मुसलमानी सेना को काट डाला। मुबारिज़ुल्मुल्क क़िला छोड़कर खिड़की के रास्ते से भाग गया। इस प्रकार उस सेना ने निज़ामुल्मुल्क का घमंड चूर्ण कर अहमदनगर को लूटा। फिर वह सेना बड़नगर और बीसलनगर की ओर बढ़ी और वहां के हाकिम हातिमखां को मारकर उसने उन नगरों को लूटा[2]। तत्पश्चात् महाराणा चित्तोड़ को और उदयसिंह डूंगरपुर को लौट गया।

निज़ामुल्मुल्क पर की चढ़ाई के समय गुजरातवालों की बड़ी हानि हुई जिसका बदला लेने के लिए हिजरी सन् ९२७ (ई० स० १५२०=वि० सं० १५७७) में गुजरात के सुलतान मुज़फ़्फ़रशाह (दूसरे) ने रावल उदयसिंह पर सेना भेजी, उसके विषय में मिराते सिकन्दरी में लिखा है—"वागड़ का राजा (उदयसिंह) राणा (सांगा) से मिल गया था, इसलिए सुलतान ने उसके आसपास का मुल्क बरबाद करने के लिए सेनाएं भेजीं। उन्होंने राजा की राजधानी को जलाकर खाक कर दिया। फिर वे सागवाड़े होती हुई बांसवाड़े के निकट पहुंचीं। शुजाउल्मुल्क और सफ़दरखां मुजाहिदुल्-

गुजरात के सुलतान मुज़फ़्फ़रशाह की वागड़ पर चढ़ाई

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; (हस्तलिखित) पत्र २६, पृ० १। वीरविनोद; भाग १, पृ० ३५६। हरबिलास सारडा; महाराणा सांगा; पृ० ८०-८१। मेरा राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ६६२।

(२) मेरा राजपूताने का इतिहास, जिल्द २, पृ० ६६०-६३। फार्बस; रासमाला, पृ० २६५।

मुल्क के साथ हरावल में रहे। उनके साथ दो सौ सवार थे। अब उन्हें यह सूचना मिली कि बांसवाड़े का राजा दो कोस पर है, तो वे तुरंत रवाना हुए। मुसलमानों को थोड़ी संख्या में देखकर हिन्दुओं ने उनपर हमला किया हिन्दुओं की संख्या दसगुनी थी, तो भी अन्त में मुसलमानों की विजय हुई[1]"।

इस लेख से ज्ञात होता है कि मुसलमानों के केवल दो सौ ही सवार थे और राजपूतों के पास उनसे दसगुने। इस अवस्था में मुसलमानों की विजय असंभव जान पड़ती है। अनुमान यही होता है कि मुसलमानी सेना हारकर भाग गई हो। मुसलमान इतिहासलेखक हिन्दुओं से मुसलमानों की हार होने की बात प्रथम तो लिखते ही नहीं, कदाचित् किसी ने युद्ध का परिणाम लिखा, तो हारकर लौटने के स्थान में अपनी फ़तह होना या पेशकशी लेकर लौट जाना बतलाते हैं।

गुजरात के सुलतान मुज़फ़्फ़रशाह के कई शाहज़ादे थे, जिनमें से सिकन्दरखां (सिकन्दरशाह) सब से बड़ा होने से राज्य का उत्तराधिकारी था। सुलतान भी उसी को अधिक चाहता था, क्योंकि वही सब से योग्य था। हि० स० ९३१ (वि० सं० १५८२=ई० स० १५२५) में सुलतान ईडर पर चढ़ा, उस समय उसके दूसरे पुत्र बहादुरखां ने (जो पीछे से बहादुरशाह नाम से गुजरात का स्वामी हुआ) अपने पिता से शिकायत की कि मुझे जो खर्च मिलता है, वह मेरे पद के अनुरूप नहीं, इसलिए मुझे भी सिकन्दरखां के बराबर मिलना चाहिये, परन्तु जब सुलतान ने उसके कथन पर कुछ भी ध्यान न दिया तब वह अप्रसन्न होकर अहमदाबाद लौट गया और वहां से सीधा महारावल उदयसिंह के पास पहुंचा[2]। उदयसिंह ने उसे बड़ी खातिर के साथ अपने यहां रक्खा। कुछ समय तक वहां रहने के पश्चात् वह महाराणा संग्रामसिंह के पास चित्तोड़ में जा रहा।

गुजरात के शाहज़ादे बहादुरखां को शरण देना

(१) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात, पृ० २७२।

(२) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात, पृ० २७७। ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता, जि० ४, पृ० ९९।

सुलतान मुज़फ़्फ़रखां के पीछे उसका ज्येष्ठ पुत्र सिकन्दरखां सिकन्दरशाह के नाम से गुजरात का सुलतान हुआ, परन्तु कुछ ही दिनों में वह मर गया और वज़ीर इमादुल्मुल्क ने उसके स्थान में बहादुरख़ां के (जो महाराणा सांगा के पास चित्तोड़ जाकर रहा था) छोटे भाई नासीरखां को महमूदशाह (दूसरे) के नाम से गुजरात का स्वामी बना दिया। इमादुल्मुल्क ने अमीरों आदि को खिलअत, घोड़े और ख़िताब दिलवाये, किन्तु जागीरें नहीं। इसपर उन्होंने बिना जागीर के इन ख़िताबों को लेना निरर्थक समझा। बहुत से अमीर इस बात से अप्रसन्न होकर इमादुल्मुल्क को मारने के लिए तैयार हो गये, परन्तु किसी नेता के बिना वे कुछ नहीं कर सकते थे। निदान वे अपने अपने स्थानों को चले गये। जब सुलतान के राज्य में अव्यवस्था हुई, उस समय वज़ीर इमादुल्मुल्क ने इमादुल्मुल्क एलिचपुरी और आसपास के राजाओं तथा महाराणा संग्रामसिंह को लिखा कि इस समय आप सुलतान की सहायता करें, तो बहुत कुछ रुपये आदि दिये जा सकते हैं। उसने बादशाह बाबर को भी लिखा कि यदि आप इस समय सहायता दें तो एक करोड़ टंका (रुपये) और दीव का बन्दर देंगे। उस समय बाबर इब्राहीम लोदी को जीत चुका था। जो पुरुष बाबर के नाम का पत्र लेकर जा रहा था, उससे रावल उदयसिंह ने वह छीन लिया[1] और बाबर के पास पहुंचने न देकर ताजखां के द्वारा बहादुरखां को इस पत्र की सूचना दी, क्योंकि बहादुरखां उसके आश्रय में रहा था।

महारावल उदयसिंह का बादशाह बाबर के नाम का पत्र मार्ग में छीन लेना

महमूदशाह के समय गुजरात की सल्तनत में कमज़ोरी और अव्यवस्था देख, बहादुरखां गुजरात में आ पहुंचा और उस (महमूदशाह) को वहां से हटाकर बहादुरशाह के नाम से गुजरात का स्वामी बना। महारावल उदयसिंह-द्वारा किये हुए पहले के उपकारों को भूलकर उसने शीघ्र ही उपकार का बदला

बहादुरशाह की उदयसिंह पर चढ़ाई

(१) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात, पृ० ३१६ टिप्पण *, पृ० ३२६ टि० ‡। ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता, जि० ४, पृ० १०२।

अपकार में दिया और हि० स० ९३२ (वि० सं० १५८३=ई० स० १५२६) में महारावल उदयसिंह पर चढ़ाई की। सुलतान सेना सहित माकरेज में आ ठहरा। तब महारावल उदयसिंह ने उसके पास जाकर उसे प्रसन्न कर लिया। फिर सुलतान ने वहां से डूंगरपुर पहुंचकर तालाब के तट पर डेरा डाला। वहां कई दिन ठहरकर उसने मछलियों का शिकार किया[1]। बहादुरशाह की इस चढ़ाई का कारण यही हो सकता है कि गुजरात का स्वामी बनने पर उस(बहादुरशाह)ने अपने विरोधी अफसरों में से अज़ुलमुल्क और मुहाफ़िज़खां को सज़ा देने के लिए सेना भेजी। तब इन विरोधी अफ़सरों ने भागकर रावल उदयसिंह की शरण ली थी[2]।

दिल्ली के सुलतान इब्राहीम लोदी को ई० स० १५२६ (वि० सं० १५८३) में पानीपत के युद्ध में परास्त कर बाबर बादशाह ने भारत में मुग़ल साम्राज्य की नींव डाली। उस समय भारत में पुनः हिन्दू-साम्राज्य की स्थापना के विचार से मेवाड़ के प्रतापी महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) ने एक बड़ी सेना के साथ बाबर बादशाह पर चढ़ाई कर दी। राजपूताने और बाहर के कई राजा तथा मुसलमान अमीर आदि महाराणा सांगा के झण्डे के नीचे बाबर से लड़ने के लिए एकत्र हुए थे। इस अवसर पर महारावल उदयसिंह भी, जो हिन्दू-साम्राज्य का पक्षपाती था, अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर अपने छोटे पुत्र जगमाल को साथ लेकर[3] बारह हज़ार[4] सवारों के साथ महाराणा की सेना में सम्मिलित हो गया। भरतपुर के समीप खानवे के मैदान में ता० १३ जमादिउस्सानी हि० स० ९३३ (वि० सं० १५८४ चैत्र सुदि १४= ई० स० १५२७ ता० १७ मार्च) को सवेरे ९½ बजे के लगभग युद्ध आरंभ हुआ। राजपूतों ने पहले पहल मुग़ल सेना के दक्षिण पार्श्व पर हमला किया, जिससे उसका वह पार्श्व

खानवे का युद्ध और उदयसिंह की मृत्यु

(१) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात, पृ० ३३९।

(२) ब्रिग्ज़; फ़िरिश्ता; जिल्द ४, पृ० १०९।

(३) कविराजा बांकीदास; ऐतिहासिक बातें, सं० ३१।

(४) तुज़ुके बाबरी का बेवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५६२, ५७३

कमज़ोर हो गया, यदि वहां और थोड़े समय तक सहायता न पहुंचती तो मुग़लों की हार निश्चित थी। बाबर ने एकदम सहायता भेजी और चीनतीमूर सुलतान ने राजपूतों के वाम पार्श्व के मध्य भाग पर हमला किया, जिससे मुग़ल सेना का दक्षिण पार्श्व नष्ट होने से बच गया। चीनतीमूर के इस हमले से राजपूतों के अग्रभाग और वाम पार्श्व में विशेष अन्तर पड़ गया, जिससे मुस्तफ़ा ने अच्छा अवसर देखकर तोपों से गोलों की वर्षा शुरू कर दी। इस तरह मुग़लों के दक्षिण पार्श्व की सेना को सँभल जाने का मौका मिल गया। दक्षिण पार्श्व की ओर मुग़ल सेना का विशेष ध्यान देखकर राजपूतों ने वाम-पार्श्व पर ज़ोर शोर से हमला किया, परन्तु उसी समय एक तीर महाराणा के सिर में लगा, जिससे वह मूर्च्छित हो गया, जिससे कुछ सरदार उसे पालकी में बिठाकर मेवाड़ की तरफ़ ले गये। महाराणा को अनुपस्थित देखकर राजपूत हतोत्साह न हो जावें, इस विचार से उपस्थित सरदारों ने सादड़ी के झाला अज्जा को महाराणा के हाथी पर बिठलाया और वे उसकी अध्यक्षता में लड़ने लगे। वाम पार्श्व पर राजपूतों का आक्रमण देख घेरा डालनेवाली सेना के अफ़सर मुमीन आताक और रुस्तम तुर्कमान ने आगे बढ़कर राजपूतों पर हमला किया। बाबर ने भी ख़्वाजा हुसेन की अध्यक्षता में एक और सेना उधर भेजी। अबतक युद्ध का परिणाम अनिश्चित था। एक ओर मुग़लों का तोपख़ाना धड़ाधड़ अग्नि-वर्षा कर राजपूतों को तहस-नहस कर रहा था तो दूसरी ओर राजपूतों का प्रचंड आक्रमण मुग़लों की संख्या को बेतरह कम कर रहा था। इस समय बाबर ने दोनों पार्श्वों की घेरनेवाली सेना को आगे बढ़कर घेरा डालने के लिए कहा और उस्तादअली को भी गोले बरसाने का हुक्म दिया। तोपों के पीछे सहायतार्थ रक्खी हुई सेना को उसने बंदूकचियों के बीच में कर राजपूतों के अग्रभाग पर हमला करने के लिए आगे बढ़ाया। तोपों की मार से राजपूतों का अग्रभाग कमज़ोर हो गया। उनकी इस अवस्था को देखकर मुग़लों ने राजपूतों के दक्षिण और वाम-पार्श्व पर प्रचंड वेग से आक्रमण किया और बाबर की हरावल के दोनों भागों एवं दोनों पार्श्वों की सेनाएं तोपख़ाने के साथ साथ अपनी अपनी

दिशा में आगे बढ़ती हुई घेरा डालनेवाली सेनाओं की सहायक बन गई। इससे राजपूतों में गड़बड़ मच गई और वे अग्रभाग की तरफ़ जाने लगे, परन्तु फिर उन्होंने कुछ सँभलकर मुग़लों के दोनों पार्श्वों पर हमला किया और मध्य-भाग तक उनको खदेड़ते हुए वे बाबर के निकट पहुंच गये। इस समय तोपखाने से मुग़ल सैन्य को बड़ी सहायता मिली। तोपों के गोलों के आगे राजपूत ठहर न सके और पीछे हटने लगे। मुग़लों ने फिर आक्रमण किया और सबने मिलकर राजपूतों को घेर लिया। वीर राजपूतों ने भी तलवारों और भालों से उनका सामना किया, किन्तु चारों ओर से घिर जाने और सामने से गोले बरसते रहने से उनका संहार होने लगा[1]। अन्तिम परिणाम यह हुआ कि विजय-लक्ष्मी ने मुग़लों को जयमाल पहनाई। इस युद्ध में राजपूतों ने वीरता प्रदर्शित करने में कोई कसर नहीं रक्खी और उनके नामी-नामी सरदार मारे गये। महारावल उदयसिंह ने वीरता-पूर्वक युद्ध करते हुए स्वर्गारोहण किया[2] और उसका पुत्र जगमाल घायल हुआ। अपने पास तोपें न होने से ही राजपूतों ने बहुत हानि उठाई। इस युद्ध में राजपूतों की पराजय का वास्तविक कारण उनकी अदूर-दर्शिता ही थी। यदि राजपूत मुग़लों पर आक्रमण करने में त्वरा करते और शत्रु-पक्ष के सामने दो महीने तक निरर्थक पड़े न रहते तो बाबर पर उनकी विजय निश्चित थी।

महारावल उदयसिंह के पृथ्वीराज और जगमाल नामक दो पुत्र थे। अपनी विद्यमानता में ही उक्त महारावल ने वागड़ राज्य के दो विभाग कर एक भाग (पश्चिमी) ज्येष्ठ पुत्र पृथ्वीराज के लिए रक्खा और दूसरा (पूर्वी) जगमाल को दे दिया।

डूंगरपुर राज्य के दो विभाग होना

चींच गांव (बांसवाड़ा राज्य) के ब्रह्मा के मन्दिर के वि० सं० १५७७

---

(१) रशब्रुक विलियम्स; ऐन ऐम्पायर-बिल्डर ऑफ़ दि सिक्सटीन्थ सेन्चरी; पृ० १५३-५। अर्स्किन; हिस्टरी ऑफ़ इंडिया; पृ० ४७२-३। ए. एस्. बेवरिज-कृत तुज़ुके बाबरी का अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५६८-७३।

(२) तुज़ुके बाबरी का अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० ५७३। वीरविनोद; भाग १, पृ० ३६६।

कार्तिक सुदि २ (ई० स० १५२० ता० १३ अक्टूबर) के शिलालेख में जगमाल को 'महारावल' लिखा[1] है। मिराते सिकन्दरी के आधार पर वि० सं० १५७७ (ई० स० १५२०) में गुजरात के सुलतान मुज़फ्फ़रशाह की चढ़ाई के समय डूंगरपुर से सागवाड़े होकर बांसवाड़े जाते हुए मार्ग में बांसवाड़े के राजा का दो कोस दूर रहकर उससे युद्ध होना पहले बतलाया गया है। इससे अनुमान होता है कि वि० सं० १५७७ (ई० स० १५२०) के पूर्व ही उदयसिंह ने अपने राज्य के दो विभाग कर दिये थे। इसका विशेष विवरण बांसवाड़े के इतिहास में लिखा जायगा। वागड़ राज्य के दो विभाग किये जाने का कारण संभवतः यही प्रतीत होता है कि जगमाल की माता पर अधिक प्रीति होने से उसको प्रसन्न रखने के लिए ऐसा किया गया हो।

महारावल उदयसिंह के समय के शिलालेखादि

महारावल उदयसिंह के समय के वि० सं० १५५५ से १५८१ (ई० स० १४६८ से १५२४) तक के संवत्वाले ६[2] और एक बिना संवत् का—डेसां की बावड़ी का—शिलालेख मिला है, जिनसे उसका समय निर्णय करने के अतिरिक्त और कोई सहायता नहीं मिलती।

---

(१) संवत् १५७७ वरषे (वर्षे) काती सुद (कार्तिकसुदि) २ द(दि)ने महाराउलश्रीजगमालवचनात्....................।

मूल लेख की छाप से।

(२) उपर्युक्त शिलालेखों का विवरण इस प्रकार है—

(क) कांकरूआ गांव (बांसवाड़ा राज्य) का वि० सं० १५५५ मार्गशीर्ष सुदि ५ (ई० स० १४६८ ता० १८ नवम्बर) रविवार का लेख।

(ख) बांसवाड़ा राज्य के गढ़ी पट्टे के आसोड़ा गांव का (श्रा०) वि० सं० १५५६ (चैत्रादि १५५७) वैशाख सुदि...(ई० स० १५०० अप्रेल) गुरुवार का लेख।

(ग) वजवाणा गांव (बांसवाड़ा राज्य) का वि० सं० १५५७ आषाढ़ सुदि २ (ई० स० १५०० ता० २८ जून) रविवार का लेख।

(घ) पाड़ला गांव के शिव-मन्दिर का आषाढ़ादि वि० सं० १५६३ (चैत्रादि १५६४) ज्येष्ठ (पूर्णिमांत आषाढ़) वदि ५ (ई० स० १५०७ ता० ३० मई) का लेख।

महारावल उदयसिंह वीरप्रकृति का पुरुष था। उसका पिछला जीवन मुसलमानों से लड़ने में ही बीता। उसने गुजरात के सुलतानों के नाराज़ होने की कुछ भी परवाह न कर वहां के शाहज़ादों और अफ़सरों को अपने यहां शरण दी। वह भारत में पुनः हिन्दू-साम्राज्य का अभ्युदय देखना चाहता था। भारत के हिन्दू राजाओं में उस समय मेवाड़ का महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) ही सम्राट् पद के योग्य था, इसलिए उसने उक्त महाराणा का साथ देकर युद्धक्षेत्र में अपने प्राणों की आहुति दी। तुज़ुके बाबरी में खानवे के युद्ध में उसके साथ बारह हज़ार सेना होने का उल्लेख है, जिससे उसके राज्य-विस्तार, वैभव तथा शक्ति-संपन्न होने का अनुमान हो सकता है। उसने चित्तोड़ और ईडर के स्वामियों को यथासमय सहायता देकर पारस्परिक स्नेह में वृद्धि की, परन्तु यह निस्संदेह कहना होगा कि बहु-विवाह की दूषित प्रथा के कारण चिर-प्रचलित प्रथा की उपेक्षा कर उसने वागड़ के दो विभाग करने में बड़ी भारी भूल की, जिसके फल-स्वरूप वे दोनों राज्य निर्बल हो गये और उन्हें पर्याप्त हानि उठानी पड़ी।

उदयसिंह का व्यक्तित्व

(ङ) नौगामा गांव (बांसवाड़ा राज्य) के जैन-मंदिर का वि० सं० १५७१ कार्तिक (पूर्णि० मार्गशीर्ष) वदि २ (ई० स० १५१४ ता० ४ नवम्बर) शनिवार का लेख।

(च) भेकरोड गांव के तालाब की पाल का (आषाढ़ादि) वि० सं० १५७४ (चैत्रादि १५७५) वैशाख सुदि २ (ई० स० १५१८ ता० १२ अप्रेल) सोमवार का लेख।

(छ) ओबरी गांव का वि० सं० १५७७ माघ सुदि (१५) (ई० स० १५२१ जनवरी) का लेख।

(ज) डूंगरपुर के रामपोल दरवाज़े का आषाढ़ादि वि० सं० १५७७ (चैत्रादि १५७८) शाके १४४३ (ई० स० १५२१) का अस्पष्ट लेख।

(झ) डूंगरपुर के महाकालेश्वर के मंदिर का आषाढ़ादि वि० सं० १५८१ (चैत्रादि १५८२) वैशाख सुदि ५ (ई० स० १५२५ ता० २७ अप्रेल) गुरुवार का लेख।

सातवां अध्याय

महारावल पृथ्वीराज से महारावल कर्मसिंह (दूसरे) तक

पृथ्वीराज

खानवे के युद्ध में महारावल उदयसिंह के काम आने की सूचना पाकर वि० सं० १५८४ के वैशाख मास (ई० स० १५२७) में पृथ्वीराज डूंगरपुर का स्वामी हुआ। उसके पिता उदयसिंह ने अपनी विद्यमानता में ही वागड़ राज्य को दो भागों में विभक्त कर एक भाग अपने छोटे पुत्र जगमाल को दे दिया था। जगमाल खानवे के युद्ध में घायल हुआ[1], परन्तु नीरोग होने पर वागड़ में आया और बांसवाड़े में रहने लगा।

भ्रातृ-विरोध

अपने पिता के द्वारा वागड़ के दो भाग किये जाने से पृथ्वीराज असंतुष्ट था, क्योंकि यह बात राजपूतों की चिर-प्रचलित प्रथा के विरुद्ध थी, इसलिए जगमाल को वागड़ से निकालने के लिए उसने अपने सरदार वागड़िये चौहान मेरा और रावत पर्वत लोलाडिये को सेना सहित भेजा। उनसे पराजित होकर वह (जगमाल) भागा और पहाड़ों में जा रहा और फिर वह मेवाड़ के महाराणा रत्नसिंह के पास सहायतार्थ गया। जगमाल के अधीनस्थ प्रदेश पर अधिकार कर जब वे दोनों सरदार डूंगरपुर लौटे, तब उन्होंने समझा था कि हम बड़ा काम कर आये हैं, इसलिए हमारी मान-मर्यादा और जागीर में वृद्धि होगी, परन्तु पृथ्वीराज का एक निजी सेवक, जो सेना में सम्मिलित था, पहले घर पहुंच गया और उसने एकान्त में उस (पृथ्वीराज) को सब वृत्तान्त कह यह बात भिड़ा दी कि जगमाल ऐसी घात

(१) कविराजा बांकीदास; ऐतिहासिक बातें, संख्या ३१। राजपूताना गेज़ेटियर; जिल्द १ के अन्तर्गत बांसवाड़े का गेज़ेटियर, पृ० १०४-५ (ई० स० १८७९ का संस्करण)।

में आ गया था कि वह मार लिया जाता, परन्तु चौहान मेरा और रावत पर्वत ने उसे छोड़ दिया। पृथ्वीराज इस झूठी बात को सच्ची मान गया और जब वे दोनों सरदार डूंगरपुर पहुंचे, तो उसने उनका मुजरा तक स्वीकार न किया और उन्हें उलाहना दिलवाया। पृथ्वीराज ने अपने एक सेवक के द्वारा उनके पास डूंगरपुर से चले जाने के हेतु बीड़े (सीखके) पहुंचाये जिसपर वे क्रुद्ध हो वहां से चल दिये और जगमाल से मिल गये। फिर उन्होंने अपने भाई-बन्धुओं को भी बुला लिया, जिससे उस (जगमाल) की ताक़त बढ़ गई और वे लोग वागड़ को लूटने लगे[1]। मामला यहां तक बढ़ा कि पृथ्वीराज उसे सँभाल न सका और देश की दुर्दशा देखकर पहले के अनुसार वागड़ का आधा राज्य जगमाल को देने से ही बखेड़ा शान्त होने की संभावना उस (पृथ्वीराज) को प्रतीत होने लगी।

बहादुरशाह का वागड़ में आकर जगमाल को आधा राज्य दिलाना

हि० स० ६३७ (वि० सं० १५८८=ई० स० १५३१) में गुजरात के सुलतान बहादुरशाह ने वागड़ पर चढ़ाई की और खानपुरे गांव से, जो माहिन्द्री (माही) नदी के किनारे पर है, खाने आज़म आसफ़खां और खुदावंदखां को सेना के साथ आगे रवाना किया। आप चुने हुए सवार साथ लेकर खंभात और दीव बंदर की तरफ़ गया। वहां से लौटकर मोड़ासे में अपनी सेना से आ मिला। इधर सनीला गांव में सुलतान से पृथ्वीराज भी आकर मिल गया[2]। इस चढ़ाई का कारण तबकाते अकबरी में यह बतलाया गया है कि सुलतान का इरादा छोटे छोटे सरहदी राज्यों को सज़ा देकर उन्हें दुरुस्ती पर लाने का था। जहां जहां वह विजय करता गया, वहां वहां उसने अपने थाने बिठा दिये। डूंगरपुर के राजा को रक्षा की कोई आशा न रही, तब उसने अधीनता स्वीकार कर सुलह कर ली। वह भी सुलतान के साथ हो गया, परन्तु राजा का भाई जग्गा (जगमाल) कई मोतबिर आदमियों

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात (काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा-द्वारा प्रकाशित); प्रथम भाग, पृ० ८६–८७।

(२) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात, पृ० ३४६–४८।

के साथ रवाना होकर पहले पहाड़ों में, फिर चित्तोड़ के राणा रत्नसिंह के पास चला गया था। राणा की सिफ़ारिश से सुलतान ने वागड़ का आधा राज्य जग्गा (जगमाल) को दे दिया[१]।

मिराते सिकन्दरी में इस प्रसङ्ग में लिखा है—"जब सुलतान बहादुरशाह डूंगरपुर से बांसवाड़े की तरफ़ रवाना हुआ, तो करची (करजी) के घाटे में राणा रत्नसिंह के डूंगरसी और जाजराय नामक वकील उपस्थित हुए। सुलतान ने उनके साथ सौजन्यपूर्ण व्यवहार किया। उन्होंने राजा की तरफ़ से भेंट उपस्थित की। सुलतान ने सनीला गांव परशुराम को, जो मुसलमान हो गया था, दिलवाकर वागड़ का आधा इलाक़ा पृथ्वीराज को और आधा जग्गा को बांट दिया[२]"।

सुलतान बहादुरशाह को गुजरात की सीमा पर हिन्दू-राज्य का अस्तित्व कदापि अभीष्ट नहीं था, इतने में उसे भ्रातृ-विरोध का अच्छा अवसर मिल गया, परन्तु पृथ्वीराज के सुलतान के पास उपस्थित हो जाने से वह वागड़ के राज्य को विशेष क्षति नहीं पहुंचा सका। मेवाड़ के महाराणा रत्नसिंह को इन दोनों भाइयों का कलह पसंद नहीं था। पर वह इन दोनों के बीच में पड़कर किसी को अप्रसन्न करना नहीं चाहता था, इसलिए उसने इस झगड़े को मिटाने के लिए बहादुरशाह को कहलाया। इस प्रकार वागड़ प्रदेश के पूर्ववत् दो विभाग होकर माही नदी के पूर्व का भाग जगमाल के अधिकार में और पश्चिमी पृथ्वीराज के पास रहा। जगमाल की राजधानी बांसवाड़ा और पृथ्वीराज की डूंगरपुर थी। इस बँटवारे से वागड़ की शक्ति क्षीण हो गई। पृथ्वीराज ने चौहान लालसिंह को बोरी की जागीर दी। उसके वंशजों के अधिकार में इस समय बनकोड़े का ठिकाना है।

महाराणा उदयसिंह का डूंगरपुर जाना

मेवाड़ के महाराणा विक्रमादित्य को वि० सं० १५६३ (ई० स० १५३६) में महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) के बड़े भाई पृथ्वीराज के दासी-पुत्र वणवीर ने मारकर चित्तोड़ पर अधिकार कर लिया। उसने विक्रमादित्य के छोटे भाई उदय-

(१) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात, पृ० ३४७ का टिप्पण ‡। (२) वही, पृ० ३४८।

सिंह को भी मारना चाहा; परन्तु खीची जाति की पन्ना नामक धाय ने उसे छिपाकर वणवीर के पहुंचने से पूर्व ही, चित्तोड़ से बाहर भेज दिया था। फिर वह (धाय) उसको लेकर देवलिया के स्वामी रायसिंह के पास गई, पर उसने वणवीर के डर से उदयसिंह को अपने यहां न रख सवारी और रक्षा का प्रबन्ध कर डूंगरपुर पहुंचा दिया। पृथ्वीराज[1] ने कुछ दिनों तक उसे अपने यहां रक्खा, परन्तु वणवीर से विरोध होने की संभावना देख उसके लिए खर्च, सवारी, रक्षा आदि का प्रबन्ध कर उसे कुंभलगढ़ पहुंचा दिया।

पृथ्वीराज की संतति

पृथ्वीराज के पुत्र आसकरण के समय के बने हुए बनेश्वर के पास के विष्णु-मन्दिर (द्वारिकानाथ) के (आषाढ़ादि) वि० सं० १६१७ (चैत्रादि १६१८) ज्येष्ठ सुदि ३ (ई० स० १५६१ ता० १७ मई) की प्रशस्ति से प्रकट है कि पृथ्वीराज की एक राणी सज्जनाबाई[2] बालणोत सोलंकी हरराज की पोती और किशनदास (कृष्ण) की पुत्री[3] थी। उससे आसकरण और

(१) राजपूताने के इतिहास, जि० २, पृ० ७१५ में हमने इस घटना का टॉड के 'राजस्थान' और 'वीरविनोद' के आधार पर महारावल आसकरण के समय में होना लिखा है, परन्तु यह घटना वि० सं० १५९३ (ई० स० १५३६) और १५९४ (ई० स० १५३७) के बीच की है। उस समय डूंगरपुर का स्वामी आसकरण नहीं, किन्तु उसका पिता पृथ्वीराज था। आसकरण उस समय कुंवर था और वह तो वि० सं० १६०५ के पश्चात् डूंगरपुर की गद्दी पर बैठा था, ऐसा डूंगरपुर राज्य से मिले हुए शिलालेखों से अब निश्चय हुआ है—

संवत् १६०४ शाके १४६९ प्रवर्तमाने दक्षिणायने आषाढसुदि १५ शनौ गिरी(रि)पुरे महाराजाधिराजराउलश्रीपृथ्वीराजविजयराज्ये······ ·············।

दीवड़ा गांव का शिलालेख।

(२) पृथ्वीशनृपते राज्ञी सज्जनाख्याऽमितप्रभा।
कारितोयं तया दिव्यः प्रासादस्तु········· ॥ १२ ॥

मूल लेख की छाप से।

(३) श्रीमद्बालणदेवसूनुरभवत्क्षात्रैर्गुणैः संयुतः
सोलंकीहरराज इत्यभिधया ख्यातोऽथ तस्यात्मजः ॥

अक्षयराज नामक दो कुंअर और लाछबाई नामक कुंवरी[1] हुई। उक्त राणी ने डूंगरपुर में वनेश्वर के मन्दिर के पास उपर्युक्त विष्णु-मन्दिर को बनवाकर उसकी प्रतिष्ठा के समय स्वर्ण की तुला आदि दान किये[2]। पृथ्वीराज की पुत्री लाछबाई का विवाह जोधपुर के राव मालदेव से हुआ था[3]।

पृथ्वीराज के समय के आठ[4] शिलालेख मिले हैं, जिनमें सब से पहला वि० सं० १५८६ आश्विन सुदि ५ (ई० स० १५२९ ता० ८ सितम्बर)

कृष्णः कृष्ण इवापरः क्षितितले श्रीसज्जनांबा ततो
जाताकारि [त]या प्रसन्नमनसा प्रासाद एषः स्थिरः ॥ २२ ॥

मूल शिलालेख की छाप से।

(१) तस्यास्तनूजौ शुभनामधेयौ श्रीआशकर्णोऽक्षयराजनामा।
पूर्णार्थकामौ निहतारिवर्गौ भूमौ भवेतां सततं सुखाय ॥१७॥
श्रीलाछबाई परमा पवित्रा श्रीसज्जनांबाजनितानुरूपा।
भूयात्सदा भक्तिमती········दातृत्वनिर्यातितकर्णकीर्त्तिः ॥१८॥

वही

(२) तुलापुरुषदानस्य हेमसंपादितस्य च।
गोसहस्रादिदानानां दात्री पात्रजनस्य या ॥ १३ ॥

वही

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात, जि० १, पृ० ८२।

(४) ये शिलालेख नीचे लिखे अनुसार हैं—

(क) साकोदरा गांव के केदारेश्वर महादेव के मंदिर का संवत् १५८६ आश्विन सुदि ५ (ई० स० १५२९ ता० ८ सितम्बर) का लेख।

(ख) वरवासा गांव का आषाढ़ादि वि० सं० १५८९ (चैत्रादि १५९०) वैशाख (पूर्णिमांत ज्येष्ठ) वदि १० (ई० स० १५३३ ता० १८ मई) रविवार का लेख।

(ग) नांदिया गांव का वि० सं० १५९० (ई० स० १५३३) का लेख।

(घ) नांदिया गांव के वि० सं० १५९१ (ई० स० १५३४) के दो लेख।

(ङ) गोवाड़ी गांव के लक्ष्मीनारायण के मंदिर के पास की शिला पर कुंवर आसकरण के समय का वि० सं० १५९२ श्रावण सुदि १३ (ई० स० १५३५ ता० १२ जुलाई) का लेख।

पृथ्वीराज के समय के शिलालेख

का और अन्तिम[ज] वि० सं० १६०४ शाके १४६९ आषाढ़ सुदि १५ (ई० स० १५४७ ता० २ जुलाई) शनिवार का है। इससे जान पड़ता है कि इस संवत् तक वह विद्यमान था। उसके उत्तराधिकारी आसकरण के समय का सबसे पहला लेख वि० सं० १६०७ के फाल्गुन मास (ई० स० १५५१) का है, जिससे ज्ञात होता है कि पृथ्वीराज की मृत्यु वि० सं० १६०४ और १६०७ के बीच किसी वर्ष हुई होगी[1]। पृथ्वीराज के खिताब रायरायां[2] और महारावल मिलते हैं।

आसकरण

वि० सं० १६०६ (ई० स० १५४९) के आसपास महारावल आसकरण डूंगरपुर राज्य का स्वामी हुआ।

शेरशाह सूर से बादशाह हुमायूं की पराजय की सूचना पाकर

(च) भीलूड़ा गांव में रघुनाथजी की मूर्ति के नीचे वि० सं० १५९७ (अमांत) माघ (पूर्णिमांत फाल्गुन) वदि १३ (ई० स० १५४१ ता० २४ जनवरी) सोमवार का लेख।

(छ) गोवाड़ी गांव के लक्ष्मीनारायणजी के मंदिर के पास का वि० सं० १६०० भाद्रपद सुदि ७ (ई० स० १५४३ ता० ५ सितम्बर) बुधवार का लेख।

(ज) दोवड़ा गांव का वि० सं० १६०४, शाके १४६९ आषाढ़ सुदि १५ (ई० स० १५४७ ता० २ जुलाई) शनिवार का लेख।

(१) भिन्न भिन्न ख्यातों में पृथ्वीराज की मृत्यु और आसकरण की गद्दीनशीनी के संवत् १५८६, १५९३ और १५९६ मिलते हैं जो विश्वास के योग्य नहीं हैं, क्योंकि दोवड़ा गांव से मिले हुए शिलालेख से वि० सं० १६०४ (ई० स० १५४७) तक उसका विद्यमान होना निश्चित है—

संवत् १६०४ शाके १४६९ प्रवर्त्तमाने दक्षिणायने आषाढसुदि १५ शनौ गिरिपुरे महाराजाधिराजराउलश्रीपृथ्वीराजविजयराज्ये .... ।

मूल लेख से।

(२) वागड़ के पुराने राजाओं के लेखों में उनके खिताब 'महाराजाधिराज' और 'महारावल' (महाराजकुल) मिलते हैं। रायरायां का खिताब पहले पहल गंगदास के समय के देवसोमनाथ के मंदिर के वि० सं० १५४८ (ई० स० १४९२) के शिलालेख में पाया जाता है।

मल्लूखां, जो खिलजियों का ग़ुलाम और मालवे का सूबेदार था, सुलतान क़ादिर के नाम से मालवे का स्वामी बन गया। वि० सं० १६०० (ई० स० १५४३) में शेरशाह ने मालवे पर अधिकार कर शुजाअ़खां को वहां का हाकिम बनाया। शेरशाह के पुत्र इस्लामशाह (सलीमशाह) के समय शुजाअ़खां उस(इस्लामशाह)-के पास गया, परन्तु वहां से अप्रसन्न होकर लौटने पर वह मालवे का स्वामी बन बैठा। इससे इस्लामशाह ने उसपर चढ़ाई की तो उस(शुजा-अ़खां)ने भागकर डूंगरपुर के स्वामी (आसकरण) के यहां शरण ली[1]।

मालवे के सुलतान शुजाअ़खां को शरण देना

वनेश्वर महादेव के पास के विष्णु-मन्दिर की (आषाढ़ादि) वि० सं० १६१७ (चैत्रादि १६१८) शाके १४८३ ज्येष्ठ सुदि ३ की महारावल आसकरण के समय की प्रशस्ति में लिखा है—"पृथ्वीराज के पुत्र संपत्तिशाली आसकरण के सेवकों ने मेवाड़ के राजा को जीता[2]"। यह कथन कहां तक ठीक है, कहा नहीं जा सकता, परंतु यह चढ़ाई महारावल आसकरण के समय वि० सं० १६१३ (ई० स० १५५७) के पहले किसी समय हुई होगी। वि० सं० १५९७ से १६२८ (ई० स० १५४० से १५७२) तक मेवाड़ में महाराणा उदयसिंह ने शासन किया। इसलिए यह घटना उसके समय की होनी चाहिये। मेवाड़ की ख्यातों और शिलालेखों में इस घटना का कहीं भी उल्लेख

मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह का डूंगरपुर पर सेना भेजना

---

(१) बेवरिज; मआसिरुल्-उमरा का अंग्रेज़ी अनुवाद, पृ० ३६४।

(२) पृथ्वीराजात्मजो योसावाशाकर्णः श्रियान्वितः ॥
यस्य किंकरवर्गेण मेदपाटपतिर्जितः ॥ १९ ॥
मूल लेख की छाप से। वीरविनोद, भाग २, पृ० ११६०।

मुंहणोत नैणसी की ख्यात में लिखा है कि आमेरवालों का पूर्वज रावत जग्गा माही नदी के किनारे काम आया (नैणसी की ख्यात, भाग १, पृ० ३५)। रावत जग्गा सुप्रसिद्ध रावत पत्ता का पिता था, जो महाराणा उदयसिंह (दूसरे) को गद्दी पर बिठाने में सहायक था। संभव है कि महाराणा उदयसिंह ने डूंगरपुर पर जो सेना भेजी उसका मुखिया रावत जग्गा बनाया गया हो और वह उक्त लड़ाई में आसकरण के सरदारों से लड़कर काम आया हो।

नहीं है, परन्तु वीरविनोद के ग्यारहवें प्रकरण के शेष-संग्रह संख्या ५ में धनेश्वर की प्रशस्ति छपी है, जिसमें इस घटना के संबन्ध का श्लोक उद्धृत है। यही संभव हो सकता है कि महाराणा उदयसिंह को लेकर धाय पन्ना प्रतापगढ़ से डूंगरपुर पहुंची, उस समय महारावल पृथ्वीराज ने उसे जैसी सहायता देनी चाहिये थी वैसी न दी, जिससे राज्य पाने के पश्चात् उदयसिंह ने डूंगरपुर पर सेना भेजी हो।

मालवे के सुलतान बाज़बहादुर का डूंगरपुर में आकर रहना

शुजाअ़ख़ां ने डूंगरपुर से लौटकर फिर मालवे पर अधिकार कर लिया और हि० स० ९६३ (ई० स० १५५५=वि० सं० १६१२) में उसकी मृत्यु होने पर उसका पुत्र बायज़ीद बाज़बहादुर नाम धारण कर मालवे का सुलतान बन गया, परन्तु वह गढ़कटंगा के युद्ध में राणी दुर्गावती से बुरी तरह परास्त होकर बड़ी कठिनाई से सारंगपुर पहुंचा। तत्पश्चात् वह रूपमती के इश्क में इतना फँस गया कि उसे राजकाज की कोई सुध न रही। उसकी यह दशा सुनकर बादशाह अकबर ने वि० सं० १६१८ (ई० स० १५६१) में मालवे पर अहमदख़ां कोका को भेजा, जिससे कुछ देर लड़कर बाज़बहादुर भाग गया, परन्तु वि० सं० १६१९ (ई० स० १५६२) में उसने फिर मालवे पर अपना अधिकार कर लिया। वि० सं० १६२१ (ई० स० १५६४) में बादशाह ने अब्दुल्लाख़ां उज़बक को ससैन्य मालवे पर भेजा। उसने बाज़बहादुर को भगा दिया, जिससे वह इधर-उधर मारा-मारा फिरने लगा और महाराणा उदयसिंह के पास चित्तोड़ में जा रहा। फिर वह डूंगरपुर के स्वामी (आसकरण) के यहां जाकर रहने लगा[1]। बादशाह ने बाज़बहादुर की दुर्दशा का हाल सुनकर उसे लाने के लिए वि० सं० १६२१ (ई० स० १५६४) में हसनख़ां ख़ज़ानची, पायंदाख़ां पचभैया और ख़ुदाबर्दीबेग को मिहरबानी का फ़रमान देकर भेजा, किन्तु किसी नाज़िर के बहकाने से स्वयं बादशाह के पास उपस्थित न होकर उसने क्षमा के लिए प्रार्थना-पत्र लिख भेजा। वि० सं० १६२७ (ई० स० १५७०) में बादशाह ने

(१) नागरीप्रचारिणीपत्रिका (नवीन संस्करण), भाग ३, पृ० १७२-७४।

फिर हसनखां खज़ानची को उस(बाज़बहादुर)को लाने के लिए भेजा, तब उसने बादशाह की सेवा में उपस्थित होकर अधीनता स्वीकार कर ली।

दिल्ली के बादशाह शेरशाह सूर का गुलाम हाजीखां उसका एक सेनापति था। अकबर के गद्दी बैठने के समय उसका मेवात (अलवर) पर अधिकार था। वहां से उसे निकालने के लिए बादशाह अकबर ने पीर मुहम्मद सरवानी (नासिरुल-मुल्क) को उसपर भेजा। उसके पहुंचने के पहले ही वह भागकर अजमेर चला गया। मारवाड़ के राव मालदेव ने उसे लूटने के लिए पृथ्वीराज जैतावत को भेजा। हाजीखां ने महाराणा उदयसिंह के पास अपने दूत भेजकर कहलाया कि मालदेव हमसे लड़ना चाहता है, आप हमारी सहायता करें। इसपर महाराणा उसकी सहायतार्थ चढ़ा, तब सब राठोड़ों ने मालदेव के सरदार पृथ्वीराज[1] जैतावत को समझाया कि शेरशाह के साथ के युद्ध में अच्छे अच्छे सरदार पहले ही काम आ चुके हैं, फिर हम सब युद्ध में मारे गये तो राव का बल घट जायगा। इसपर पृथ्वीराज ने महाराणा से युद्ध करना ठीक न समझा और वह लौट गया।

हाजीखां के साथ की लड़ाई में महाराणा उदयसिंह के पक्ष में आसकरण का लड़ना

इस सहायता के बदले में महाराणा ने हाजीखां से ४० मन सोना, कुछ हाथी तथा उसकी प्रेयसी रंगराय पातुर (वेश्या) को मांगा। हाजीखां ने चालीस मन सोना और हाथी देना तो स्वीकार कर लिया, परंतु रंगराय को देने से वह इन्कार हो गया। इसपर महाराणा ने उसपर चढ़ाई कर दी तो हाजीखां ने जोधपुर के राव मालदेव को अपना सहायक बनाया। उस समय महाराणा के साथ राव कल्याणमल (बीकानेरी), महारावल प्रतापसिंह (बांसवाड़े का), राव जयमल मेड़तिया, रावल आसकरण[2] (डूंगर-

(१) मारवाड़ के राव रणमल का प्रपौत्र, अखेराज का पौत्र और पंचायण का पुत्र जेता था, जिससे जैतावत शाखा चली। उक्त जेता का पुत्र राठोड़ पृथ्वीराज था। मारवाड़ के जेतावतों में बगड़ी का ठिकाना मुख्य है।

(२) कविराजा बांकीदास; ऐतिहासिक बातें, सं० १२६६। मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा उदयसिंहजी का जीवनचरित्र, पृ० ६३।

पुर का), राव सुरजन हाड़ा (बूंदी का), राव दुर्गा (रामपुरे का) आदि थे। वि० सं० १६१३ फाल्गुन वदि ६ (ई० स० १५५७ ता० २४ जनवरी) को हरमाड़ा गांव (अजमेर ज़िला) के पास हाजीख़ां से युद्ध हुआ, जिसमें महाराणा के कई सरदार आदि मारे गये[1]।

आंबेर के कुंवर मानसिंह की चढ़ाई

बादशाह अकबर ने गुजरात विजय कर लिया था, परंतु कुछ समय के पश्चात् वहां मिर्ज़ा मुहम्मदहुसेन और सरदार इख्तियारुल्मुल्क की अध्यक्षता में विद्रोह हो गया, जिसकी सूचना पाकर बादशाह को शीघ्र ही उधर जाना पड़ा। वहां शांति स्थापित कर अपनी राजधानी को लौटते समय और कुंवर मानसिंह को बहुतसी सेना के साथ उसने डूंगरपुर तथा उदयपुर की तरफ़ भेजा और उसको यह आज्ञा दी कि जो हमारी अधीनता स्वीकार करे, उसका सम्मान करना और जो ऐसा न करे उसे दंड देना। वि० सं० १६३० (ई० स० १५७३) में कुंवर मानसिंह शाही सेना के साथ डूंगरपुर पहुंचा। आसकरण ने उससे युद्ध किया, जिसमें उसके भाई अखैराज के दो पुत्र—बाघा और दुर्गा—मारे गये[2]। अन्त में आसकरण ने पहाड़ों की शरण ली और मानसिंह डूंगरपुर के इलाक़े को लूटता हुआ उदयपुर गया[3]। तब आसकरण पीछा अपनी राजधानी में जा रहा।

आसकरण का बादशाह अकबर की अधीनता स्वीकार करना

हल्दीघाटी की लड़ाई में मानसिंह महाराणा प्रतापसिंह को अधीन न कर सका और बादशाही सेना की दुर्दशा हुई, जिससे बादशाह ने उसकी और आसफ़ख़ां की ड्योढ़ी बन्द कर दी। फिर ईडर के राव नारायणदास और सिरोही के राव सुरताण आदि को मिलाकर महाराणा अर्वली पहाड़ के

---

(१) म० म० कविराजा श्यामलदास; वीरविनोद, भाग २, पृ० ७१—७२। मेरा राजपूताने का इतिहास जि० २, पृ० ७१६—२०। मुंहणोत नैणसी की ख्यात (हस्तलिखित) पत्र १४।

(२) वि० सं० १६४३ की डूंगरपुर की नौलखा बावड़ी की प्रशस्ति।

(३) मेरा राजपूताने का इतिहास, जिल्द २, पृ० ७३८।

दोनों तरफ़ का शाही मुल्क लूटने लगा और गुजरात के शाही थानों पर भी उसने हमला शुरू कर दिया। तब बादशाह ने सोचा कि जो काम मैं स्वयं कर सकता हूं वह मेरे नौकरों से नहीं हो सकता। इस विचार से वह स्वयं वि० सं० १६३३ कार्तिक वदि ६ (ई० स० १५७६ ता० १३ अक्टोबर) को अजमेर से गोगूंदे को रवाना हुआ तो महाराणा पहले से ही पहाड़ों में चला गया। बादशाह मेवाड़ में गोगूंदा आदि स्थानों में क़रीब छः मास तक रहा, परन्तु महाराणा को अधीन न कर सका। जहां जहां शाही फ़ौजें गईं, वहां वहां उनकी क्षति हुई, इसलिए वह (बादशाह) बांसवाड़े चला गया[1]। वहां का रावल प्रताप और डूंगरपुर का रावल आसकरण बादशाह की प्रबलता देख उसके पास उपस्थित हुए और उन्होंने शाही सेवा स्वीकार कर ली[2]।

महाराणा की डूंगरपुर पर चढ़ाई

अपने ही वंश के डूंगरपुर और बांसवाड़ा के राजाओं ने शाही अधीनता स्वीकार कर ली, यह समाचार सुनकर महाराणा प्रतापसिंह बहुत क्रुद्ध हुआ और उनको अपने आधिपत्य में रखने के लिए उसने वि० सं० १६३५ (ई० स० १५७८) के आसपास डूंगरपुर और बांसवाड़े पर रावत भाण सारंगदेवोत (कानोड़वालों का पूर्वज) को सेना के साथ भेजा। सोम नदी पर लड़ाई हुई, जिसमें महाराणा की फ़ौज का मुखिया रावत भाण बुरी तरह से घायल हुआ[3] और दोनों तरफ़ के बहुत से आदमी खेत रहे। इस लड़ाई में बागड़िये चौहानों ने बड़ी वीरता दिखलाई थी।

आसकरण के यहां जोधपुर के राव चन्द्रसेन का रहना

मारवाड़ के राव मालदेव के कई पुत्र थे, जिनमें सबसे बड़ा राम था। उसको मालदेव ने अपने राज्य से निकाल दिया, जिससे वह महाराणा उदयसिंह के पास चला गया। वहां उसे केलवे की जागीर मिली। मालदेव ने अपने दूसरे पुत्र उदयसिंह को फलोदी की जागीर देकर तीसरे पुत्र चन्द्रसेन को अपनी

(१) मेरा राजपूताने का इतिहास; जिल्द २, पृ० ७५७।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा पृ० ८६। वीरविनोद; भाग २, पृ० १००७।

(३) मेरा राजपूताने का इतिहास, जि० १, पृ० ७६१।

प्रेयसी राणी स्वरूपदे झाली के आग्रह से अपना उत्तराधिकारी नियत किया। वि० सं० १६१९ (ई० स० १५६२) में मालदेव की मृत्यु होने पर चन्द्रसेन जोधपुर की गद्दी पर बैठा। उसने अपने अनुचित व्यवहार से कुछ सरदारों को अप्रसन्न कर दिया तो उन्होंने राम, उदयसिंह और रायमल को (जो मालदेव का चौथा पुत्र था) जोधपुर की गद्दी लेने के लिए उकसाया। राम ने केलवे से चढ़कर सोजत को लूटा और रायमल ने दूनाड़े पर आक्रमण किया। उदयसिंह ने लांगड़ को लूटा। उस समय चन्द्रसेन ने अपनी सेना भेजकर राम और रायमल को परास्त किया। फिर वह उदयसिंह पर चढ़ा। लोहावट के पास के युद्ध में वे दोनों एक दूसरे के हाथ से घायल हुए।

उस समय तक आंबेर के सिवा राजपूताने के किसी हिन्दू-राजा ने शाही सेवा स्वीकार नहीं की थी। बादशाह अकबर के हृदय में राजपूताने के राजाओं को अपने अधीन करने की उत्कट लालसा लग रही थी और जोध-पुरवालों से तो वह अप्रसन्न ही था, क्योंकि उसके पिता हुमायूं को शेरशाह-द्वारा राज्यच्युत होने के बाद राव मालदेव ने सहायता देने की बात कह-कर मारवाड़ में बुलाया था, परन्तु उसके साथ कपट की शंका होने पर उस (हुमायूं) को बड़ी आपत्ति के साथ सिंध को जाना पड़ा था।

चन्द्रसेन की सेना से पराजित होकर राम बादशाह अकबर के पास पहुंचा और वि० सं० १६२० (ई० स० १५६३) में शाही सेना को जोधपुर पर चढ़ा लाया। अन्त में चन्द्रसेन ने राम को सोजत का परगना और शाही सेनाध्यक्ष को पांच लाख रुपये फौजख़र्च देना स्वीकार किया, तब शाही सेना लौटी, पर यह शर्त पूरी न होने के कारण वि० सं० १६२१ (ई० स० १५६४) में फिर शाही सेना ने जोधपुर को घेर लिया। कुछ महीनों तक लड़ाई करने के पश्चात् चन्द्रसेन तंग होने पर जोधपुर का क़िला छोड़कर भाद्रा-जूण चला गया और जोधपुर पर शाही अधिकार हो गया[1]। जोधपुर छूटने पर चन्द्रसेन की आर्थिक स्थिति बिगड़ने लगी और वह अपने रत्न आदि

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात (हस्तलिखित), जिल्द १, पृ० ८७।

बेचकर अपना और अपने साथ के राजपूतों का खर्च चलाने लगा। उसने राव मालदेव का संग्रह किया हुआ एक लाल, जिसका मूल्य साठ हज़ार रुपये कूंता गया था, मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह को भी बेचा[१] था।

वि० सं० १६२७ (ई० स० १५७०) में बादशाह नागोर आया, उस समय जोधपुर की गद्दी के हक़दार राम और उदयसिंह बादशाह के पास गये तो राव चन्द्रसेन भी पुनः राज्य पाने की आशा से अपने पुत्र रायसिंह सहित बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ, परन्तु राज्य पीछा मिलने की कोई आशा न देख कुछ दिनों बाद वह अपने पुत्र को बादशाही सेवा में छोड़कर भाद्राजूण लौट गया। शाही फौज ने वहां से भी उसे निकाल दिया तो वह सिवाणे के क़िले में जा रहा[२]। वहां भी वि० सं० १६३२ (ई० स० १५७५) में शाही सेना ने उसे जा घेरा। कई महीनों तक वह लड़ता रहा और उसने क़िले पर शाही अधिकार न होने दिया, किन्तु जब बादशाह ने और अधिक सेना भेजी तब वह क़िला छोड़कर पीपलूंद के पहाड़ों में चला गया। वहां से वह पहाड़ी प्रदेश के काणूजे गांव में जा रहा। वहां रहते समय उसने आसरलाई के ऊदावतों को गांव खाली कर अपने पास पहाड़ों में आ रहने को कहा, परन्तु उन्होंने उसके कथन की अवहेलना की, जिससे उसने आसरलाई पर छापा मारा। इस समय उसकी आर्थिक दशा और भी बिगड़ी हुई थी, जिससे उसने जोधपुर राज्य के धनिक महाजनों को पकड़कर उनसे रुपये लेना चाहा[३]। तब उन लोगों ने मिलकर बादशाह के पास अपनी फ़रियाद पहुंचाई। इधर शाही सेना उसका पता लगाने के लिए फिर रही थी, जिसकी खबर पाते ही वह सकुटुम्ब सिरोही राज्य में चला गया और डेढ़ वर्ष वहां रहा। शाही सेनाध्यक्ष को उसके वहां रहने का

(१) मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा, पृ० २०९। बेवरिज; तुज़ुके जहांगिरी का अंग्रेज़ी अनुवाद, जि० १, पृ० २८५।

(२) बेवरिज; अकबरनामे का अंग्रेज़ी अनुवाद, जि० ३, पृ० ११३।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात, जिल्द १, पृ० ११८।

पता लग जाने से वह वहां से अपने बहनोई[1] रावल आसकरण के पास डूंगरपुर चला गया और कुछ महीने वहां रहा। इतने में बादशाही फ़ौज डूंगरपुर राज्य के निकटवर्ती मेवाड़ के पहाड़ी प्रदेश में पहुंच गई, जिससे वह डूंगरपुर छोड़कर बांसवाड़े चला गया। वहां के रावल प्रतापसिंह ने निर्वाह के लिए तीन चार गांव देकर उसे अपने यहां रक्खा[2]।

आसकरण का बांसवाड़े के स्वामी प्रतापसिंह से युद्ध

प्रतापगढ़ के स्वामी हरिसिंह की प्रशंसा में वि० सं० १६९० (ई०स० १६३३) के लगभग गंगाराम कवि ने 'हरिभूषण' काव्य रचा। उसमें लिखा है कि डूंगरपुर के स्वामी आसकरण और बांसवाड़े के राजा प्रतापसिंह के बीच युद्ध हुआ। उस समय प्रतापगढ़ का स्वामी रावत बीका प्रतापसिंह की सहायतार्थ गया था। माही नदी के तट पर दोनों दलों में युद्ध हुआ, जिसमें प्रतापसिंह की विजय हुई[3]। इस युद्ध के विषय में डूंगरपुर और बांसवाड़े की ख्यातों में कुछ भी नहीं लिखा मिलता।

(१) जोधपुर के राव मालदेव की पुत्री पोहपावती (पुष्पावती) का विवाह डूंगरपुर के स्वामी आसकरण के साथ हुआ था। जोधपुर राज्य की ख्यात; जिल्द १, पृ० ११९–२०।

(२) वहीं; जि० १, पृ० १२०। थोड़े दिन बांसवाड़े में रहकर चन्द्रसेन महाराणा प्रतापसिंह के अधीनस्थ भोमट नामक पहाड़ी प्रदेश में कोटड़े गांव चला गया और एक या डेढ़ वर्ष वहां रहा। वहीं महाराणा प्रतापसिंह भी उससे मिला था। फिर वह पीछा मारवाड़ में चला गया और सिचियायी की गाळ में रहने लगा, जहां वि० सं० १६३७ माघ सुदि ७ (ई० स० १५८१ ता० ११ जनवरी) को उसकी मृत्यु होना माना जाता है। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ९०।

(३) अभूदथ क्षत्रकुलाभिमानी वीकाभिधेयः किल तस्य सूनुः।
यत्खड्गधाराऽभिहतोऽरिवर्गो महीतटे खेलति भूतवर्गैः॥ १॥
पुरासकर्णः किल रावलोऽभूत्प्रतापसिंहेन युयोध यत्र।
वंशालयाधीश्वरधर्मबन्धुः समागतो देवगिरेर्महीशः॥ ३॥
महाहवं तत्र तयोर्बभूव महीतटेषु प्रसभं समेषु।
परस्परं प्रासफलैः प्रजघ्नुश्चौहानभूपारणगीतगीताः॥ ४॥

बांसवाड़ा राज्य के संस्थापक महारावल जगमाल के दो पुत्र—किशनसिंह[1] (बड़ा) और जयसिंह (छोटा)—थे। जगमाल का उत्तराधिकारी उसका छोटा पुत्र जयसिंह और उसके पीछे उसका पुत्र प्रतापसिंह राजा हुआ, जिससे असली हक़दार—किशनसिंह और उसका पुत्र कल्याणमल—राज्य से वंचित रहे। इस दशा में संभवतः डूंगरपुर के स्वामी आसकरण ने असली हक़दार को राज्य दिलाने के लिए उसका पक्ष लेकर यह लड़ाई ठानी हो। इस घटना का निश्चित संवत् अभी तक अज्ञात है।

महारावल आसकरण की उदारता के सम्बन्ध में बहुतसी जनश्रुतियां प्रचलित हैं। उसके ८४ मन सोना ब्राह्मणों आदि को बांटने की कथा भी ख्यातों में लिखी है, पर उसपर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता, तो भी यह अवश्य कह सकते हैं कि आसकरण बड़ा उदार था। उसने स्वयं स्वर्ण का तुलादान[2] किया। विष्णु-मन्दिर की प्रतिष्ठा के समय (आ०) वि० सं० १६१७ (ई० स० १५६१) में उसने अपनी माता को स्वर्ण की तुला कराई[3]। उसके भाई अखैराज ने स्वर्ण का तुलादान किया,[4] जिसका उल्लेख वहां के शिलालेखों में मिलता है। उसने अपने चौहान सरदार अखैराज को पीठ की जागीर दी। सोम और माही नदी

आसकरण के मुख्य कार्य

रणस्थलीभूपतिरासकर्णस्तत्याज वीकाभुजदण्डभीरुः।
चलत्किरीटः स्फुरदश्ववारश्चौहानवर्गोऽभिमुखीबभूव ॥ १४ ॥
क्षेत्रं प्रतापाय ददौ प्रतापो वीकाभुजादण्डलसत्प्रतापः।
इत्युक्तवान् सन्निहितः स्ववर्गो मह्याः परं पारमुपाससाद ॥२०॥

हरिभूषण काव्य; छठा सर्ग।

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; (हस्तलिखित) पत्र २१, पृ० १।

(२) डूंगरपुर की नौलखा बावड़ी की वि० सं० १६४३ (चै० १६४४) की प्रशस्ति।

(३) तुलापुरुषदानस्य हेमसंपादितस्य च।
गोसहस्रादिदानानां दात्री पात्रजनस्य या ॥ १३ ॥

डूंगरपुर के वनेश्वर महादेव के समीपवर्ती विष्णु-मंदिर की प्रशस्ति।

(४) डूंगरपुर की नौलखा बावड़ी की वि० सं० १६४३ (चै० १६४४) की प्रशस्ति।

के संगम पर उसने बेणेश्वर का शिवालय और डूंगरपुर में चतुर्भुजजी का विष्णु-मन्दिर बनवाया। उसी ने अपने नाम पर आसपुर बसाया, जो उक्त ज़िले का मुख्य स्थान है। उसके राजत्व-काल में डूंगरपुर राज्य की प्रजा सम्पन्न थी, जिससे वहां स्थान-स्थान पर अनेक देवालय बने।

आसकरण के शिलालेख और उसकी मृत्यु

महारावल आसकरण के समय के वि० सं० १६०७ से १६३६ फाल्गुन सुदि ४ (ई० स० १५८० ता० १९ फरवरी) तक के १३ लेख मिले हैं[1], जिनसे विदित होता है कि वह वि० सं० १६३६ (ई० स० १५८०) तक विद्यमान था। उसके पुत्र सैंसमल्ल का सबसे पहला लेख वि० सं० १६३७ फाल्गुन सुदि १० (ई० स० १५८१ ता० १३ फ़रवरी) का मिला है, जिससे पाया जाता है कि वि० सं० १६३७ में उसका देहान्त हुआ हो।

(१) उपर्युक्त शिलालेखों का विवरण नीचे लिखे अनुसार है—

(क) डूंगरपुर के हाटकेश्वर महादेव के मंदिर का वि० सं० १६०७ फाल्गुन ···दि ६ (ई० स० १५५१) का लेख।

(ख) बांदरवेड़ गांव का वि० सं० १६११ भाद्रपद सुदि १० (ई० स० १५५४ ता० ६ सितम्बर) गुरुवार का लेख।

(ग) डूंगरपुर के बनेश्वर के पास के विष्णु-मंदिर का आषाढ़ादि वि० सं० १६१७ (चैत्रादि १६१८) शाके १४८३ ज्येष्ठ सुदि ३ (ई० स० १५६१ ता० १७ मई) का लेख।

(घ) आसपुर गांव की बावड़ी का वि० सं० १६१९ (अमांत) माघ वदि (पूर्णिमांत फाल्गुन वदि) १३ (ई० स० १५६३ ता० २० फरवरी) का लेख।

(ङ) सागवाड़े में चिंतामणि नामक मंदिर का वि० सं० १६२२ (?१६२३) शाके १४८८ माघ सुदि १३ (ई० स० १५६७ ता० २४ जनवरी) शुक्रवार का लेख।

(च) डेसो गांव के सारणेश्वर महादेव के मंदिर का आषाढ़ादि वि० सं० १६२३ (चैत्रादि १६२४) शाके १४८८ (?१४८९) (अमांत) वैशाख वदि १ (पूर्णिमांत ज्येष्ठ वदि १ = ई० स० १५६७ ता० २४ अप्रेल) गुरुवार अनुराधा नक्षत्र का लेख।

(छ) डूंगरपुर के जागेश्वर महादेव की वि० सं० १६२४ मार्गशीर्ष सुदि ५ (ई० स० १५६७ ता० ६ नवम्बर) गुरुवार की प्रशस्ति। उक्त मंदिर में वि० सं० १६३४ शाके १४९९ की एक और प्रशस्ति है, जिसमें उक्त मंदिर के निर्माता मंत्री जगमाल खडायता का वंश-वर्णन है।

महारावल आसकरण के २१ राणियां थीं, उनमें से चौहानवंश की प्रेमलदेवी (पीहर का नाम तारादेवी) पटराणी थी। उसके गर्भ से महारावल सैंसमल का जन्म हुआ। राणी प्रेमलदेवी ने डूंगरपुर में नौलखा नाम की बावड़ी बनवाकर (आषाढ़ादि) वि० सं० १६४३ (चैत्रादि वि० सं० १६४४) वैशाख सुदि ५ को उसकी प्रतिष्ठा की, उस समय उसका पुत्र सैंसमल डूंगरपुर का स्वामी था। वहां की विशाल-प्रशस्ति में डूंगरपुर के राजवंश के अतिरिक्त महारावल आसकरण की अन्य राणियों, सैंसमल की राणियों और उसके कुंवर, कुंवरियों आदि के नामों के अतिरिक्त महारावल आसकरण की तीन कुंवरियों—रमाबाई, गोरबाई और कमलावतीबाई—के नाम भी दिये हैं[1]।

आसकरण की राणियां और संतति

महारावल आसकरण बड़ा उदार, वीर, वैभवसंपन्न और सुयोग्य शासक था। एक विशाल राज्य का स्वामी न होने पर भी उसने कई सुलतानों को अपने यहां आश्रय[2] दिया। उसके समय में प्रजा सुखी थी। वह स्वातंत्र्य-प्रिय था, जिससे शाही सेना के आने पर उसने यथासाध्य अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए चेष्टा की। अन्त में अकबर जैसे प्रबल बादशाह की चढ़ाई होने से उसे विवश होकर अधीनता स्वीकार करनी पड़ी, जिससे वह महाराणा प्रतापसिंह का कोप-भाजन हुआ, परन्तु बादशाही सेना में रहकर वह कहीं लड़ने नहीं गया।

आसकरण का व्यक्तित्व

(ज) गोवाड़ी गांव के महावीर के मंदिर का वि० सं० १६२४ माघ सुदि ३ (ई० स० १५६८ ता० २ जनवरी) शुक्रवार का लेख।

(झ) गलियाकोट का वि० सं० १६३२ (ई० स० १५७५) का लेख।

(ञ) सागवाड़े के चिंतामणि पार्श्वनाथ के मंदिर की (आषाढ़ादि) वि० सं० १६३५ (चैत्रादि १६३६) शाके १५०१ (अमांत) वैशाख वदि ११ (पूर्णिमांत ज्येष्ठ वदि ११=ई० स० १५७९ ता० २१ मई) की प्रशस्ति।

(ट) भीलूड़ा गांव के रघुनाथजी के मंदिर का वि० सं० १६३६ फाल्गुन सुदि ५ (ई० स० १५८० ता० १९ फरवरी) का लेख।

(१) डूंगरपुर की नौलखा बावड़ी की वि० सं० १६४३ की प्रशस्ति।

(२) वही।

वह विद्यारसिक और नीतिनिपुण नरेश था। इधर बादशाह और उधर मेवाड़वालों का दबाव होने पर भी वह समयोचित नीति के अनुसार अपने राज्य की रक्षा करता रहा। खड़ायता जाति का महाजन जगमाल उसका प्रधान मन्त्री[1] था।

सैंसमल (सहस्रमल्ल)

महारावल सैंसमल का नाम संस्कृत लेखों में 'सहस्रमल्ल' मिलता है। वह वि० सं० १६३७ (ई० स० १५८०) में डूंगरपुर का स्वामी हुआ।

बांसवाड़े के चौहानों से लड़ाई

बांसवाड़े के स्वामी प्रतापसिंह की मृत्यु होने पर उसका पुत्र मानसिंह वहां का स्वामी हुआ। उसे खांधू के मुखिया भील ने मार डाला तो उस(मानसिंह)का सरदार चौहानवंशी मान बलात् वहां का स्वामी बन बैठा, क्योंकि उस समय बांसवाड़े में चौहानों का बड़ा ज़ोर था और वह (मानसिंह) किसी की परवाह नहीं करता था। इसपर महारावल सैंसमल ने मान चौहान को कहलाया—'तू बांसवाड़े का मालिक होनेवाला कौन है'? परन्तु उसने उसकी कुछ भी परवाह न की, जिससे सैंसमल उसपर सेना लेकर चढ़ा, परन्तु लड़ाई में सफल न हो सका[2]।

उसके समय के सत्रह[3] शिलालेख मिले हैं, जिनमें सबसे पहला

(१) वि० सं० १६२४ की डूंगरपुर के जागेश्वर महादेव की प्रशस्ति।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात (काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा-द्वारा प्रकाशित); प्रथम भाग, पृ० १०।

(३) इन शिलालेखों का विवरण निम्नलिखित है—

(क) गलियाकोट के वासुपूज्य के मंदिर की वि० सं० १६३७ फाल्गुन सुदि १० (ई० स० १५८१ ता० १३ फरवरी) सोमवार की प्रशस्ति।

(ख) पाल बलवाड़े के शिव-मंदिर की वि० सं० १६३८ शाके १५०३ माघ सुदि १३ (ई० स० १५८२ ता० ५ फरवरी) सोमवार, पुष्य नक्षत्र की प्रशस्ति।

(ग) डूंगरपुर की नौलखा बावड़ी की (आषाढ़ादि) वि० सं० १६४३ (चैत्रादि वि० सं० १६४४) वैशाख सुदि ५ (ई० स० १५८७ ता० ३ अप्रेल) की विशाल

वि० सं० १६३७ फाल्गुन सुदि १० (ई० स० १५८१ ता० १३ फरवरी) सोमवार का और अन्तिम वि० सं० १६६२ माघ सुदि १३ (ई० स० १६०६ ता० १२ जनवरी) का है । उसके पुत्र कर्मसिंह के राज्य-समय का सबसे पहला शिलालेख (आषाढ़ादि) वि० सं० १६६५ (चैत्रादि १६६६) (अमांत) चैत्र वदि ५ (पूर्णिमांत वैशाख वदि ५ = ई० स० १६०६ ता० १३ अप्रेल) गुरुवार का है । इनसे ज्ञात होता है कि सैंसमल की मृत्यु वि० सं० १६६२ और १६६६ के बीच किसी समय हुई होगी ।

सैंसमल के समय के शिलालेख और उसका देहान्त

प्रशस्ति । इस प्रशस्ति में उक्त बावड़ी को बनानेवाली महारावल आसकरण की राणी प्रेमलदेवी (पीहर का नाम ताराबाई) की आबू, द्वारिका और एकलिङ्गजी आदि की यात्रा का भी उल्लेख है । यह प्रशस्ति वागड़ के चौहानों के इतिहास के लिए भी उपयोगी है, क्योंकि इसमें चौहान लाखण से लगाकर उक्त संवत् तक वंशावली दी गई है ।

(घ) बड़ा ओड़ा गांव की आषाढ़ादि वि० सं० १६४४ (चैत्रादि वि० सं० १६४५) वैशाख सुदि ५ (ई० स० १५८८ ता० २१ अप्रेल) रविवार की प्रशस्ति ।

(ङ) देवसोमनाथ के मंदिर का वि० सं० १६४५ पौष सुदि १३ (ई० स० १५८८ ता० २० दिसम्बर) शुक्रवार का लेख ।

(च) डूंगरपुर के वनेश्वर महादेव की (आषाढ़ादि) वि० सं० १६४६ (चैत्रादि वि० सं० १६४७) शाके १५१२ (अमांत) ज्येष्ठ वदि १३ (पूर्णिमांत आषाढ़ वदि १३=ई० स० १५६० ता० १६ जून) शुक्रवार की प्रशस्ति ।

(छ) सूरपुर के माधवराय के मंदिर की आषाढ़ादि वि० सं० १६४७ (चैत्रादि वि० सं० १६४८) ज्येष्ठ सुदि ५ (ई० स० १५६१ ता० १७ मई) सोमवार की बड़ी प्रशस्ति ।

(ज) डूंगरपुर के रामपोल दरवाज़े के पास का वि० सं० १६४८ कार्तिक सुदि १५ (ई० स० १५६१ ता० २२ अक्टूबर) शुक्रवार का लेख ।

(झ) सूरपुर गांव के घाटवाले बड़े मंदिर का वि० सं० १६४६ शाके १५१३ [?१५१४] माघ सुदि ६ (ई० स० १५६३ ता० २८ जनवरी) रविवार, अश्विनी नक्षत्र का लेख ।

(ञ) सूरपुर गांव के घाटवाले बड़े मंदिर की वि० सं० १६४६ शाके १५१३ [?१५१४] (अमांत) माघ वदि २ (पूर्णिमांत फाल्गुन वदि २=ई० स० १५६३ ता० ७ फरवरी) बुधवार, उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र की दो प्रशस्तियां ।

बड़वे की ख्यात में वि० सं० १६६३ आषाढ़ सुदि ७ (ई० स० १६०६ ता० २ जुलाई) को कर्मसिंह का डूंगरपुर की गद्दी पर बैठना लिखा है, अतएव सैंसमल का देहावसान सम्भवतः वि० सं० १६६३ में होना चाहिये।

(आषाढ़ादि) वि० सं० १६४३ (चैत्रादि १६४४) वैशाख सुदि ५ (ई० स० १५८७ ता० ३ अप्रेल) की डूंगरपुर की नौलखा बावड़ी की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि महारावल सैंसमल के अठारह राणियां थीं, जिनमें से चावड़ा वंश की सूर्यदे उसकी मुख्य राणी थी। राणी सुहागदे झाली के गर्भ से कुंवर कर्मसिंह का जन्म हुआ। उक्त लेख में उसके दस कुंवरों—कर्मसिंह, कान्हसिंह, माना, नारायणदास, कल्याणमल, सामंतसिंह, माधवदास, जैतसिंह, विजयसिंह, ईसरदास—और ११ कुंवरियों—मानबाई, भागबाई, लाड़बाई, रामकुंअरबाई, हांसबाई, जसोदाबाई[1], रंभावतीबाई, सवीरांबाई, जसवन्तीबाई, हीराबाई और रुक्मावलीबाई—के नाम दिये हैं। उसके मन्त्री का नाम सिंघा बतलाया है।

सैंसमल की संतति

(ट) सागवाड़े का वि० सं० १६५० फाल्गुन सुदि ५ (ई० स० १५९४ ता० १५ फरवरी) का लेख।

(ठ) डूंगरपुर के धनेश्वर महादेव की (आ०) वि० सं० १६५३ शाके १५१८ (?१५१९) वैशाख सुदि ५ (ई० स० १५९७ ता० ११ अप्रेल) सोमवार मृगशीर्ष नक्षत्र की प्रशस्ति।

(ड) सागवाड़े में चंद्रप्रभु के जिनालय का वि० सं० १६५४ (अमांत) माघ वदि १२ (पूर्णिमांत फाल्गुन वदि १२—ई० स० १५९८ ता० २२ फरवरी) बुधवार का लेख।

(ढ) गांवड़ी के गंगेश्वर के मंदिर का वि० सं० १६६१ माघ सुदि [१] ५ (ई० स० १६०५ ता० २४ जनवरी) गुरुवार का लेख।

(ण) वलवाड़ा गांव का वि० सं० १६६२ माघ सुदि १३ (ई० स० १६०६ ता० १२ जनवरी) का लेख।

(१) जसोदाबाई का विवाह जोधपुर के राजा सूरसिंह से वि० सं० १६४७ जेठ सुदि ६ को डूंगरपुर में हुआ और जगदीश की यात्रा से लौटते समय वि० सं० १६८६ वैशाख सुदि ११ (ई० स० १६२३) को बैजनाथ में उसकी मृत्यु हुई। (जोधपुर राज्य की ख्यात, जि० १, पृ० १४७)।

महारावल सैंसमल विद्यानुरागी, कवि, वीर और शांति-प्रिय शासक था[1]। उसके समय में डूंगरपुर राज्य की आर्थिक दशा अच्छी रही। उसने सूर्यपुर (सूरपुर) गांव में माधवराय का विशाल मंदिर बनवाकर सहस्रों रुपये व्यय किये। उसकी माता प्रेमलदेवी (आसकरण की राणी) ने डूंगरपुर में नौलखा नाम की बावड़ी बनवाई और उसकी प्रतिष्ठा के समय कई बड़े बड़े दान किये। उसके समय में डूंगरपुर राज्य में शान्ति रही। अपने पिता के राजत्वकाल में की हुई संधि के अनुसार उसने मुगल बादशाहत से अपना राजनैतिक संबंध बनाए रक्खा, परंतु वह कभी बादशाही सेवा में नहीं गया। वि० सं० १६५३ (ई० स० १५९७) में मेवाड़ के महाराणा प्रतापसिंह का देहान्त हुआ और उसका पुत्र अमरसिंह मेवाड़ का स्वामी बना। उन दोनों के साथ सैंसमल का संबंध अनुकूल ही रहा, जिससे मेवाड़ की तरफ़ से भी उसपर कोई चढ़ाई नहीं हुई। सैंसमल के इस शान्ति-मय शासन में डूंगरपुर राज्य में कितने ही नये देवालय बने। कई नवीन गांव भी बसे, जिनमें सूरपुर, जो उसकी राणी चावड़ी सूर्यकुंवरी के नाम से बसाया गया था, मुख्य है।

सैंसमल का व्यक्तित्व

कर्णसिंह (दूसरा)

ख्यात के अनुसार वि० सं० १६६३ के आषाढ़ सुदि ७ (ई० स० १६०६ ता० २ जुलाई) को महारावल कर्मसिंह का राज्याभिषेक हुआ।

बांसवाड़े में बागड़िये चौहानों का बड़ा ज़ोर था और वहां के महारावल मानसिंह का देहान्त होने पर उसका चौहान सरदार रावत मान बांसवाड़े

---

(१) राजा राजीवचक्षुः कनकगिरिनिभस्तुल्यकान्तो धरित्र्या
विद्वान् विद्याप्रवीणो विनयनयवतामग्रणीः शौर्यभाजाम्।
मल्लो नाम्ना महात्मा भुवनभवनिधिः सर्वलोकैककान्तो
दाता त्राता विहर्त्ता पवनजवहरो मेध्यवृत्तिर्विविक्तः ॥६३॥

डूंगरपुर के गोवर्धननाथ के मंदिर की प्रशस्ति।

उग्रसेन का बांसवाड़े का राज्य पाना और उसका कर्मसिंह से युद्ध

का स्वामी बन बैठा, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है। अन्त में मान के भाइयों ने उसे सलाह दी कि तेरी बात रह गई, चौहान बांसवाड़े के स्वामी नहीं हो सकते। हम तो इस राज्य के 'भड़किंवाड़' (रक्षक) हैं, इसलिए यही उचित है कि जगमाल के वंश के किसी राजकुमार को गद्दी पर बिठा दें। तब उसने उग्रसेन को, जो महारावल जगमाल का प्रपौत्र, किशनसिंह का पौत्र और कल्याणमल का पुत्र था, उसके ननिहाल से बुलाकर बांसवाड़े की गद्दीपर बिठा दिया, पर बांसवाड़े के आधे महलों में उग्रसेन रहता और आधे में मान। इसी प्रकार राज्य की आधी आय भी मान लेता था। उग्रसेन जब उस (मान) के बहुत ही अनुचित व्यवहार से तंग आ गया और उसने अपने छुटकारे का कोई उपाय न देखा, तब उसने चोली माहेश्वर (मध्य-भारत के इंदौर-राज्य में) की तरफ़ से राठोड़ केशोदास भीमसिंहोत को बुलाकर मान को वहां से निकाल दिया। इसपर वह भागकर बादशाह (अकबर) के दरबार में गया और अपने नाम पर बांसवाड़े का फ़रमान पाने का उद्योग करने लगा। वह उग्रसेन पर शाही सेना भी ले आया, परन्तु सफल न हो सका। फिर अवसर पाकर वि० सं० १६५८ (ई० स० १६०१) में एक दिन उग्रसेन के सरदार राठोड़ सूरजमल जैतमालोत ने मान को बुरहानपुर में मार डाला[1], जिससे उग्रसेन का सारा खटका मिट गया। इसका विस्तृत वृत्तान्त बांसवाड़े के इतिहास में लिखा जायगा।

डूंगरपुर के स्वामी आसकरण ने बांसवाड़े के वास्तविक हक़दार (किशनसिंह या उसके पुत्र) को वहां का राज्य दिलाने के लिए महारावल प्रतापसिंह से, और महारावल सेंसमल ने चौहान मान का बांसवाड़े से अधिकार उठाने के लिए लड़ाई की थी। इन बातों को भूलकर उग्रसेन ने चौहान मान के पंजे से मुक्त होने के पीछे डूंगरपुर से छेड़-छाड़ करना आरंभ किया, जिसपर दोनों राज्यों के बीच लड़ाई छिड़ गई। इस विषय में बांसवाड़े की ख्यात में लिखा है कि माही नदी पर महारावल कर्मसिंह

(१) मुहणोत नैणसी की ख्यात; प्रथम भाग, पृ० १७० ।

और उग्रसेन में लड़ाई हुई, जिसमें कर्मसिंह को परास्त होकर लौटना पड़ा, परन्तु कर्मसिंह के उत्तराधिकारी पुंजराज के समय की (आषाढ़ादि) वि० सं० १६७६ (चैत्रादि १६८०) वैशाख सुदि ६ (ई० स० १६२३ ता० २५ अप्रेल) शुक्रवार की डूंगरपुर के गोवर्धननाथ के मंदिर की प्रशस्ति से प्रकट है कि कर्मसिंह ने माही नदी के तट पर युद्ध किया और शत्रुओं को मारकर पूर्ण पराक्रम दिखलाया[1]। इसकी पुष्टि मुंहणोत नैणसी की ख्यात से भी होती है और यह भी जान पड़ता है कि इस युद्ध में चौहान वीरभानु[2] (वीरभाण) काम आया था।

कर्मसिंह के समय के लेख और उसकी मृत्यु

कर्मसिंह ने थोड़े वर्ष राज्य किया। उसके समय का (आषाढ़ादि) वि० सं० १६६५ (चैत्रादि १६६६) (अमांत) चैत्र वदि (पूर्णिमांत वैशाख वदि) ५ (ई० स० १६०६ ता० १३ अप्रेल) गुरुवार का एक शिलालेख सागवाड़े के जैन-मन्दिर में लगा है और उसके उत्तराधिकारी महारावल पुंजराज (पूंजा) का सबसे पहला लेख (आषाढ़ादि) वि० सं० १६६८ (चैत्रादि १६६९) वैशाख सुदि ३ (ई० स० १६१२ ता० २३ अप्रेल) गुरुवार का प्राप्त हुआ है। इनसे निश्चय है कि वि० सं० १६६९ के पूर्व उसका देहांत हो गया था। डूंगरपुर राज्य के बड़वे की ख्यात में पुंजराज की गद्दीनशीनी का संवत् १६६६ पौष सुदि १४ (ई० स० १६०९ ता० २९ दिसम्बर) दिया है, जो संभवतः ठीक हो।

(१) तदात्मजः सागरधीरचेताः सुकर्मसिंहेत्यभिधानयुक्तः ।
जघान यो वैरिगणं महान्तं महीतटे शक्रसमानवीर्यः ॥६४॥

मूल प्रशस्ति की छाप से।

(२) वीरभानु (वीरभाण) चौहान डूंगरसी बालावत का पौत्र और लालसिंह का पुत्र था (काशी-नागरीप्रचारिणी सभा-द्वारा प्रकाशित मुंहणोत नैणसी की ख्यात, जि० १, पृ० १७०)। डूंगरपुर राज्य की ख्यात आदि पुस्तकों में उसे बोरी का जागीरदार और उसके छोटे पुत्र सूरजमल के बेटे परसा को बनकोड़ेवालों का पूर्वज बतलाया है।

आठवां अध्याय

महारावल पुंजराज से महारावल शिवसिंह तक

पुंजराज (पूंजा)

ख्यात में लिखा है कि वि० सं० १६६६ पौष सुदि १४ (ई० स० १६०९ ता० २९ दिसम्बर) को महारावल पूंजा का राज्याभिषेक हुआ।

महारावल आसकरण ने बादशाह अकबर के समय मुग़लों की प्रबलता देख उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी और वह सम्बन्ध उस(कर्मसिंह)के समय तक बना रहा, परन्तु वे न तो कभी दिल्ली गये और न बादशाही सेना में रहकर कहीं बाहर जाकर लड़े। मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह ने कई वर्षों तक निरन्तर युद्ध करने के पश्चात् वि० सं० १६७१ (ई० स० १६१५) में शाहज़ादा खुर्रम-द्वारा बादशाह जहांगीर से संधि कर ली और मेवाड़ के ज्येष्ठ राजकुमार का शाही दरबार में जाना निश्चय हुआ। तदनुसार कुंवर कर्णसिंह शाहज़ादे खुर्रम के साथ शाही दरबार में गया। बादशाह जहांगीर ने महाराणा प्रतापसिंह और अमरसिंह के समय मेवाड़ के जो प्रान्त शाही अधिकार में चले गये थे वे सब तथा डूंगरपुर, बांसवाड़ा, देवलिया (प्रतापगढ़) आदि कितने एक मेवाड़ से बाहर के इलाक़े भी कुंवर कर्णसिंह को दे दिये ऐसा सन् १० जुलूस ता० ३१ उर्दीबहिश्त (हि० स० १०२४ ता० २२ रबिउस्सानी=वि० सं० १६७२ ज्येष्ठ वदि ९=ई० स० १६१५ ता० ११ मई) के फ़रमान[1] से पाया जाता है।

महारावल पुंजराज का शाही दरबार से सम्बन्ध

डूंगरपुर, बांसवाड़ा और देवलिया (प्रतापगढ़) के राज्य मेवाड़ से मिले हुए होने से मेवाड़वाले प्रत्येक बार उनको दबाते रहे और जब शाही

---

(१) उक्त फ़रमान के लिए देखो वीरविनोद; भाग २, पृ० २३६-४६ ।

दरबार से मेवाड़ को इन इलाक़ों का फ़रमान मिल गया तो उनका और भी ज़ोर बढ़ गया। इससे डूंगरपुरवालों को भय हुआ कि मेवाड़वाले हमको दबाकर हमारी आन्तरिक स्वतन्त्रता भी नष्ट कर देंगे। अतएव अपने पक्ष को प्रबल करने के लिए उन्होंने मुग़ल बादशाहत से सम्बन्ध बढ़ाया और महारावल पुंजराज बादशाह जहांगीर के समय शाहज़ादे खुर्रम की बग़ावत का मौक़ा देखकर उससे मिल गया[1]। फिर उसके बादशाह (शाहजहां) होने पर वह शाही दरबार में पहुंच कर मन्सबदारों में दाखिल हुआ और वि० सं० १६८४ फाल्गुन सुदि ३ (ई० स० १६२७ ता० २७ फरवरी) को उसे एक हज़ार ज़ात व पांचसौ सवारों का मन्सब मिला[2]।

महाराणा कर्णसिंह का राज्यकाल प्रायः अपने उजड़े हुए राज्य को आबाद करने में ही व्यतीत हुआ। इसलिए उसने डूंगरपुर आदि से कोई

मेवाड़ के महाराणा जगत्सिंह का डूंगरपुर पर सेना भेजना

छेड़-छाड़ नहीं की, परन्तु उसके पुत्र महाराणा जगत्सिंह ने शाही फ़रमान के अनुसार डूंगरपुर, बांसवाड़ा और देवलिया को अपने अधीन करने की चेष्टा की, किन्तु उक्त राज्यों ने मेवाड़ के अधीन रहना नापसन्द किया। इसपर महाराणा ने अपने मन्त्री अक्षयराज कावड़िया को सेनासहित डूंगरपुर पर भेजा। उस समय महाराणा की सेना से लड़कर अपना बल क्षीण करना उचित न समझ महारावल पुंजराज पहाड़ों में चला गया। महाराणा की सेना ने डूंगरपुर को लूटा और राजमहलों के चन्दन के बने हुए झरोखे को तोड़कर वह लौट गई[3]।

(१) वीरविनोद; भाग २, ग्यारहवां प्रकरण, पृ० १००८।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा, प्रथम भाग, पृ० १२।

(३) जगत्सिंहाज्ञया मंत्री अखेराजो बलान्वितः ।
स डूंगरपुरं प्राप्तः पुञ्जनामाथ रावलः ॥ १८ ॥
पलायितः पातितं तच्चंदनस्य गवाक्षकम् ।
लुंठनं डूंगरपुरे कृतं लोकैरलं ततः ॥ १९ ॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ५

खानेजहां लोदी के बाग़ी होने और निज़ामुल्मुल्क के पास उसके दक्षिण में पहुंचने की सूचना पाकर बादशाह शाहजहां उन दोनों को दण्ड देने के लिए वि० सं० १६८६ पौष सुदि १० (ई० स० १६२९ ता० १५ दिसम्बर) को आगरे से दक्षिण की ओर रवाना हुआ। आसेर पहुंचने के बाद उसने निज़ामुल्मुल्क और खानेजहां पर तीन सेनाएं भेजीं, जिनमें दूसरी फौज का अफ़सर जोधपुर का महाराजा गजसिंह था। महारावल पुंजराज (पूंजा) दूसरी फौज में था, जिसमें उसके अतिरिक्त राजा विट्ठलदास (गौड़), अनीराय (सिंहदलन) बड़गूजर, राजा मनरूप कछवाहा, भीम राठोड़, राजा वीरनारायण बड़गूजर, गोकुलदास सीसोदिया, जैराम (अनीराय का बेटा), नरहरदास झाला, राय हरचन्द पड़िहार आदि कई हिन्दू तथा मुसलमान मन्सबदार सम्मिलित थे। इस सेना की संख्या पन्द्रह हज़ार थी[1]। दो वर्ष तक शाही सेना ने दक्षिण में रहकर बहुतसी लड़ाइयां कीं और चारों ओर से शत्रुओं को दबाकर परास्त कर दिया। अन्त में खानेजहां[2] और निज़ामुल्मुल्क मारे गये। फिर बादशाह उस (निज़ामुल्मुल्क) के पुत्र हुसेन निज़ामशाह को दौलताबाद में गद्दी पर बिठलाकर वहां से लौटा। दक्षिण की इन लड़ाइयों की कारगुज़ारी के कारण महारावल पूंजा का मन्सब डेढ़हजारी ज़ात और पन्द्रहसौ सवारों का हो गया[3]। उसकी अच्छी सेवाओं से बादशाह शाहजहां ने प्रसन्न होकर उसको 'माही मरातिब' दिया, जो अब तक डूंगरपुर में विद्यमान है।

महारावल पुंजराज का शाही सेना के साथ दक्षिण में जाना

बड़वे की ख्यात में लिखा है कि महारावल पुंजराज का देहान्त वि० सं० १७१७ में हुआ, परन्तु उसके पुत्र गिरधरदास का सबसे पहला लेख (ताम्रपत्र) वि० सं० १७१४ (अमांत) फाल्गुन वदि (पूर्णिमांत चैत्र वदि) ६ (ई० स० १६५८ ता० १४ मार्च) का

महारावल पूंजा की मृत्यु

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा (प्रथम भाग), पृ० २८।

(२) वही; पृ० ४६, ६०।

(३) वीरविनोद, भाग २, पृ० ३६९। मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा (दूसरा भाग) मन्सबदारों की सूची, पृ० ५ और २०। तीसरा भाग, पृ० २१२।

मिला है, जिसमें महारावल पुंजराज के वार्षिक श्राद्ध के अवसर पर भूमि-दान का उल्लेख है। एक पुरानी बही में, जिसमें महारावल शिवसिंह तक की पीढ़ियां हैं, वि० सं० १७१३ फाल्गुन सुदि ६ (ई० स० १६५७ ता० ६ फरवरी) को उसकी मृत्यु होना लिखा है, जो अधिक सम्भव है।

महारावल पुंजराज ने पुंजपुर गांव बसाकर पुंजेला तालाब बनाया एवं घाटड़ी गांव में भी उसने एक तालाब बनवाया था[1]। उसने राजधानी डूंगरपुर में नौलखा बाग बनवाया[2] और गैबसागर तालाब की पाल पर गोवर्धननाथ का विशाल मंदिर बनाकर (आ०) वि० सं० १६७६ (चै० १६८०) वैशाख सुदि ६ (ई० स० १६२३ ता० २५ अप्रेल) को उसकी प्रतिष्ठा की[3] तथा वि० सं० १७०० कार्तिक सुदि ३ (ई० स० १६४३ ता० ५ अक्टोबर) गुरुवार को उसने उक्त देवालय को बसई गांव भेंट किया[4]। उसने चन्द्र-भानोत चौहान मनोहरदास को लोड़ावल की जागीर दी।

महारावल पुंजराज के मुख्य मुख्य लोकोपयोगी कार्य

---

(१) सप्तक्रोशार्द्धमानेन ग्रामे घाटडी(डि)नामनि।
निर्मितवांस्तडागं यः सागरोपममद्वयम्॥ ६९॥

डूंगरपुर के गोवर्धननाथ के मन्दिर की प्रशस्ति।

(२) रोपितवान् यः(य)उद्यानं नवलक्षतरुश्रिया।
रम्यं पुष्पफलोपेतमिन्द्रस्य नंदनं यथा॥ ७०॥

वही।

(३) ·········संवत् १६७९ वर्षे शाके १५४५ प्रवर्त्तमाने वैशाख-मासे शुक्लपक्षे षष्ठी(ष्ठयां) तिथौ भृगुवासरे अद्येह श्रीगिरिपुरे महाराजश्री महाराउलश्री ५ पुंजाजीनामा श्रीगोवर्धननाथप्रीतये प्रतिष्ठासहितप्रासादवरं उद्ध·········।

वही।

(४) गोवर्धननाथ के मंदिर की उपर्युक्त प्रशस्ति के नीचे का वि० सं० १७०० कार्तिक सुदि ३ गुरुवार का लेख।
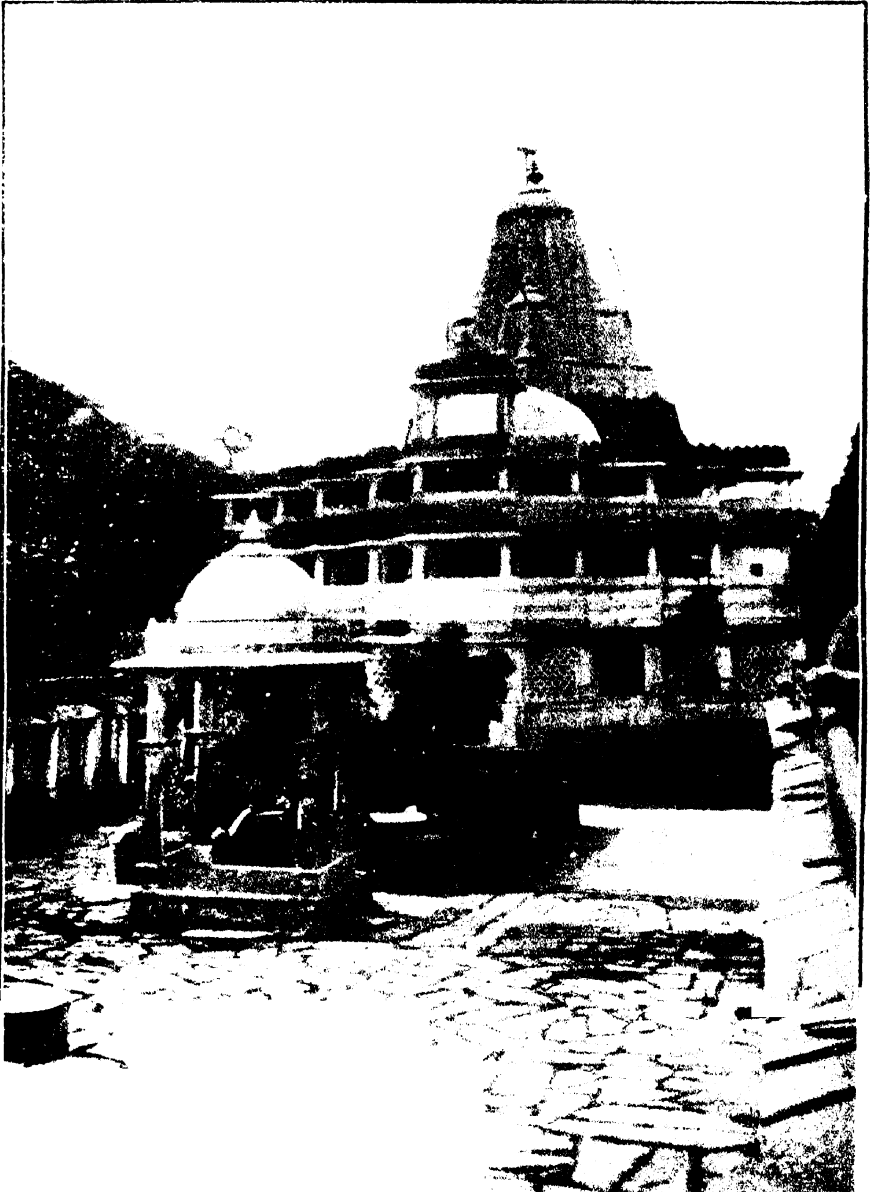
गोवर्धननाथ का मन्दिर

महारावल पुंजराज के १२ राणियां थीं[1]। ख्यातों में उसकी राणियों के जो नाम दिये हैं, उनमें से अधिकांश कल्पित हैं; क्योंकि वे गोवर्धन-नाथ के मन्दिर की उपर्युक्त प्रशस्ति में लिखित नामों से नहीं मिलते। उसके गिरधरदास, लालसिंह, प्रतापसिंह, भानुसिंह और सुजानसिंह नामक ५ पुत्र हुए। उसका प्रधान-मंत्री खड़ायता जाति का महाजन रामा था[2]।

महारावल पुंजराज की राणियां और संतति

महारावल पुंजराज के समय के वि० सं० १६६८ से १७१३ (ई० स० १६१२ से १६५७) तक के १८ शिलालेख और ४ दानपत्र मिले हैं, जो नीचे लिखे अनुसार हैं—

महारावल पुंजराज के शिलालेखादि

(१) थाणा गांव के जैन-मन्दिर की (आषाढ़ादि) वि० सं० १६६८ (चैत्रादि १६६६) वैशाख सुदि ३ (ई० स० १६१२ ता० २३ अप्रेल) गुरुवार की प्रशस्ति।

(२) सरोदा गांव के महादेव के मन्दिर की वि० सं० १६७० शाके १५३५ माघसुदि १०—उपरान्त ११—(ई० स० १६१४ ता० १० जनवरी) सोमवार, रोहिणी नक्षत्र की प्रशस्ति।

(३) डूंगरपुर के पोरवाड़ों के जैन-मन्दिर की (आषाढ़ादि) वि० सं० १६७१ (चैत्रादि १६७२) वैशाख सुदि ५ (ई० स० १६१५ ता० २३ अप्रेल) रविवार की प्रशस्ति।

(४) खुंमाणपुर गांव के पास की बावड़ी की वि० सं० १६७२ शाके १५३७ आषाढ़ सुदि ५ (ई० स० १६१५ ता० २१ जून) बुधवार, पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र की प्रशस्ति।

(५) आसपुर गांव के सोनियों के मंदिर की वि० सं० १६७६ शाके १५४१ माघ सुदि ४ (ई० स० १६२० ता० २८ जनवरी) शुक्रवार, उत्तरा-भाद्रपद नक्षत्र की प्रशस्ति।

(१) डूंगरपुर के गोवर्धननाथ के मंदिर की प्रशस्ति; श्लोक ८७—९३।

(२) ......प्रधानो रामजिन्नामा मुख्योन्येप्यधिकारिणः ॥९८॥
वही।

(६) डूंगरपुर के माजी के मन्दिर का (आषाढ़ादि) वि० सं० १६७६ (चैत्रादि १६८०) वैशाख ···दि ५ (ई० स० १६२३) का शिलालेख।

(७) डूंगरपुर के गैबसागर तालाब पर के गोवर्धननाथ के मंदिर की (आषाढ़ादि) वि० सं० १६७६ (चैत्रादि १६८०) शाके १५४५ वैशाख सुदि ६ (ई० स० १६२३ ता० २५ अप्रेल) शुक्रवार की प्रशस्ति।

(८) भीलोड़ा गांव के जैन-मन्दिर की वि० सं० १६८४ माघ सुदि ५ (ई० स० १६२८ ता० ३१ जनवरी) की प्रशस्ति।

(९) डूंगरपुर के माजी के मंदिर का वि० सं० १६९० शाके १५५५ पौष (पूर्णिमांत माघ) वदि ६ (ई० स० १६३४ ता० १० जनवरी) शुक्रवार का शिलालेख।

(१०) देवसोमनाथ का वि० सं० १६९१ पौष सुदि ५ (ई० स० १६३४ ता० १५ दिसम्बर) सोमवार का शिलालेख।

(११) सावला गांव का वि० सं० १६९२ श्रावण सुदि १५ (ई० स० १६३५ ता० १९ जुलाई) का शिलालेख।

(१२) दीवड़ा गांव से मिला हुआ वि० सं० १६९३ (अमान्त) फाल्गुन (पूर्णिमान्त चैत्र) वदि ११ (ई० स० १६३७ ता० १२ मार्च) का ताम्रपत्र।

(१३) सावला गांव का वि० सं० १६९६ पौष सुदि १५ (ई० स० १६३९ ता० ३० दिसम्बर) का शिलालेख।

(१४) गलियाकोट का (आषाढ़ादि) वि० सं० १६९८ (चैत्रादि १६९९, अमान्त) ज्येष्ठ (पूर्णिमान्त आषाढ़) वदि १० (ई० स० १६४२ ता० ११ जून) शनिवार का शिलालेख।

(१५) वसई गांव का वि० सं० १७०० कार्तिक (ई० स० १६४३) का ताम्रपत्र, जिसमें डूंगरपुर के गोवर्धननाथ के मंदिर को उक्त गांव के भेंट किये जाने का उल्लेख है।

(१६) सूरपुर गांव से मिला हुआ वि० सं० १७०० कार्तिक सुदि १५ (ई० स० १६४३ ता० १७ अक्टोबर) का ताम्रपत्र।

(१७) पादरा गांव का (आषाढ़ादि) वि० सं० १७०१ (चैत्रादि १७०२)

शाके १५६७ वैशाख सुदि ५ (ई० स० १६४५ ता० २० अप्रेल) रविवार का शिलालेख।

(१८) भीलूड़े गांव से मिला हुआ (आषाढ़ादि) वि० सं० १७०२ (चैत्रादि १७०३) वैशाख सुदि २ (ई० स० १६४६ ता० ७ अप्रेल) का ताम्रपत्र।

(१९) डूंगरपुर के महाकालेश्वर महादेव का (आषाढ़ादि) वि० सं० १७०३ (चैत्रादि १७०४, अमांत) वैशाख (पूर्णिमांत जेष्ठ) वदि ६ (ई० स० १६४७ ता० १४ मई) शुक्रवार का लेख।

(२०) भरियाणे गांव का वि० सं० १७०४ शाके १५६९ फाल्गुन सुदि १३ (ई० स० १६४८ ता० २६ फरवरी) का लेख।

(२१) गलियाकोट का वि० सं० १७१० श्रावण सुदि ५ (ई० स० १६५३ ता० १९ जुलाई) का लेख।

(२२) नीले पानी के नीलकंठ महादेव का वि० सं० १७१३ शाके १५७८ माघ सुदि १५ (ई० स० १६५७ ता० १९ जनवरी) सोमवार पुष्य-नक्षत्र का लेख।

गिरधरदास

महारावल पुंजराज का देहान्त होने पर वि० सं० १७१३ (ई० स० १६५७) में गिरधरदास डूंगरपुर राज्य का स्वामी हुआ। अपने पिता की विद्यमानता में वह बादशाह शाहजहां के दरबार में गया था और बादशाह ने उसे ६०० ज़ात तथा ६०० सवारों का मन्सब दिया था[1]।

बादशाह शाहजहां के पिछले समय में उसके शाहज़ादे आपस में लड़ने लगे और वे अपने अपने पक्ष को दृढ़ करने के लिए भारतीय राजा-महाराजाओं आदि को अपनी ओर मिलाने लगे। बादशाह शाहजहां के द्वारा चित्तोड़ के दुर्ग की मरम्मत गिराई जाने के कारण मेवाड़ का महाराणा राजसिंह (प्रथम) उससे नाराज़ था, इसलिए उसने बादशाह के प्रीति-पात्र शाहज़ादे दाराशिकोह का पक्ष न लेकर

महाराणा राजसिंह का सेना भेजना

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा, तीसरा भाग, पृ० २१७।

शाहज़ादे औरंगज़ेब का पक्ष लिया। औरंगज़ेब ने इस सहायता के एवज़ में बादशाह होने पर महाराणा के सम्मान में वृद्धि कर छः हज़ारी ज़ात व सवार का मन्सब दिया और बदनोर, मांडलगढ़, डूंगरपुर, बसावर, गयासपुर, बांसवाड़ा, देवलिया आदि भी महाराणा के अधीन किये जाने का हिजरी स० १०६८ ता० १७ ज़िल्काद (वि० सं० १७१५ भाद्रपद वदि ४ = ई० स० १६५८ ता० ७ अगस्त) का फ़रमान भेजा,[1] किन्तु डूंगरपुर, बांसवाड़ा तथा देवलिया के अधीशों ने मेवाड़ के मातहत रहना पसन्द न किया और इस फ़रमान के विरुद्ध उन्होंने अपना राजनैतिक संबन्ध दिल्ली के सम्राट् से ही रखना चाहा। यह बात मेवाड़ के महाराणा राजसिंह को बुरी लगी, अतएव उसने डूंगरपुर, बांसवाड़ा और देवलिया के स्वामियों पर चढ़ाई का निश्चय किया और महाराणा का प्रधान कायस्थ फतेहचंद कई सरदारों के साथ सेना लेकर उनपर चढ़ा। उस समय महाराणा का बढ़ा हुआ बल देख महारावल गिरधरदास ने भी महाराणा से सुलह कर ली[2]।

महारावल गिरधरदास ने थोड़े ही वर्ष राज्य किया। उसके समय के केवल एक ताम्रपत्र और दो शिलालेख मिले हैं[3], जिनमें अन्तिम लेख

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ४२५—२७। मेरा राजपूताने का इतिहास; जिल्द २, पृ० ८४८।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ४३५। मेरा राजपूताने का इतिहास, जिल्द २, पृ० ८५१।

पूर्णे सप्तदशे शते नरपतिः सत्षोडशाख्येऽब्दके
आकार्योत्तमठक्कुरैर्गिरिधरं तं डूंगराद्ये पुरे।
सद्राज्यं किल रावलं विदधता कृत्वात्मनः सेवकं
प्रेम्णास्मै प्रददौ सुयोग्यमखिलं सेवां व्यधाद्रावलः ॥ ८ ॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग ८।

(३) उपर्युक्त शिलालेखों और ताम्रपत्र का विवरण इस प्रकार है—

[अ] वि० सं० १७१४ (अमांत) फाल्गुन वदि (पूर्णिमांत चैत्र वदि) ६ (ई० स० १६५८ ता० १४ मार्च) का चौबीसा जाति के पुरोहित उदयराम के यहां से मिला हुआ ताम्रपत्र, जिसमें महारावल पूंजा

महारावल गिरधरदास का देहान्त

वि० सं० १७१७ फाल्गुन सुदि २ (ई० स० १६६१ ता० २० फरवरी) बुधवार का और उसके उत्तराधिकारी जसवन्तसिंह का सबसे पहला लेख वि० सं० १७२२ (अमांत) पौष (पूर्णिमांत माघ) वदि ६ (ई० स० १६६६ ता० १६ जनवरी) का है, जिससे अनुमान होता है कि वि० सं० १७२२ (ई० स० १६६६) के पूर्व उसका देहावसान हुआ। डूंगरपुर राज्य के बड़वे की ख्यात में उसके तीन पुत्रों के नाम जसवन्तसिंह, केसरीसिंह और परबतसिंह लिखे हैं[1]। एक पुरानी बही में उस(महारावल गिरधरदास)की मृत्यु वि० सं० १७१७ (ई० स० १६६१) में होना लिखा है, जो अधिकतर संभव[2] है।

जसवन्तसिंह

महारावल गिरधरदास का देहान्त होने पर उसका कुंवर जसवन्तसिंह वि० सं० १७१७ (ई० स० १६६१) के लगभग डूंगरपुर राज्य का स्वामी हुआ।

और उसकी राणी हाडी, जो सती हुई थी, के वार्षिक श्राद्ध पर नौलखा गांव देने का उल्लेख है।

[आ] वि० सं० १७१६ मार्गशीर्ष (ई० स० १६५६ नवम्बर) का सागवाड़े का शिलालेख।

[इ] वि० सं० १७१७ फाल्गुन सुदि २ (ई० स० १६६१ ता० २० फरवरी) बुधवार का डूंगरपुर के हाटकेश्वर महादेव के मन्दिर का लेख।

(१) बड़वे की ख्यात में केसरीसिंह के वंश में सावली, ओडां और मांडव के जागीरदारों का होना लिखा है, परन्तु मौलवी सफदरहुसैन ने अपनी पुस्तक में सावली, ओडां और मांडववालों को महारावल गिरधरदास के पुत्र हरिसिंह के वंशज बतलाये हैं, जिसका नाम बड़वे की ख्यात में नहीं है। डूंगरपुर राज्य के राणीमंगा की ख्यात में गिरधरदास के चार पुत्रों में उपर्युक्त नामों के अतिरिक्त चौथे पुत्र का नाम हरिसिंह है, पर उसने भी सावलीवालों का केसरीसिंह के वंश में होना लिखा है।

(२) बड़वे की ख्यात में महारावल गिरधरदास की मृत्यु का संवत् १७२३ दिया है, जो विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि उसके उत्तराधिकारी जसवन्तसिंह का सबसे पहला लेख वि० सं० १७२२ का मिल चुका है।

महारावल जसवन्तसिंह ने मेवाड़ के महाराणाओं से अपना संबन्ध बनाये रक्खा, जिससे मेवाड़वालों ने उससे कोई छेड़-छाड़ नहीं की। इसी से उसके राज्य में सुख-शांति बनी रही। महाराणा राजसिंह ने कांकरोली के समीप राज-समुद्र नामक सुविशाल तालाब बनवाकर वि० सं० १७३२ (ई० स० १६७६) में उसकी प्रतिष्ठा का महोत्सव किया। उस समय महारावल जसवन्तसिंह भी उस उत्सव में सम्मिलित हुआ। तालाब की प्रदक्षिणा करने के लिए महाराणा राणियों, कुंवरों आदि सहित पैदल चलने लगा, उस समय उस (जसवन्तसिंह) ने महाराणा से निवेदन किया[1] कि उदयसागर की प्रतिष्ठा के समय महाराणा उदयसिंह तथा राणियों ने पालकी में बैठकर परिक्रमा की थी, इसलिए आप भी वैसा ही कीजिये अथवा घोड़े पर सवार हो जाइये, परन्तु महाराणा ने पैदल ही परिक्रमा करना उचित समझा। प्रतिष्ठा के अन्त में महाराणा ने अपने सगे संबन्धियों और राजा-महाराजाओं के लिए हाथी, घोड़े व सिरोपाव भेजे। उस समय महारावल जसवन्तसिंह के लिए ६५०० रुपयों के मूल्य का सारधार नामक हाथी, एक हज़ार रुपयों के मूल्य का जसतरंग घोड़ा तथा ५०० रुपयों की क़ीमत का एक और घोड़ा एवं ज़रदोज़ी सरोपाव हरिजी द्विवेदी के साथ डूंगरपुर भेजा[2]।

राजसमुद्र तालाब की प्रतिष्ठा पर महारावल का उदयपुर आना

(१) उदयसागरनामजलाशयोत्तमपरिक्रमणे रमणीयुतः।
उदयसिंहनृपः शिबिकास्थितः समतनोदिति सूत्रनिवेशनं ॥ २ ॥
जसवंतसिंहरावल इति जल्पितवान् प्रभो[:] पार्श्वे।
एवं कार्यं भवता अथवाऽश्वरोहणं कृत्वा ॥ ३ ॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग १६।

वीरविनोद, भाग २, पृ० ६१३। मेरा राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ८८३।

(२) जसवन्तसिंहनाम्ने रावलवर्याय षट्सहस्रैस्तु।
पंचशताग्रे रजतमुद्राणां रचितमूल्यमिभं······ ॥ २५ ॥

रूपनगर की राजकुमारी से विवाह करने, श्रीनाथजी की मूर्ति को मेवाड़ में रखने, जज़िया के बारे में बादशाह को विस्तृत पत्र लिखने और जोधपुर के बालक महाराजा अजीतसिंह को अपने यहां रखने के कारण बादशाह औरंगज़ेब ने महाराणा राजसिंह से नाराज़ होकर उसको दंड देने के लिए अपनी विशाल सेना के साथ वि० सं० १७३६ भाद्रपद सुदि ८ (ई० स० १६७६ ता० ३ सितम्बर=हि० स० १०९० ता० ७ शाबान) को दिल्ली से अजमेर की ओर प्रस्थान किया। यह समाचार सुन महाराणा ने परामर्श के लिए अपने सरदारों और इष्टमित्रों को एकत्र किये, उस समय डूंगरपुर का स्वामी महारावल जसवन्तसिंह भी उदयपुर पहुंचा और युद्ध-विषयक मन्त्रणा में सम्मिलित हुआ, ऐसा यति मान कवि रचित 'राजविलास' नामक काव्य में उल्लेख है। अतएव संभव है कि महारावल जसवन्तसिंह औरंगज़ेब के समय की लड़ाइयों में महाराणा के पक्ष में रहकर लड़ा हो[1]।

महारावल का महाराणा राजसिंह का सहायक होना

शुभसारधारसंज्ञं द्विवेदिहरिजीकहस्तेषु।
डुंगरपुरे नरपतिः प्रेषितवान् हेमयुक्तवसनानि ॥
प्रथमं राजसमुद्रोत्सर्गेस्मैरजतमुद्राणां।
तत्र सहस्रेण कृतमूल्यं जसतुरगनामहयं ॥ २६ ॥
पंचशतरूप्यमुद्राकृतमूल्यतुरगमपरं च।
कनकमयांबरवृन्दं दत्तवान् राजसिंहनृपः ॥ २७ ॥

राजप्रशस्ति महाकाव्य; सर्ग २०।

वीरविनोद; भाग २ पृ० ६२३। मेरा राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ८८४।

(१) रावर सुबोलि जसकरन रंग। असुरेस सल्ल अनमी अभंग।
भलमंत भेद धर भावसिंघ। राना उत रक्खन जोर रिंघ ॥५६॥

राजविलास; पृ० १६३।

राजविलास काव्य का प्रारम्भ मान कवि ने वि० सं० १७३४ आषाढ़ सुदि ७ (ई० स० १६७७ ता० २७ जून) बुधवार हस्त नक्षत्र को किया (पृ० ८, छंद ३८) और वि० सं० १७३७ (ई० स० १६८०) में महाराणा राजसिंह का देहान्त होने पर उसे समाप्त कर दिया।

बादशाह औरंगज़ेब के शाहज़ादे अकबर ने, जो अपने पिता से विद्रोही हो रहा था, वि० सं० १७३८ (ई० स० १६८१) में देसूरी के घाटे से मेवाड़ में आकर महाराणा जयसिंह से मिलना चाहा, किन्तु उन दिनों बादशाह औरंगज़ेब और महाराणा जयसिंह के बीच सुलह की बातचीत हो रही थी, इसलिए महाराणा ने उससे मिलना स्वीकार न किया, तब वह भोमट के पहाड़ों में होता हुआ डूंगरपुर गया, जहां महारावल जसवन्तसिंह ने उसका शिष्टाचार-पूर्वक स्वागत किया। फिर उसको उसने सरवण व राजपीपला के मार्ग से दक्षिण में पहुंचा दिया[1]।

शाहज़ादे अकबर का डूंगरपुर जाना

महारावल जसवन्तसिंह के समय के वि० सं० १७२२ से १७४४ (ई० स० १६६५ से १६८८) तक के ६ लेख मिले हैं[2]। उसके पुत्र खुंमाणसिंह का सबसे पहला लेख वि० सं० १७५१ (ई० स० १६९४) का है, जिससे वि० सं० १७४४ और १७५१ (ई० स० १६८७ और १६९४) के बीच उसका देहांत होना अनुमान होता है। ख्यातों में उसकी मृत्यु वि० सं० १७४८ (ई० स० १६९१) में होना लिखा है, जो ठीक प्रतीत होता है।

महारावल का परलोकवास

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ९५३।

(२) उपर्युक्त शिलालेखों का विवरण नीचे लिखे अनुसार है—

[क] वि० सं० १७२२ (अमांत) पौष (पूर्णिमांत माघ) वदि ९ (ई० स० १६६६ ता० १९ जनवरी) का नांदली गांव के शिवालय का शिलालेख।

[ख] वि० सं० १७२६ शाके १५९२(? १) (अमांत) माघ (पूर्णिमांत फाल्गुन) वदि १३ (ई० स० १६७० ता० १६ फरवरी) बुधवार का डूंगरपुर के धनेश्वर महादेव के मन्दिर का शिलालेख।

[ग] वि० सं० १७२९ आश्विन सुदि ५ (ई० स० १६७२ ता० १५ सितम्बर) रविवार का सरोदा गांव के शिव-मन्दिर का शिलालेख।

[घ] (आषाढ़ादि) वि० सं० १७२९ (चैत्रादि १७३०) चैत्र सुदि २ (ई० स० १६७३ ता० १० मार्च) का गोवाड़ी गांव के माफ़ीदार कुंअरसिंह राजपूत के पास से मिला हुआ ताम्रपत्र।

[ङ] वि० सं० १७३० आश्विन सुदि ५ (ई० स० १६७३ ता० ५ अक्टोबर) शुक्रवार का डूंगरपुर के सांडेश्वर महादेव के मन्दिर का शिलालेख।

खुमाणसिंह ।

महारावल जसवंतसिंह का परलोकवास होनेपर उसका पुत्र खुमाण-सिंह वि० सं० १७४८ (ई० स० १६९१) में राजगद्दी पर बैठा ।

वि० सं० १७५५ (ई० स० १६९८) में महाराणा अमरसिंह (दूसरा) मेवाड़ का स्वामी हुआ। कलहप्रिय होने से उसने अपनी गद्दीनशीनी के

महाराणा अमरसिंह (दूसरे) का डूंगरपुर पर सेना भेजना

प्रारम्भ में ही डूंगरपुर, बांसवाड़ा और प्रतापगढ़ के अधीशों पर राज्याभिषेकोत्सव पर टीका लेकर स्वयं न आने का कारण बतलाकर सेना भेजने का हुक्म दिया। तदनुसार डूंगरपुर पर महाराणा का चाचा सूरतसिंह और

[च] (आषाढ़ादि) वि० सं० १७३१ (चैत्रादि १७३२) शाके १५९७ वैशाख सुदि ६ (ई० स० १६७५ ता० २१ अप्रेल) बुधवार पुष्य नक्षत्र का रंगथोर गांव के महादेव के मन्दिर की प्रशस्ति । उसमें महारावल जसवन्तसिंह के ज्योतिषी चौबीसा जाति के जागेश्वर की स्त्री-द्वारा उक्त शिवालय के बनाये जाने का उल्लेख है और उसमें जागेश्वर की विद्वत्ता का वर्णन है ।

[छ] वि० सं० १७३८ शाके १६०३ (अमांत) माघ (पूर्णिमांत फाल्गुन) वदि ५ (ई० स० १६८२ ता० १८ जनवरी) बुधवार का मांडव गांव की बावड़ी का शिलालेख ।

[ज] वि० सं० १७३९ फाल्गुन सुदि ७ (ई० स० १६८३ ता० २३ फरवरी) का आसपुर गांव के ठाकोतों के मन्दिर का शिलालेख ।

[झ] (आषाढ़ादि) वि० सं० १७४४ (चैत्रादि १७४५) शाके १६१० वैशाख सुदि ७ (ई० स० १६८८ ता० २६ अप्रेल) गुरुवार की उदयपुर राज्य के धुलेव गांव के प्रसिद्ध ऋषभदेव के मन्दिर के पासवाले विष्णु-मन्दिर की प्रशस्ति, जिसमें महारावल जसवन्तसिंह के राज्य-समय खड़ायता जाति और गूंदाणा गोत्र के शाह मनोहरदास-द्वारा उक्त (त्रिकमराय के) मंदिर का जीर्णोद्धार होने का उल्लेख है। इस लेख में उक्त महारावल की पटराणी फूलकुंवरी वीरपुरी (सोलंकिनी) तथा कुंवर खुमाणसिंह के नाम भी दिये हैं ।

पंचोली दामोदरदास (प्रधान) सेना लेकर रवाना हुए[1]। सोम नदी पर लड़ाई हुई[2], जिसमें दोनों तरफ के कई आदमी मारे गये। फिर देवगढ़ के रावत द्वारिकादास की मारफत सुलह की बात तय होकर (आषाढ़ादि) वि० सं० १७५५ (चैत्रादि १७५६) ज्येष्ठ सुदि ५ (ई० स० १६९९ ता० २३ मई) मंगलवार को सेना-व्यय के १७५००० रुपये, दो हाथी और मोतियों की माला महाराणा को देने की बात पर समझौता हुआ[3], परन्तु यह बात महारावल की इच्छा के विरुद्ध थी, इसलिए महाराणा की सेना लौट जाने पर महारावल ने बादशाह औरंगज़ेब से शिकायत की कि महाराणा ने मुझे मालपुरे पर आक्रमण करने, चित्तोड़ की मरम्मत कराने तथा मंदिर बनाने में शरीक होने के लिए कहा, परन्तु मेरे इन्कार करने पर उसने मेरे मुल्क पर चढ़ाई कर दी। इसपर वज़ीर असदखां ने महाराणा को बादशाह की इच्छा के विरुद्ध कार्रवाई न करने के लिए लिखा[4]। उन दिनों बादशाह औरंगज़ेब ने दक्षिण विजय में अपनी सारी शक्ति लगा रक्खी थी, इसलिए उसने महाराणा की इस कार्रवाई पर ध्यान न दिया, परन्तु इतना अवश्य हुआ कि बादशाह की तरफ से राज्याभिषेक का जो टीका उक्त महाराणा के लिए मोतबिर अहलकारों के साथ भेजना निश्चय हुआ था, वह इन शिकायतों के कारण महाराणा के बहुत प्रयत्न करने पर भी रुका रहा।

---

(१) संवत् १७५५ वरप(र्षे) वैशाख सुदि ९ शुक्रे महाराजा श्रीसूरतसिंघ(ह)जी पंचोली श्रीदामोदरदासजी डूंगरपुर फोज पधार्या जद इतरी जात्रा सफल...................... ।

डूंगरपुर राज्य के देवसोमनाथ के मन्दिर के एक स्तम्भ का लेख।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ७५५। मेरा राजपूताने का इतिहास; जिल्द दूसरी, पृ० ९०६।

(३) वीरविनोद; भाग २, पृ० १००९ में मुद्रित इक़रारनामा।

(४) वज़ीर असदखां का महाराणा अमरसिंह (दूसरे) के नाम ता० १० सफ़र सन् ४३ जुलूस (वि० सं० १७५६ श्रावण सुदि १२=ई० स० १६९९ ता० २८ जुलाई) का पत्र।

वीरविनोद, भाग २, पृ० ७३५-६।

महारावल खुमाणसिंह के वि० सं० १७५१ से (चै०) १७५८ (ई० स० १६६४ से १७०१) तक के तीन लेख मिले हैं[1]। ख्यात में लिखा है कि वि० सं० १७६० (ई० स० १७०३) में महारावल खुमाणसिंह का परलोकवास हुआ, परन्तु उसका सबसे अन्तिम लेख (आ०) वि० सं० १७५७ (ई० स० १७०१) का है और उसके उत्तराधिकारी रामसिंह का पहला लेख वि० सं० १७५९ (ई० स० १७०२) का है, जिनसे ज्ञात होता है कि इन दोनों संवतों के बीच अर्थात् वि० सं० १७५९ (ई० स० १७०२) में उसका देहावसान हुआ[2]। उसने अपने नाम से खुमाणपुर गांव बसाया था।

महारावल का देहांत और उसके शिलालेख

रामसिंह

महारावल रामसिंह अपने पिता खुमाणसिंह के पीछे वि० सं० १७५९ (ई० स० १७०२) में डूंगरपुर के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ।

(१) इन लेखों का ब्योरा नीचे लिखे अनुसार है—

[अ] वि० सं० १७५१ (अमांत) मार्गशीर्ष (पूर्णिमांत पौष) वदि १ (ई० स० १६९४ ता० २२ नवम्बर) का गलियाकोट का लेख, जिसमें खुमाणपुर गांव (गलियाकोट के निकट) बसाने का उल्लेख है।

[आ] वि० सं० १७५६ माघ सुदि ५ (ई० स० १७०० ता० १५ जनवरी) का भंडारिया गांव से मिला हुआ ताम्रपत्र।

[इ] (आषाढादि) वि० सं० १७५७ (चैत्रादि १७५८) शाके १६२३ वैशाख सुदि ३ (ई० स० १७०१ ता० २९ अप्रेल) मंगलवार की खड़गदा गांव के लक्ष्मीनारायण के मंदिर की प्रशस्ति, जिसमें कुंवर रामसिंह को युवराज लिखा है—

"..........अद्येह श्रीगिरिपुरे रायरायां महाराजाधिराज-महाराउलश्रीखुमाणसिंघजी विजयराज्ये महाकुंअरजी श्री-रामसिंघजी यौवराज्ये................"।

मूल छाप से।

(२) एक पुरानी बही में उसकी मृत्यु (आषाढादि) वि० सं० १७५८ (चैत्रादि १७५९, अमांत) चैत्र (पूर्णिमांत वैशाख) वदि १२ (ई० स० १७०२ ता० १२ अप्रेल) को होना लिखा है, जो ठीक प्रतीत होता है।

मेवाड़वालों की चढ़ाइयों से डूंगरपुर को बार बार क्षति उठानी पड़ती थी, इसलिए महारावल रामसिंह ने मेवाड़वालों से अपने देश को बचाने का विचार कर बादशाह औरंगज़ेब के पास उपस्थित हो शाही सेवा करना निश्चय किया। फिर उसने गद्दीनशीनी के आरंभ में ही बादशाह की सेवा में पहुंचकर १००० ज़ात और १००० सवार का मन्सब एवं १६०००००० दाम (४००००० रुपये) की डूंगरपुर की जागीर का फ़रमान प्राप्त किया[1], जिससे मेवाड़ के महाराणा अमरसिंह (दूसरे) ने फिर उससे कोई छेड़-छाड़ न की।

महारावल का बादशाह औरंगज़ेब से मन्सब पाना

इसके थोड़े ही समय बाद वि० सं० १७६७ (ई० स० १७१०) में महाराणा अमरसिंह का देहांत हो गया और उसका पुत्र संग्रामसिंह (दूसरा) मेवाड़ का स्वामी हुआ, जो बुद्धिमान शासक था। शाही दरबार में महारावल का प्रभाव बढ़ता हुआ देख उक्त महाराणा ने परस्पर के विरोध को मिटा देना उचित जानकर वैद्यनाथ शिवालय के प्रतिष्ठा-महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए महारावल को उदयपुर बुलाना चाहा। इसपर महारावल ने महाराणा की इच्छा को पसन्द किया, जिससे महाराणा को बड़ा हर्ष हुआ और उसने वि० सं० १७७२ श्रावण वदि ६ (ई० स० १७१५ ता० १३ जुलाई) को महारावल के नाम पत्र भेज प्रीति दिखलाई[2]। फिर प्रतिष्ठा-महोत्सव में सम्मिलित होने के लिए डूंगरपुर से रवाना होकर माघ वदि १२ (ई० स० १७१६ ता० १० जनवरी) को महारावल उदयपुर के निकट पहुंचा तो उसकी पेशवाई के लिए महाराणा मादड़ी गांव तक गया। वहां उन दोनों की मुलाकात होकर महाराणा उसे अपने साथ उदयपुर ले गया। माघ सुदि १४

वैद्यनाथ शिवालय के प्रतिष्ठा-महोत्सव पर महारावल का उदयपुर आना

(१) सय्यद नवाबअली और सेडन; मिरातेअहमदी के खातिमे (सप्लीमेंट) का अंग्रेज़ी अनुवाद; गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज़, सं० ४३, पृ० १६० ।

(२) डूंगरपुर राज्य के पुराने दीवान शाह निहालचन्द (दाणी) सहायता के यहां की एक पुरानी बही में इस विषय का पत्र-व्यवहार और वृत्तान्त दर्ज है ।

(ता० २६ जनवरी) को प्रतिष्ठा-महोत्सव हुआ, जिसमें वह तथा कोटे का स्वामी भीमसिंह भी उपस्थित था[1]।

बादशाह फ़र्रुखसियर के शासन की बागडोर सैयद-बंधुओं के हाथ में थी, परन्तु पारस्परिक फूट के कारण साम्राज्य की दशा दिन-प्रतिदिन क्षीण होती जाती थी। जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह को मिलाकर बादशाह सैयद-बंधुओं के पंजों से मुक्त होने की चेष्टा में था। इधर सैयद-बंधु भी जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह को अपने पक्ष में कर बादशाह के विरुद्ध कुछ और ही घाट घड़ रहे थे।

महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) की फौजकशी

ऐसे समय में पंचोली बिहारीदास के उद्योग और महाराजा जयसिंह की सिफ़ारिश[2] से बादशाह ने महाराणा के नाम रामपुरे का फ़रमान लिख दिया। इसी प्रकार उक्त बादशाह ने अपने राज्य के पांचवें वर्ष अर्थात् वि० सं० १७७३ (ई० स० १७१७) में डूंगरपुर और बांसवाड़े का फ़रमान भी महाराणा के नाम कर दिया[3]। इसपर महाराणा ने रामपुरा, डूंगरपुर

---

(१) प्रासादवैवाह्यविधिं दिदृक्षुः
कोटाधिपो भीमनृपोऽभ्यगच्छत् ।
रथाश्वपत्तिद्विपनद्धसैन्यो
दिल्लीशसंमानितबाहुवीर्यः ॥ १५ ॥
यो डूंगराख्यस्य पुरस्य नाथो
दिदृक्षया रावलरामसिंहः ।
सोऽप्यागमत्तत्र समग्रसैन्यो
देशान्तरस्था अपि चान्यभूपाः ॥ १६ ॥

वैद्यनाथ की प्रशस्ति, प्रकरण ४।

वीरविनोद; भाग २, पृ० ११७३। मेरा राजपूताने का इतिहास, जि० २, पृ० ६३१।

(२) सूर्यमल्ल; वंशभास्कर, पृ० ३०६३-६४, छंद १०४-११०।

(३) अलीमुहम्मदखां; खातिमा मिराते अहमदी (मूल फ़ारसी), गायकवाड़

और बांसवाड़े के राज्यों को अधीन करने के उद्देश्य से अपने मंत्री पंचोली विहारीदास को ससैन्य रवाना किया। द्वितीय ज्येष्ठ वदि[1] (मई) में पंचोली विहारीदास और काका भारतसिंह ने डूंगरपुर राज्य में प्रवेश कर महारावल पर दबाव डाला, तो उस (महारावल) के सरदारों ने आपस की लड़ाई में अपनी शक्ति क्षीण करना उचित न समझ सेना-व्यय के १२६००० रुपये महाराणा को देने का इकरार किया। वहां से विहारीदास रामपुरे गया, जहां से देवलिया और बांसवाड़ा होकर डूंगरपुर वापस आने पर महारावल के सरदारों ने फलोद के मुक़ाम पर उसके पास जाकर आश्विन सुदि ४ (ता० २७ सितम्बर) को २५००० रुपयों के मूल्य का दंताला हाथी तथा बीस हज़ार रुपये और देना स्वीकार किया। इस रुक्के के सम्बन्ध में महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास ने अपने 'वीरविनोद' में लिखा है—"महारावल रामसिंह पर पंचोली विहारीदास फ़ौज लेकर गया और एक लाख छब्बीस हज़ार रुपये का रुक्का लिखवाकर दूसरा रुक्का न जाने किस मतलब से लिखवाया[2]"। अनुमान होता है कि पहले के रुक्के की तामील होने की सम्भावना न देख दूसरा रुक्का लिखवाया गया हो।

ओरिएंटल सीरीज़, सं० ५०, पृ० २२५। नवाबअली और सेडन ने मिरातेअहमदी के फ़ारसी सप्लीमेंट का अंग्रेज़ी अनुवाद करने में भूलकर उदयपुर, डूंगरपुर और बांसवाड़े का फ़रमान महाराणा रामसिंह के नाम होना लिखा है (गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज़ सं० ४३, पृ० १६०), परन्तु मूल फ़ारसी में स्पष्ट लिखा है कि बादशाह ने डूंगरपुर और बांसवाड़े का फ़रमान उदयपुर के महाराणा संग्रामसिंह के नाम कर दिया था।

(१) सिधश्रीमहाराजाधिराज महाराणा श्रीसंग्रामसिंघजी आदेशातु प्रतदुए पंचोली बिहारीदासजी काका भारतसींघजी सं० १७७३ (चैत्रादि १७७४) वर्षे दूति जेठ[व]दी १४ .... फोज .... ।

देवसोमनाथ के मंदिर के एक छबने के लेख से।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० १०१०।

मुग़ल-साम्राज्य की अवनति और मरहटों का उत्कर्ष देखकर महारावल रामसिंह ने बाहरी आक्रमणों से अपने राज्य को बचाने के लिए पेशवा बाजीराव से संधि कर उसे ख़िराज़ देना स्वीकार किया। फिर वि० सं० १७८५ (ई० स० १७२८) में उक्त पेशवा ने डूंगरपुर और बांसवाड़ा राज्यों का ख़िराज़ वसूल करने का अधिकार धार-राज्य के संस्थापक ऊदाजी पंवार को दिया और नियत ख़िराज़ उस (ऊदाजी पंवार) को देते रहने बाबत महारावल रामसिंह के नाम पत्र लिख भेजा[1]। तदनुसार डूंगरपुर राज्य के ख़िराज़ का सम्बन्ध धार-राज्य से स्थापित होकर प्रतिवर्ष उक्त राज्य के द्वारा वह पेशवा को दिया जाने लगा, परन्तु उच्छृंखल मरहटा अधिकारी राघोजी कदमराव और सवाई काटसिंह कदमराव ने वि० सं० १७८६ (ई० स० १७२९) में डूंगरपुर इलाक़े में लूट मार कर वहां से ११३००० रुपये वसूल किये। पेशवा के पास इसकी शिकायत होने पर उसने उक्त दोनों अफ़सरों को पत्र-द्वारा डाट-डपट बतलाते हुए वहां से जो रुपये उन्होंने वसूल किये थे वे अपने पास मंगवा लिये[2]।

महारावल का बाजीराव पेशवा को ख़िराज़ देना

महारावल रामसिंह के वि० सं० १७५९ से १७८६ (ई० स० १७०३ से १७३०) तक के चार शिलालेख और एक ताम्र-पत्र मिला है[3]। बड़वे की

(१) लेले तथा ओक; धारच्या पवारां चे महत्व व दर्जा; पृ० ३४-३५। यह पत्र ता० २९ शव्वाल (शाहूर सन्) तिसा अशरीन मया व अलफ़=११२९ (ई० स० १७२८ ता० २८ मई=वि० सं० १७८५ ज्येष्ठ सुदि १) का है। मुंशी सफ़दरहुसेन ने डूंगरपुर के इतिहास में लिखा है कि महारावल शिवसिंह ने पेशवा को ३५००० रु० वार्षिक ख़िराज़ देना स्वीकार किया था। उसमें से यह कथन तो ठीक है कि ख़िराज़ के ३५००० रुपये ही दिये जाते थे, परन्तु उसका यह कथन कि 'महारावल शिवसिंह ने ख़िराज़ देना स्वीकार किया', ठीक नहीं है, क्योंकि उपर्युक्त पत्र से महारावल रामसिंह के समय ख़िराज़ की रक़म का स्थिर होना पाया जाता है।

(२) वाड एण्ड पार्सनिस; सिलेक्शन्स फ्रॉम दि सतारा राजाज़ एण्ड दि पेशवाज़ डायरीज़, जिल्द १, पत्र संख्या २१४, पृ० १०१-२।

(३) उपर्युक्त लेखों का विवरण इस प्रकार है—

[अ] वि० सं० १७५९ माघ सुदि ··· (ई० स० १७०३ जनवरी) का गलियाकोट का शिलालेख।

महारावल की मृत्यु और उसके शिलालेख

ख्यात में महारावल का देहान्त वि० सं० १८०७ में होना लिखा है, जो संभव नहीं, क्योंकि उसके समय का सबसे अन्तिम लेख वि० सं० १७८६ (ई० स० १७३०) का और उसके उत्तराधिकारी शिवसिंह का सबसे पहला लेख वि० सं० १७८७ (ई० स० १७३०) का मिला है तथा शिवसिंह की तरफ़ से मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह को चार लाख रुपये देने का रुक्का (आषाढ़ादि) वि० सं० १७८६ (चैत्रादि १७८७) वैशाख सुदि ६ (ई० स० १७३०) को लिखा गया। उससे ज्ञात होता है कि रामसिंह का देहान्त वि० सं० १७८६ (ई० स० १७३०) के अन्त में अथवा १७८७ के प्रारम्भ में हुआ होगा। एक पुरानी याददाश्त में उसकी मृत्यु (आ०) वि० सं० १७८६ (चैत्रादि १७८७) चैत्र सुदि ५ (ई० स० १७३० ता० १३ मार्च) शुक्रवार को होना लिखा है, जो ठीक है।

महारावल के चार पुत्र—उदयसिंह, बख्तसिंह[1], उम्मेदसिंह और

[आ] वि० सं० १७७३ शाके १६३८ आषाढ़ (ई० स० १७१६ जून) का सरोदे गांव के तालाब की पाल के मंदिर का शिलालेख।

[इ] वि० सं० १७७४ कार्तिक सुदि ६ (ई० स० १७१७ ता० १ नवम्बर) रामसोर गांव के माफ़ीदारों से मिला हुआ ताम्रपत्र।

[ई] वि० सं० १७८१ श्रावण सुदि २ (ई० स० १७२४ ता० ११ जुलाई) का गलियाकोट का शिलालेख।

[उ] वि० सं० १७८६ (अमांत) माघ (पूर्णिमांत फाल्गुन) वदि ६ (ई० स० १७३० ता० २६ जनवरी) शुक्रवार की डूंगरपुर के मगनेश्वर महादेव के मन्दिर की प्रशस्ति, जिसमें नागर जाति के पंचोली मगनेश्वर-द्वारा उक्त मन्दिर के बनाने का उल्लेख है।

(१) कुंवर बख्तसिंह ने गांव ओवरी में जोशी सहदेव को एक घर (आषाढ़ादि) वि० सं० १७७२ (चैत्रादि १७७३, अमांत) ज्येष्ठ (पूर्णिमांत, आषाढ) वदि १० को दान किया था, जैसा कि उसकी सनद से पाया जाता है। संभव है कि वह गांव उस समय उसकी जागीर में हो। डूंगरपुर राज्य के राणीमंगे की ख्यात में बख्तसिंह की मृत्यु भीलों की पाल पर चढ़ाई के समय होना लिखा है।

शिवसिंह[1] हुए। उनमें से शिवसिंह को उसने अपना युवराज बनाया[2] था।

महारावल की संतति

उसकी एक राणी का नाम ज्ञानेश्वरी[3] (ज्ञानकुंवर) था, जिसके गर्भ से कुंवर शिवसिंह का जन्म हुआ था।

महारावल रामसिंह वीर और व्यवहार-कुशल राजा था। स्वभाव उग्र होने के कारण कभी कभी वह अनुचित बातें भी कर बैठता[4] था। दूरदर्शी होने से ही उनसे अपने भावी रक्षण के विचार से पेशवा बाजीराव से संधि की, परन्तु उसने अपनी प्रीति-पात्र राणी ज्ञानकुंवर के पुत्र को, जो उसका चौथा कुंवर था, राजपूतों की रीति के विरुद्ध अपना उत्तराधिकारी बनाकर बखेड़ा खड़ा कर दिया, जिससे राज्य को बहुत ही हानि उठानी पड़ी। उसने भीलों का दमन कर उनपर अपना

महारावल का व्यक्तित्व

---

(१) डूंगरपुर राज्य के बड़वे की ख्यात; पृ० ७५, ७६ राणीमंगे की ख्यात; पृ० २३। एर्स्की मेके; दि नेटिव चीफ्स एण्ड देअर स्टेट्स में भी शिवसिंह को रामसिंह का छोटा पुत्र और बख्तसिंह को उससे बड़ा बतलाया है। ई० स० १८७८ का संस्करण; भाग १, पृ० ३७।

(२) स्वस्ति श्रीसंव(त्) १७८६ वर्षे मासोत्तम माघ वदि ६ भृगौ अत्र दिने। अद्येह श्रीगिरिपुरे महाराजाधिराजमहाराओल श्रीरामसिंहजी विजयराज्ये। कुमार श्रीशिवसिंहजी युवराज्यस्थिते········।

डूंगरपुर के मगनेश्वर महादेव के मन्दिर की प्रशस्ति।

(३) यस्मिन् दिव्यति रा(मसिंह)नृपतिः श्रीसूर्यवंशोद्भवः
क्षात्रो धर्म इवापरो रघुपती रामो यथा राजते।
यस्यास्ते शिवसिंह नाम तनुजो यो यौवराज्ये स्थितो
राज्ञी ज्ञानकुंएरबाइ विदिता नाम्ना गुणैर्भूषिता॥ ४॥

वही।

(४) ऐसा भी प्रसिद्ध है कि उस(रामसिंह)ने अपने पिता (खुंमाणसिंह) के प्रधान खड़ायता जाति के महाजन को पहले की अदावत से मरवा दिया और कीर्तिसिंह चूंडावत को गोली से मारा, जिसकी मूंडकटी में उस(कीर्तिसिंह)के वंशजों को रामगढ़ की जागीर देनी पड़ी।

आतंक जमाया, जिससे उसके समय में चोरी व डकैती बन्द हो गई और राज्य में व्यापारियों आदि को बड़ा चैन रहा। गुजरात की तरफ़ लूणावाड़ा और कडाणा तक उसने अपनी अमलदारी बढ़ा ली[1] थी। मालवे का मार्ग, जो चोरों के भय से बन्द था, उसके समय में फिर खुल गया[2]। उसने अपने नाम से रामगढ़ गांव बसाया और डूंगरपुर में रामपोल दरवाज़ा बनाया।

शिवसिंह

अपने पिता का चौथा पुत्र होने पर भी महारावल शिवसिंह वि० सं० १७८७ (ई० स० १७३०) में डूंगरपुर राज्य का स्वामी हुआ, जिसपर वहां बखेड़ा खड़ा हो गया। ऐसे में महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) ने भी उसमें हस्ताक्षेप किया। अंत में उसने चार लाख रुपये महाराणा को देना स्वीकार[3] कर उसे राज़ी किया। मेवाड़ के इतिहास 'वीर-विनोद' के कर्त्ता महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास ने लिखा है—"यह रुक्का पूरे दबाव के साथ लिखाया गया होगा, क्योंकि पहले डूंगरपुर से इतने रुपये कभी नहीं लिये गये थे[4]"।

मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) का डूंगरपुर पर दबाव डालना

वि० सं० १७९२ (ई० स० १७३५) में उदयपुर के महाराणा जगतसिंह (दूसरे) के बुलाने पर पेशवा बाजीराव लूणावाड़ा की तरफ़ से जाता हुआ मार्ग में डूंगरपुर ठहरा। एक पुरानी ख्यात में लिखा है कि महारावल ने उसको तीन लाख रुपये देकर विदा किया।

बाजीराव पेशवा का डूंगरपुर जाना

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० १०११।

(२) नवाबअली और सेडन; मिरातेअहमदी के ख़ातिमे (सप्लीमेंट) का अंग्रेज़ी अनुवाद, गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज़, सं० ४३, पृ० १९०।

(३) वीरविनोद, भाग २, पृ० १०११। उपर्युक्त चार लाख रुपये के रुक्के की नकल वीरविनोद में मुद्रित हुई है, जिसपर स्वीकृति के रूप में महारावल शिवसिंह, भंडारी गणेश और गांधी गोकल के हस्ताक्षर हैं।

(४) वही; भाग २, पृ० १०१२।

महारावल शिवसिंह

इंदोर राज्य का संस्थापक प्रसिद्ध मल्हारराव होलकर वि० सं० १८०२ (ई० स० १७४६) में गुजरात की तरफ़ से डूंगरपुर गया। वहां से उसने सिंधिया की तरफ के कोटा के एजेन्ट बालाजी यशवन्त गुलगुले और कोटा के कमाविसदार हरिवल्लाल को फाल्गुन सुदि ५ (ता० १४ फरवरी) के पत्र में लिखा कि पावागढ़ आदि का काम कर मैं डूंगरपुर आ गया हूं और अब यहां से उदयपुर होकर हाड़ोती जाने का मेरा विचार है। इसी तरह एक पत्र उसने पेशवा (बालाजी बाजीराव) को लिखा कि मैं डूंगरपुर प्रान्त को गया, जहां एक अरसे से कोई मराठी सेना नहीं गई थी। इसलिए मुझको वहां जाकर प्रबन्ध करना आवश्यक था[1]। मल्हारराव होलकर की इस चढ़ाई का क्या परिणाम हुआ, यह अभी तक अनिश्चित है। संभव है कि महारावल ने कुछ रुपये दे-दिलाकर उसको वहां से विदा किया हो[2]।

मल्हारराव होलकर का डूंगरपुर जाना

महारावल ने मेवाड़ के महाराणाओं से अपना व्यवहार बना रक्खा। वि० सं० १८४१ (ई० स० १७८४) में महाराणा भीमसिंह ब्याह करने ईडर गया, उस समय महारावल

महाराणा भीमसिंह का डूंगरपुर जाना

(१) शिंदेशाही इतिहासांचीं साधनें; भाग २, लेखांक ३७, पृ० २९-३० (आनंदराव भाऊ फाळके-द्वारा संपादित)।

(२) डूंगरपुर राज्य के बड़वे की ख्यात में लिखा है कि महारावल शिवसिंह के समय मल्हारराव होल्कर ने वि० सं० १८३७ में एक दिन पिछली रात को आकर डूंगरपुर पर अपना अधिकार कर लिया। उस समय महारावल शिवसिंह अपने कुटुम्ब आदि को लेकर लींबरवाड़े की पाल में चला गया। पन्द्रह दिन बाद फिर उसने अपने सब सरदारों को साथ लेकर दिन अस्त होते समय मल्हारराव की सेना पर आक्रमण कर उसको तितर-बितर कर माही नदी के किनारे तक भगा दिया। उस युद्ध के समय मल्हारराव होल्कर का प्रमुख सरदार बादलमहल में मारा गया। ऐतिहासिक कसौटी पर जांच करने से पता लगता है कि मल्हारराव होल्कर पर विजय पाने की बड़वे की यह सारी कथा कपोल-कल्पित है, क्योंकि मल्हारराव होल्कर का देहान्त वि० सं० १८२३ (ई० स० १७६६) में हो चुका था और वि० सं० १८३७ (ई० स० १७८०) में इन्दोर का शासन प्रसिद्ध अहल्याबाई करती थी।

भी उसकी बरात में सम्मिलित हुआ। ईडर से लौटते समय उसने महाराणा को डूंगरपुर में मेहमान किया[1]।

लगभग ५५ वर्ष राज्य करने के पश्चात् वि० सं० १८४२ (ई० स० १७८५) में वह परलोक सिधारा। उसके समय के ६ ताम्रपत्र और २१ शिलालेख मिले हैं। उनमें सबसे पहला सागवाड़े से मिला हुआ वि० सं० १७८७ भाद्रपद (ई० स० १७३० अगस्त) का शिलालेख और अन्तिम (आषाढ़ादि) वि० सं० १८४१ (चैत्रादि १८४२) द्वितीय चैत्र सुदि २ (ई० स० १७८५ ता० ११ अप्रैल) का नंदोड़ा गांव से मिला हुआ ताम्रपत्र है।

महारावल का देहांत और उसके शिलालेखादि

महारावल शिवसिंह वीर, बुद्धिमान, राजनीतिज्ञ और दानी राजा था। उसने अपनी प्रजा के हित के लिए शासन-प्रबन्ध में कई सुधार किये। ५५ रु० भर का नया शिवसाही सेर अपने राज्य में सर्वत्र जारी कर ऐसी व्यवस्था कर दी कि लोगों को कोई व्यापारी कम न दे। कपड़े नापने का नया गज़ बनाया गया, जिससे उसके राज्य में सर्वत्र एक नाप से कपड़ा मिलने लगा। उसने दरबार के समय शिवसाही पगड़ी बांधने का तरीक़ा निकाला। वह काव्य का ज्ञाता और शिल्प का प्रेमी था। अपनी कल्पना के अनुसार उसने नये प्रकार का झरोखा बनवाया, जो शिवसाही झरोखे के नाम से प्रसिद्ध हुआ। नगर में उसी तरह के झरोखे बनने लगे, जिससे राजधानी की शोभा में वृद्धि होने लगी। ऐसे झरोखे बनानेवालों को वह बनाबनाया झरोखा बिना मूल्य देता था। उसने राज-भवन को दुरुस्त कराया, त्रिपोलिया नाम का सुंदर दरवाज़ा बनवाया और गैबसागर तालाब के तट पर अपनी माता की स्मृति में शिवज्ञानेश्वर शिवालय,[2] दक्षिण कालिका[3] का मंदिर और चतुरस्रकुंड

महारावल का व्यक्तित्व

(१) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण १५, पृ० १६।

(२) डूंगरपुर के शिवज्ञानेश्वर महादेव की वि० सं० १८१३ माघ सुदि ५ (ई० स० १७५७ ता० २४ जनवरी) चन्द्रवार, उत्तराभाद्रपद नक्षत्र की प्रशस्ति।

(३) डूंगरपुर के दक्षिण कालिका के मंदिर की (आषाढ़ादि) वि० सं० १८३४ (चैत्रादि १८३५) वैशाख सुदि ७ (ई० स० १७७८ ता० ३ मई) रविवार की प्रशस्ति।
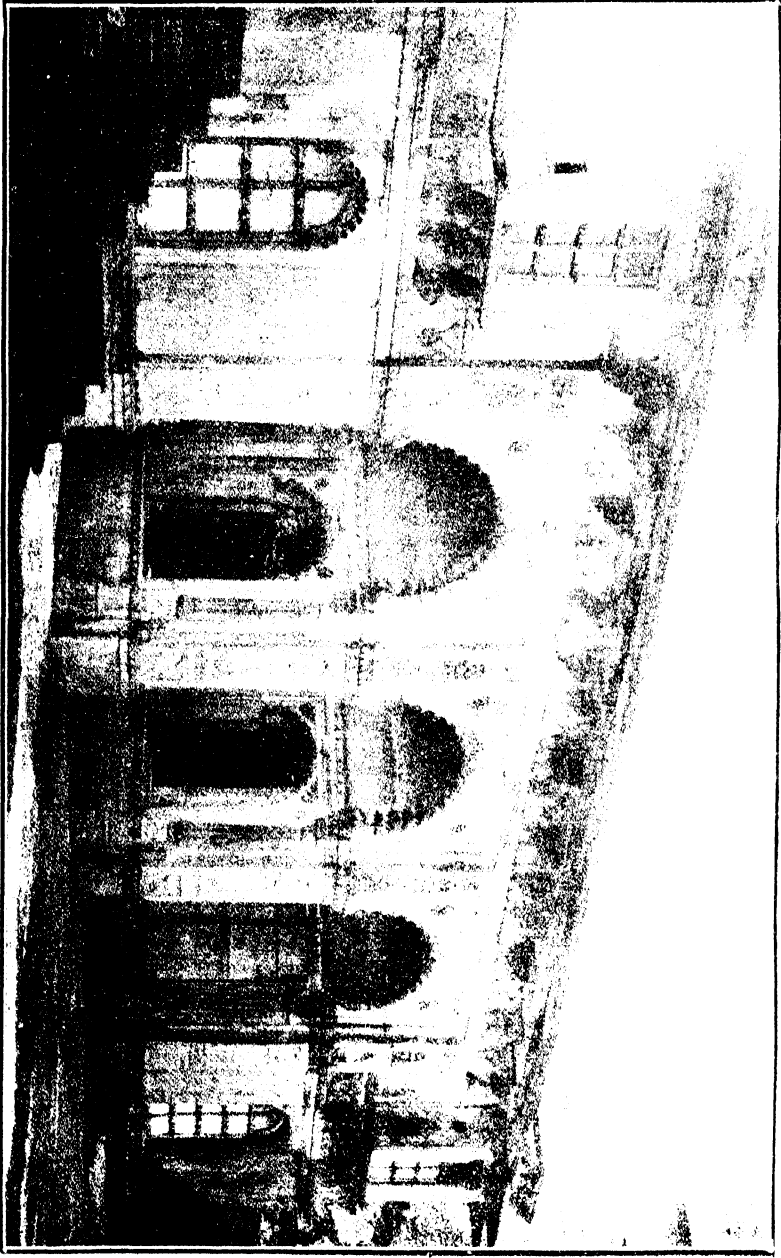
बनवाया, जो उदयविलास महल के अंतर्गत है[1]। राजधानी डूंगरपुर के कोट की मरम्मत करवाई और धन्ना माता की मगरी पर गढ़ तैयार कराया। उसकी प्रजा संपन्न थी, जिससे राज्य में कई देवालय आदि बने। खेती के लिए नये कुएं खुदवाये गये और खेड़ा गांव में रंगसागर (रणसागर) तालाब भी बना। वह व्यापार को प्रजा की उन्नति का मुख्य साधन समझता था, इसलिए उसने बेणेश्वर के मेले को, जो महारावल आसकरण ने जारी किया था, उत्तेजन दिया और अपनी राजधानी में एक मास तक शिवज्ञानेश्वर का मेला भरवाना आरंभ किया। उसके शासन काल में राज्य की जनसंख्या अच्छी बढ़ी और कहा जाता है कि उसके समय में राजधानी डूंगरपुर में दस हज़ार घरों की बस्ती थी। वह संस्कृत का ज्ञाता, काव्य-प्रेमी और आगन्तुक विद्वानों का यथेष्ट सत्कार करता था। उसने मारवाड़ के कविया करणीदान को लाख पसाव दिया[2] और कितने ही अन्य चारणों तथा ब्राह्मणों को गांव तथा ज़मीन दी। उसने चौहान सुरतानसिंह को मांडव और चौहान बलवंतसिंह को सेमलवाड़े की जागीर दी थी।

महारावल की संतति

उसकी १३ राणियों से पांच कुंवर—सूरजमल, चांदसिंह, ज़ालिमसिंह, विजयसिंह और बैरिशाल—तथा दो कुंवरियां—रुद्रकुंवरी और चमनकुंवरी—हुई। उसकी राणियों में से फूलकुंवरी ने, जो आमझरा के राठोड़ लालसिंह की पुत्री थी, अपने नाम से फूलेश्वर महादेव का मन्दिर बनवाकर वि० सं० १८३६ माघ सुदि ५ (ई० स० १७८० तारीख़ १० फ़रवरी) गुरुवार को उसकी प्रतिष्ठा की[3]।

(१) उपर्युक्त शिवज्ञानेश्वर के मंदिर की प्रशस्ति में 'महाराजाधिराज', 'रायरायां' और 'महारावल' के अतिरिक्त उसकी 'महि-महेंद्र' उपाधि भी मिलती है।

(२) वीर-विनोद; भाग २, पृ० ६६६।

(३) डूंगरपुर के फूलेश्वर महादेव के मंदिर की वि० सं० १८३६ माघ सुदि ५ गुरुवार की प्रशस्ति।

नवां अध्याय

महारावल वैरिशाल से महारावल जसवन्तसिंह तक

वैरिशाल

वि० सं० १८४२ (ई० स० १७८५) में महारावल वैरिशाल की गद्दी-नशीनी हुई।

उन दिनों मुग़ल-साम्राज्य की शक्ति बहुत ही क्षीण हो चुकी थी और दिल्ली की बादशाहत नाम-मात्र की रह गई थी। उसका अस्तित्व उसके अमीरों एवं मरहटों की कृपा पर निर्भर था।

तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति

मरहटों ने उत्तरी-भारत में अपना आतंक जमाकर राजपूताने आदि के राज्यों से चौथ (ख़िराज) लेना आरंभ कर दिया था, परन्तु उनमें स्वार्थ की मात्रा अधिक थी। पेशवा के होल्कर, सिंधिया, गायकवाड़ आदि सेनापति शक्तिशाली बनते जाते थे, जिससे पेशवा की शक्ति क्षीण होने लगी। होल्कर और सिंधिया के निरंतर आक्रमणों से राजपूताने की बड़ी दुर्दशा हुई तथा यहां के नरेश इतने शक्तिहीन हो गये कि बाहरी सहायता के बिना वे अपने घरेलू झगड़ों का निबटेरा भी नहीं कर सकते थे। ऐसे अशांत वातावरण में विजयी अंग्रेज़ जाति को अपनी सत्ता दृढ़ करने का अच्छा अवसर मिला और क्रमशः आगे बढ़कर वह यथावसर उन लोगों को दबाने लगी, जो उसकी उन्नति में बाधक थे।

ऐसी भयंकर परिस्थिति और लूटखसोट के दिनों में भारतवर्ष में कई एक नवीन राज्यों का अभ्युदय हुआ। कितने ही राज्य विलीन हो गये और कतिपय प्राचीन राज्यों के अस्तित्व में भी संदेह होने लगा। राजपूताने के प्रमुख राज्य उदयपुर की तो होल्कर और सिंधिया की सेनाओं-द्वारा बहुत ही दुर्दशा हुई और जयपुर, जोधपुर, बूंदी आदि अन्य राज्यों को भी बहुत हानि पहुंची। ऐसी दशा में डूंगरपुर जैसा राज्य कैसे बच सकता था।

महारावल वैरिशाल ने राज्यारूढ होकर अपने पिता की नीति की अवहेलना की और महारावल शिवसिंह के समय के मंत्री तुलसीदास गांधी को पदच्युत कर उसके स्थान पर भूमा (भामा) बखारिया को, जो महारावल शिवसिंह की उपपत्नी (पासवान) रंगराय का कृपापात्र था, मंत्री बनाया। उसने मंत्री होते ही सब से पहले भूतपूर्व मंत्री तुलसीदास को क़ैद करना चाहा, पर वह मोड़ासे चला गया। कुछ समय पश्चात् भामा के संकेतानुसार सलूंबर जाते हुए उस (तुलसीदास) को परसाद गांव के पास घेरकर भीलों ने मार डाला। मंत्री भामा अत्यंत क्रूर-हृदय था। प्रतिदिन महारावल के पास उसके अत्याचार की शिकायत होने लगी, जिससे विवश हो महारावल ने उसको पृथक् कर दिया। तब उसने मेवाड़ में जाकर महारावल के विरुद्ध षड्यंत्र रचा, जिसपर महारावल ने उसके मित्र माधवसिंह सोलंकी को अपनी ओर मिलाकर उसके द्वारा, जब वह (भामा) राजद्रोही सेना के साथ डूंगरपुर की सीमा पर पड़ा हुआ था, उसे मरवा डाला।

मंत्रियों का परिवर्तन

इस अशान्त वातावरण में केवल पांच वर्ष तक राज्य भोगने के अनंतर वि० सं० १८४७ (ई० स० १७९०) में महारावल वैरिशाल का स्वर्गवास हुआ। उक्त महारावल के राज्य-समय राज्य को बड़ी हानि पहुंची। उस (वैरिशाल) की पटराणी शुभकुंवरी घाणेराव (मारवाड़) के मेड़तिया राठोड़ वीरमदेव की पुत्री[1] थी, जिसके गर्भ से कुंवर फ़तहसिंह का जन्म हुआ, जो डूंगरपुर का स्वामी बना। उक्त महाराणी ने डूंगरपुर में मुरलीमनोहर का मन्दिर बनवाकर (आषाढ़ादि) वि० सं० १८५६ (चैत्रादि १८५७) शाके १७२२ वैशाख सुदि ६ (ई० स० १८०० ता० ३० अप्रेल) बुधवार पुनर्वसु नक्षत्र के दिन उसकी प्रतिष्ठा की। महारावल वैरिशाल के समय के वि० सं० १८४२ से १८४६ तक के तीन शिलालेख और तीन ताम्रपत्र मिले हैं, जिनमें

महारावल वैरिशाल का देहांत

---

(१) डूंगरपुर के मुरलीमनोहर के मंदिर की वि० सं० १८५६ (चैत्रादि १८५७) की प्रशस्ति।

सबसे पहला शिलालेख वि० सं० १८४२ शाके १७०७ श्रावण सुदि ६ (ई० स० १७८५ ता० ११ अगस्त) गुरुवार और अंतिम ताम्रपत्र वि० सं० १८४६ (अमांत) आश्विन (पूर्णिमांत कार्तिक) वदि ६ (ई० स० १७८९ ता० १३ अक्टोबर) का है।

फ़तहसिंह

अपने पिता वैरिशाल का परलोकवास होने पर वि० सं० १८४७ (ई० स० १७९०) में फ़तहसिंह डूंगरपुर राज्य का स्वामी हुआ।

महाराणा भीमसिंह की डूंगरपुर पर चढ़ाई

वि० सं० १८५० के फाल्गुन मास (ई० स० १७९४ मार्च) में उदयपुर का महाराणा भीमसिंह पुनः अपना विवाह करने को ईडर गया। इस अवसर पर डूंगरपुर से महारावल फ़तहसिंह उसकी बरात में सम्मिलित न हुआ, जिसपर मुसाहबों की सलाह से ईडर से लौटते हुए महाराणा (भीमसिंह) ने डूंगरपुर को घेर लिया। उस समय उसके साथ शाहपुरे का राजा भीमसिंह, बनेड़े के राजा हंमीरसिंह का पुत्र भीमसिंह, कुरावड़ का रावत अर्जुनसिंह, बागोर का महाराज शिवदानसिंह, महाराज भैरवसिंह (बाघसिंहोत), शिवरती का महाराज सूरजमल, कारोई का महाराज बख्तावरसिंह तथा सिंधिया के मेवाड़ के सूबेदार आंबा इंग्लिया का नायब गणेशपंत व सिंधी जमादार सादिक और चंदन अपनी अपनी सेनाओं के साथ मौजूद थे। ऐसे में देवगढ़ का रावत गोकुलदास, आमेट का रावत प्रतापसिंह तथा आंबा इंग्लिया का छोटा भाई बालेराव भी आठ हज़ार सेना और २५ तोपों के साथ वहां आ पहुंचे। इसपर महारावल फ़तहसिंह ने तीन लाख[1] रुपये देने का रुक्का लिख

(१) सिवसिंह सुवन अरिसाल जांम।
गिरपुर नरेस फतमाल तांम॥
कछु कीन जोम जिन मत मएड।
तिन सीस कीय त्रय लक्ख डंड॥

महाबा कृष्ण कवि; भीमविलास (हस्तलिखित) पृ० ११५, छंद सं० २६।

दिया[1] और स्वयं महाराणा के पास उपस्थित हुआ। महाराणा ने वहां से बांसवाड़े की ओर प्रस्थान किया। तब वहां के स्वामी विजयसिंह ने अपने सरदार गढ़ी के चौहान जोधसिंह को महाराणा की सेवा में भेज दिया, जिसने महाराणा को तीन लाख रुपये देना स्वीकार किया[2]।

महारावल फ़तहसिंह एक अयोग्य शासक था। वह रात दिन शराब के नशे में उन्मत्त रहता था। उसने झामा दखारिये के पुत्र पेमा को मन्त्री बनाया, जो झामा के जैसा ही अत्याचारी था। महारावल की शराबखोरी यहां तक बढ़ गई कि एक दिन शराब के नशे में उसने अपनी राणी को तलवार से मार डाला। राजमाता मेड़तणी शुभकुंवरी ने, जो बड़ी बुद्धिमती थी, अपने पुत्र (फ़तहसिंह) की यह दशा देखकर राज्य को बरबादी से बचाने के लिए मन्त्री पेमा-द्वारा उसको बंदी करवा दिया[3] और स्वयं राज-कार्य चलाने लगी।

महारावल फ़तहसिंह का राज्यमाता-द्वारा बंदी होना

सरदारों को शासन प्रबन्ध में राजमाता का हस्तक्षेप नितांत अनुचित जान पड़ा। उन्होंने उस (राजमाता) के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा और उस कार्य में सफल होने के लिए मन्त्री पेमा का वध करना चाहा। इस काम के लिए उन्होंने ऊंमा सूरमा को नियत किया, जो इन्हीं दिनों कोतवाल बनाया गया था। कोतवाल के पद का सिरोपाव लेकर उस (ऊंमा) को अपने मकान के नीचे जाता देख मंत्री पेमा ने प्रसन्नता प्रकट कर उसे अपने यहां अफ़ीम पीने के लिए बुलाया। वह (ऊंमा) तो उसको मारने के उपयुक्त अवसर की

विरोधी सरदारों का उपद्रव और मन्त्री पेमा की मृत्यु

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० १०१२। म० म० कविराजा श्यामलदास ने अपने वीरविनोद के प्रकरण चौदहवें में महाराणा भीमसिंह के वृत्तांत में महारावल फ़तहसिंह से तीन लाख रुपये लेना लिखा है, परन्तु डूंगरपुर के इतिहास में उसने तीन लाख रुपये का रुक्का लिखाना बतलाया है।

(२) वीरविनोद; भाग २, प्रकरण पंद्रहवां, पृ० २१। अहाड़ा कृष्ण कवि; भीमविलास, पृ० ११६।

(३) सैयद सफ़दरहुसेन-लिखित 'डूंगरपुर राज्य का गैज़ेटियर' (उर्दू) का हिन्दी अनुवाद (हस्तलिखित), पृ० १६।

प्रतीक्षा में ही था अतएव अपनी कार्यसिद्धि के लिए उसे यह अवसर उचित जान पड़ा। तत्क्षण वह पेमा की बैठक में गया और झरोखे में बैठे हुए उस-पर उसने तलवार का वार किया। मरते मरते उसने भी कटार से ऊमा को घायल कर दिया, परन्तु वह भागकर महलों में चला गया। इस घटना से राज्य में दो दल हो गये। एक महारावल फ़तहसिंह को बंदीगृह से मुक्त करना चाहता था, जिसका मुखिया ऊमा सूरमा था; और दूसरा राज्य को दुर्दशा से बचाना चाहता था, जिसका मुख्य सहायक राज-माता का भाई सरदारसिंह था।

राजमाता के अनुयायियों-द्वारा मंत्री तिलोकदास का मारा जाना

पेमा की मृत्यु के पीछे शंकरदास गांधी मंत्री बना, परन्तु उसने भय के मारे शीघ्र ही त्याग-पत्र दे दिया। फिर बनकोड़ा के ठाकुर भारतसिंह और मांडव के ठाकुर प्रतापसिंह ने मंत्री की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया, जिससे तिलोकचन्द महता ने मंत्री बनना स्वीकार किया। उस समय ख़ज़ाने में रुपयों का अभाव था, इसलिए लोगों ने राजमाता को नवीन मंत्री से प्रचुर द्रव्य लेने की सुझाई। तिलोकचन्द के रुपये न देने पर राजमाता के दल ने उसको राज्य का अहितचिन्तक समझकर मार डालने का विचार किया। यह ख़बर पाते ही उसने प्रधान का पद छोड़ दिया, तो भी उसके शत्रु शांत न हुए। उस (तिलोकचन्द) के सहायकों में बनकोड़ा और मांडव के सरदार थे, अतः उनके रहते किसी का साहस न हुआ कि उसके प्राण ले। कुछ दिनों बाद जब वे दोनों सरदार अपने अपने ठिकानों में चले गये, तब तिलोकचन्द के प्रतिपक्षियों को अवसर मिल गया और एक दिन उन्होंने माधवसिंह सोलंकी के द्वारा फांसी दिलवाकर उसे मरवा डाला।

मेड़तिया सरदारसिंह का बनकोड़ा के सरदार भारतसिंह को मार डालना

यह समाचार सुनकर बनकोड़ा और मांडव के सरदार बहुत क्रुद्ध हुए और वे सलूंबर से सहायता लेकर डूंगरपुर की तरफ बढ़े। राजमाता को सरदारों के सेना लेकर आने का संवाद ज्ञात हुआ तो उसने अपने भाई

सरदारसिंह को, जो आसपुर में था, उनको सज़ा देने की आज्ञा दी। विहाणां गांव के पास दोनों सेनाओं में लड़ाई हुई, जिसमें दोनों तरफ़ के पच्चीस पच्चीस आदमी मारे गये। अंत में सरदारसिंह ने बनकोड़ा के ठाकुर भारतसिंह को इस झगड़े को मिटा देने के लिए बातचीत करने को अपने पास बुलाया। ज्योंही वह उससे मिलने गया, त्योंही उसने तलवार का वार कर उसे मार डाला।

होलकर के सेनापति जेनरल रामदीन का सरदारों को शांत करना

भारतसिंह की मृत्यु से सरदारसिंह को विश्वास था कि राजमाता के विरोधियों का अंत हो जायगा, परन्तु वैसा न हुआ, क्योंकि अन्य सरदार भी उत्तेजित हो उठे और उन्होंने अपने विरोधियों का मूलोच्छेद करने का संकल्प कर लिया। उन्होंने होल्कर के सेनापति जेनरल रामदीन[1] के पास, जो बांसवाड़े में पड़ा हुआ था, सहायता के लिए अपना दूत भेजा और उसे प्रलोभन देकर डूंगरपुर आने के लिए कहलाया। दूरदर्शी सरदारसिंह

(१) रामदीन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधीन के भारतीय प्रदेश का रहनेवाला ब्राह्मण था। वह पहले पहल जसवन्तराव होल्कर की अरदली में नियत हुआ, फिर वह अपने ही देशवासी दयाराम जमादार का, जो एक सच्चरित्र तथा प्रभावशाली व्यक्ति था, प्रीति-पात्र बन गया। दयाराम ने माहेश्वर में उसे नियत कराया तो अपनी उन्नति के लिए उसने वहां के लोगों को लूटा। उसका व्यवहार अत्यन्त निर्दयतापूर्ण था, जिससे उसकी शिकायतें होने लगीं। इसपर तुलसीबाई (जसवंतराव होल्कर की विधवा राणी) ने उसे क़ैद करवा लिया, किंतु वह अमीरख़ां के, जिसे उसकी लूट का हिस्सा मिला करता था, प्रयत्न से मुक्त हो गया। वह तुलसीबाई की मुख्य सलाहकार मीनाबाई तथा अन्य व्यक्तियों को घूस दिया करता, जिससे राज्य की ओर से उसे ख़िलअत, झंडा तथा सूबेदार का पद भी प्राप्त हो गया। पहले तो उसके पास केवल १०० सवार और दो तोपें थीं, किंतु अपनी सफलता के साथ साथ वह अपनी सेना भी बढ़ाता गया, जिससे उसके पास ४ बटालियन हो गईं। तत्पश्चात् मीनाबाई की सिफ़ारिश से उसे तोपख़ाना भी मिल गया। उसकी इस बढ़ती से पश्चिमी मालवे में बहुत आतंक एवं भय छा गया। इसके बाद उसे जेनरल का पद भी मिल गया, जिससे वह लोगों से खूब धन लूटने लगा। इस प्रकार उसके द्वारा मालवे की बड़ी दुर्दशा हुई। वह बड़ा ही झूठा, कमीना, ख़ुशामदी, घमंडी, हृदयहीन एवं सिद्धांत-रहित व्यक्ति

भी शान्त न था। उसने रात्रि के समय मरहटा भेष में उन (मरहटों) की छावनी में प्रवेश किया और विद्रोही सरदारों के दूत को मार डाला। उधर राजमाता ने अपने विश्वसनीय कर्मचारी जवाहिरचन्द खड़ायता को बहुत कुछ द्रव्य देकर जेमरल रामदीन के पास भेजा और उसे विद्रोही सरदारों का साथ छोड़ देने के लिए कहलाया। इसपर उस (रामदीन) ने उनका साथ छोड़ दिया और वनकोड़ावालों को मूंडकटी में एक गांव दिलवा दिया।

विरोधी सरदारों का षड्यंत्र और राजमाता की मृत्यु

इस कार्य के लिए प्रजा से अत्याचार-पूर्वक रुपये लिये गये, जिससे सब लोग राजमाता के शत्रु हो गये और उसके दल के कितने ही लोगों ने उसका साथ छोड़ दिया। राजमाता के विरुद्ध षड्यंत्र तो पहले से ही चल रहा था। अब विरोधियों को अच्छा मौक़ा मिल जाने से उन्होंने राजमाता को मार डालने का दिन निश्चय कर नियत समय पर आ जाने के लिए अपने पक्ष के सरदारों को पत्र भेजे। संयोग से ऊंमा सूरमा के नाम का पत्र, जिसमें इस सारे षड्यंत्र का ब्यौरा था और जिसे रतनचन्द गांधी ने लिखा था, राजमाता के भाई सरदारसिंह को मिल गया। जांच पड़ताल से यह पत्र रतनचन्द का लिखा प्रमाणित हुआ, जिससे वह गिरफ़्तार कर लिया गया। उसने आम दरबार में इस पत्र का अपने हाथ का लिखा होना स्वीकार किया, जिसपर राज-माता की आज्ञानुसार वह तोप से उड़ा दिया गया। पूर्व-संकेतानुसार नियत दिन विद्रोही सरदार राजधानी में आने लगे। जब वे सब आ चुके तो उनको राजमाता के सहायकों ने घेर लिया। उस समय ऐसा ज्ञात होता था कि अब राजमाता के विरोधियों का अन्त होनेवाला ही है, पर पासा उलटा पड़ा, क्योंकि ऊंमा सूरमा किसी तरह उस घेरे में से निकल गया। उसने अपने राजपूतों को एकत्र कर राजमहलों पर

था। राजपूताने में भी वह जहां गया वहां लोगों के साथ ऐसा ही पाशविक व्यवहार कर निर्दयतापूर्वक धन लूटता रहा।

मालकम; मेमोइर्स ऑव सेन्ट्रल इंडिया, जि० १, पृ० २७६-७७।

आक्रमण किया, जिसमें राजमाता के सहायकों की पराजय हुई। विद्रोहियों ने आगे बढ़कर राजमाता को मार डाला[1], राजमहलों को लूटा और जो कुछ हाथ लगा उसे लेकर वे चलते बने।

महारावल का बंदीगृह से मुक्त होना और ऊंमा सूरमा को मरवाना

राजमाता के मारे जाने पर महारावल फतहसिंह बंदीगृह से मुक्त हुआ, परन्तु बहुतेरे सरदार ऊंमा सूरमा का साथ छोड़कर महारावल के पास हाज़िर हो गये। राजमाता के मारे जाने पर कुछ सरदार अप्रसन्न हुए और उस घटना के पंद्रह दिन पश्चात् ही मांडव के ठाकुर प्रतापसिंह का पुत्र दुर्जनसिंह ऊंमा को पकड़ लाया। तत्काल ही महारावल ने उसका उसी स्थान पर वध करवाया, जहां राज-माता का वध हुआ था। फिर उसने इस सेवा के बदले में दुर्जनसिंह को ठाकरड़े का पट्टा दिया।

डूंगरपुर पर उदयपुर के महाराणा भीमसिंह की पुनः चढ़ाई

इस प्रकार डूंगरपुर राज्य की स्थिति बिगड़ रही थी। इतने में उदयपुर का महाराणा भीमसिंह वि० सं० १८५५ ज्येष्ठ (ई० स० १७९९ मई) में ईडर के महाराजा गंभीरसिंह की बहिन चन्द्रकुंवरी से विवाह करने को तीसरी बार ईडर गया। वहां से लौटते समय उसने डूंगरपुर को घेर लिया और वहां से रुपये लिये[2]। ज्ञात होता है कि पहले के रुक्के के तीन लाख रुपये वसूल न होने से ही महाराणा ने डूंगरपुर को घेरा होगा, क्योंकि इस दूसरी बार की चढ़ाई का कारण उदयपुर राज्य के इतिहास में कुछ भी नहीं लिखा है।

वि० सं० १८६२ (ई० स० १८०५) में दौलतराव सिंधिया ने उदयपुर

(१) सैयद सफदरहुसेन; डूंगरपुर राज्य के गैज़ेटियर (उर्दू) का हिंदी अनुवाद (हस्तलिखित), पृ० १६।

(२) पचावन अरु जेठ महि, ईडर तृतीय विवाह।
वहन नरिंद गंभीर की, परनी भीम उमाह॥ ४१॥
पीछे आवत डंड लिय गिरपुर वंसबहाल॥...॥ ४२॥
अढाढा कृष्णकवि; भीमविलास काव्य (हस्तलिखित), पृ० १२०।

में आकर वहां से १६०००० रुपये वसूल किये। फिर उसने अपने एक सेनाध्यक्ष सदाशिवराव को डूंगरपुर भेजा। महारावल फतहसिंह सदाशिवराव की चढ़ाई का हाल सुनकर पहाड़ों में चला गया, फिर उसे दो लाख रुपये लेकर चले जाने पर राज़ी किया। उस समय राज्यकोष खाली था, जिससे प्रजा से रुपये वसूल करना स्थिर हुआ तो मन्त्री-वर्ग ने वहां के निवासी नागर ब्राह्मणों से, जो संपन्न थे, कठोरता-पूर्वक रुपये वसूल कर सदाशिवराव को दिये। इसपर नागर ब्राह्मणों ने उदासीन होकर डूंगरपुर छोड़ दिया, जिससे वहां की आर्थिक स्थिति को गहरा धक्का लगा।

सिंधिया के सेनाध्यक्ष सदाशिवराव की डूंगरपुर पर चढ़ाई

इस प्रकार अपने राज्य को जर्जरीभूत कर वि० सं० १८६५ (ई० स० १८०८) में महारावल फतहसिंह ने परलोकवास किया। उसके केवल एक ही कुंवर जसवन्तसिंह था, जो उसका क्रमानुयायी बना। उस (फतहसिंह) के समय के वि० सं० १८५० से १८६४ तक के ११ शिलालेख और १३ ताम्रपत्र मिले हैं, जिनमें से सबसे पहला शिलालेख वि० सं० १८५० माघ सुदि ११ (ई० स० १७९४ ता० १० फरवरी) चंद्रवार और अन्तिम ताम्रपत्र वि० सं० १८६४ फाल्गुन सुदि १२ (ई० स० १८०८ ता० ९ मार्च) का है।

महारावल का देहांत

जसवन्तसिंह (दूसरा)

वि० सं० १८६५ (ई० स० १८०८) में महारावल जसवन्तसिंह डूंगरपुर का स्वामी हुआ। उन दिनों देश भर में अराजकता फैल रही थी, जिससे लुटेरों की बन आई।

मेवाड़ के महाराणा अरिसिंह (दूसरा) के समय वहां के सरदार उसके विरोधी हो गये, तब उनका दमन करने के लिए सिंधी और पठान बुलाये गये, परंतु उन दिनों उदयपुर में ख़ज़ाना खाली होने के कारण उक्त सेना का वेतन प्रायः चढ़ा रहता था, जिससे कई बार उन्होंने उपद्रव किया और राजमहलों में धरना भी

सिंधियों-द्वारा डूंगरपुर की बरबादी

दिया। वेतन चढ़ा हुआ होने के कारण वि० सं० १८२५ (ई० स० १७६८) में उन्होंने यहां तक धृष्टता की कि महाराणा अरिसिंह का दामन पकड़ लिया। महाराणा हंमीरसिंह (दूसरा) और भीमसिंह के समय भी तनख्वाह न मिलने के कारण कई बार उन्होंने उपद्रव किया तो मेवाड़ राज्य उनको जागीरें देकर शांत करता रहा, परन्तु पीछे जब से राजनगर और रायपुर की तरफ़ की उनकी जागीरें ज़ब्त कर ली गईं तब से वे अपनी टोलियां बनाकर इधर-उधर लूट-मार करने लगे। ऐसे में मालवा आदि की तरफ़ से कई बाहरी सिंधी वग़ैरह उनसे आ मिले और खुदादादख़ां[1] नामक व्यक्ति अपने को सिंध का शाहज़ादा बतलाकर उनका मुखिया बना। डूंगरपुर राज्य की बिगड़ी हुई हालत देखकर वे उधर बढ़े और वि० सं० १८६६ (ई० स० १८१२) में उन्होंने डूंगरपुर को घेर लिया। उनसे लड़ने में अपने को असमर्थ देखकर महारावल जसवंतसिंह डूंगरपुर छोड़ अपनी राणियों आदि सहित सराना की पाल में जा रहा। सिंधियों ने डूंगरपुर पर अधिकार कर लिया और उसे ख़ूब लूटा। कई स्थान नष्टभ्रष्ट कर दिये गये और सरकारी दफ्तर जला दिया गया। जब महारावल ने अपने बल से डूंगरपुर को छुड़ाना संभव न देखा, तब उसने सिंधियों को कुछ दे-दिलाकर संतुष्ट करना चाहा और मेवाड़ राज्य के थाणा नामक ठिकाने के चूंडावत सरदार रावत सूरजमल के द्वारा खुदादादख़ां से पत्रव्यवहार कर उससे मिलना निश्चय किया। वि० सं० १८७२ (ई० स० १८१५) में महारावल जसवंतसिंह उदयपुर राज्य की जयसमुद्र (ढेबर) भील पर खुदादादख़ां से मिला, परन्तु इस मुलाक़ात का कुछ भी फल न हुआ। बांसवाड़ा राज्य के गढ़ी नामक ठिकाने का सरदार अर्जुनसिंह चौहान उन दिनों शक्तिशाली था, इसलिए उसको

(१) सिंढायच कवि किशन-कृत 'उदयप्रकाश' नामक काव्य में खुदादादख़ां को सिंध के बादशाह जमशेदख़ां का पुत्र बतलाया है, परंतु सिंध में उन दिनों कोई बादशाहत नहीं थी। उस समय वहां तालपुरिये मीरों का थोड़ा बहुत अधिकार था, इसलिए खुदादादख़ां सिंध का शाहज़ादा नहीं हो सकता। यदि जमशेदख़ां पिंडारी से उसका कोई सम्बन्ध हो तो आश्चर्य नहीं।

सिंधियों से छुटकारे का प्रयत्न करने के लिए कहलाया गया। इसपर उसने नई सेना भरती करना आरम्भ किया, परन्तु वह पर्याप्त न होने से सफलता नहीं हुई। फिर उसने होल्कर के सेनाध्यक्ष रामदीन से सहायता चाही। जेनरल रामदीन इस संदेश के मिलते ही डूंगरपुर की तरफ़ चला और इधर से महारावल के सरदार और गढ़ी का सरदार अर्जुनसिंह भी उससे जा मिले। गलियाकोट में सिंधियों से युद्ध हुआ, जिसमें उन(सिन्धियों)की बड़ी क्षति हुई, परन्तु उन्होंने महारावल जसवंतसिंह को पकड़ लिया। उसको साथ लेकर खुदादादखां के सलूंबर के मार्ग से मेवाड़ की तरफ़ जाने की खबर पाने पर थाणे के रावत सूरजमल ने उस(खुदादादखां)पर हमला किया, क्योंकि सलूंबर के रावत भीमसिंह का दूसरा पुत्र भैरवसिंह सलूंबर से दो कोस दूर बसी ग्राम में इन्हीं सिंधियों-द्वारा युद्ध में मारा गया था, जिसका वह बदला लेना चाहता था। अन्त में सूरजमल के हाथ से खुदादादखां मारा गया[1] और वह महारावल को छुड़ा लाया, जिससे डूंगरपुर पर महारावल का पुनः अधिकार हो गया। इस अन्धाधुंधी के ज़माने में भील आदि लुटेरों की बन आई और उनके अत्याचारों से प्रजा दुःखी होकर डूंगरपुर राज्य को छोड़ अन्यत्र जाने लगी, जिससे राज्य का अधिकांश ऊजड़ हो गया और आय के साधन कम होते गये।

उन दिनों राजपूताने के कई राज्य अंग्रेज़ सरकार से संधि कर उसकी रक्षा में जा रहे थे, इसलिए उक्त महारावल ने भी सरकार के साथ संधि कर अपने राज्य की दशा सुधारने का निश्चय किया। फिर सेन्ट्रल इंडिया व मालवा के एजेन्ट गवर्नर जेनरल, ब्रिगेडियर जेनरल सर जॉन मॉल्कम की आज्ञा से कप्तान जे० कॉल्फ़ील्ड के द्वारा वि० सं० १८७५ (ई० स० १८१८) में ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ उसने निम्नलिखित संधि कर ली—

सरकार अंग्रेज़ी से संधि

(१) सैयद सफदरहुसेन लिखित डूंगरपुर के गैज़ेटियर (उर्दू) का हिन्दी अनुवाद (अप्रकाशित), पृ० १६।

पहली शर्त—अंग्रेज़ सरकार और डूंगरपुर के राजा महारावल श्रीजसवंतसिंह तथा उनके वारिसों एवं उत्तराधिकारियों के बीच मैत्री, मेल-जोल तथा स्वार्थ की एकता सदा बनी रहेगी और दोनों में से किसी भी पक्ष के मित्र या शत्रु दोनों के मित्र या शत्रु समझे जायंगे।

दूसरी शर्त—अंग्रेज़ सरकार स्वीकार करती है कि वह डूंगरपुर राज्य तथा देश की रक्षा करेगी।

तीसरी शर्त—महारावल उनके वारिस तथा उत्तराधिकारी अंग्रेज़ सरकार के बड़प्पन को स्वीकार करते हुए सदा उसके अधीन रहकर उसका साथ देंगे और भविष्य में दूसरे राजाओं या राज्यों से कोई सरोकार न रक्खेंगे।

चौथी शर्त—महारावल तथा उसके वारिस और उत्तराधिकारी अपने मुल्क एवं रियासत के खुद-मुख्तार रईस रहेंगे और उनकी रियासत में अंग्रेज़ सरकार की दीवानी तथा फ़ौजदारी हुकूमत दाखिल न होगी।

पांचवीं शर्त—डूंगरपुर राज्य के मामले अंग्रेज़ सरकार की सलाह के अनुसार तय होंगे और इस काम में अंग्रेज़ सरकार महारावल की मर्ज़ी का यथासाध्य सब तरह से पूरा ध्यान रक्खेगी।

छठी शर्त—अंग्रेज़ सरकार की स्वीकृति के विना महारावल तथा उसके वारिस और उत्तराधिकारी किसी राजा या रियासत के साथ अहद-पैमान न करेंगे, पर मित्रों या संबंधियों के साथ उनका साधारण मित्रता-पूर्ण पत्रव्यवहार जारी रहेगा।

सातवीं शर्त—महारावल, उनके वारिस और उत्तराधिकारी किसी पर ज्यादती न करेंगे और यदि दैवयोग से किसी के साथ कोई झगड़ा पैदा होगा तो उसका निपटारा अंग्रेज़ सरकार की मध्यस्थता से होगा।

आठवीं शर्त—महारावल, उनके वारिस और उत्तराधिकारी स्वीकार करते हैं कि अब तक जो खिराज धार या किसी और राज्य को देना वाजिब होगा वह सब हर साल अंग्रेज़ सरकार को किश्तवार अदा किया जायगा और किश्तें अंग्रेज़ सरकार के द्वारा डूंगरपुर राज्य की हैसियत के अनुसार नियत की जायंगी।

नवीं शर्त—महारावल, उनके वारिस और उत्तराधिकारी स्वीकार करते हैं कि वे अंग्रेज़ सरकार को अपनी रक्षा के बदले ख़िराज देते रहेंगे। ख़िराज उनकी रियासत की हैसियत के अनुसार नियत किया जायगा, परन्तु किसी हालत में प्रति रुपया छः आने से अधिक न होगा।

दशवीं शर्त—महारावल, उनके वारिस और उत्तराधिकारी स्वीकार करते हैं कि उनके पास जितनी सेना होगी, उसे वे आवश्यकता पड़ने पर अंग्रेज़ सरकार के हवाले करेंगे।

ग्यारहवीं शर्त—महारावल, उनके वारिस और उत्तराधिकारी वादा करते हैं कि वे सब अरब, मकरानी तथा सिंधी सिपाहियों को मौक़ूफ़ कर देंगे और अपनी फ़ौज में अपने देश के रहनेवालों के अतिरिक्त अन्य सिपाहियों को भरती न करेंगे।

बारहवीं शर्त—अंग्रेज़ सरकार वादा करती है कि वह महारावल के सरकश रिश्तेदारों की हिमायत न करेगी, बल्कि उनको ज़ेर करने में उन (महारावल) को सहायता देगी।

तेरहवीं शर्त—इस अहदनामे की नवीं शर्त में महारावल इक़रार करते हैं कि वे अंग्रेज़ सरकार को ख़िराज दिया करेंगे और इसके इतमीनान के लिए वे क़रार करते हैं कि अंग्रेज़ सरकार की तरफ़ से जो लोग ख़िराज वसूल करने पर नियुक्त होंगे उन्हें वह (ख़िराज) दिया जायगा और उसके अदा न होने की हालत में महारावल को स्वीकार है कि अंग्रेज़ सरकार की ओर से कोई प्रतिनिधि नियुक्त हो, जो डूंगरपुर क़स्बे की चुंगी की आमदनी से ख़िराज वसूल करे।

तेरह शर्तों का यह अहदनामा आज की तारीख़ कप्तान जे० कॉल्फ़ील्ड की मारफ़त ब्रिगेडियर-जेनरल सर जे० मॉल्कम के० सी० बी०, के० एल्० एस्० की आज्ञा से, जो ऑनरेबल ईस्ट इंडिया कंपनी की ओर से प्रतिनिधि था, और डूंगरपुर के राजा महारावल श्रीजसवन्तसिंह की मारफ़त जो स्वयं अपनी, अपने वारिसों तथा उत्तराधिकारियों की तरफ़ से प्रतिनिधि था, तय हुआ। कप्तान कॉल्फ़ील्ड इक़रार करता है कि मोस्ट नोबल

गवर्नर जेनरल-द्वारा तस्दीक़ किये हुए इस अहदनामे की एक नक़ल डूंगरपुर के राजा महारावल श्रीजसवन्तसिंह को दो महीने के अरसे में दी जायगी और उसके दिये जाने पर यह अहदनामा, जिसे ब्रिगेडियर-जेनरल सर जे० माल्कम के० सी० बी०, के० एल्० एस्० के हुक्म से कप्तान कॉलफील्ड ने तैयार किया, लौटा दिया जायगा।

इस अहदनामे पर रावल ने अपने शरीर तथा मन की पूर्ण स्वस्थ दशा में और अपनी इच्छा से दस्तख़त तथा मुहर की। उनके दस्तख़त और मुहर बतौर गवाह के समझे जायंगे।

यह अहदनामा डूंगरपुर में आज की ता० ११ दिसम्बर ई० १८१८ अर्थात् १२ सफ़र हि० स० १२३४ एवं अगहन सुदि १४ वि० सं० १८७५ को तैयार हुआ।

(दस्तख़त) जे० कॉलफील्ड

(दस्तख़त) जसवंतसिंह
नागरी अक्षरों में

बड़ी
मुहर

दस्तख़त हेस्टिंग्ज़
,, जी० डाइज़वेल्
,, जे० स्टुअर्ट
,, जे० ऐडम्

ऑनरेबल कंपनी की
मुहर

गवर्नर
जेनरल की
छोटी
मुहर

आज फरवरी की तेरहवीं तारीख़ ई० स० १८१९ को हिज़ ऐक्सेलेंसी गवर्नर जेनरल-इन-कौंसिल ने तस्दीक़ किया[1]।

(दस्तख़त) सी० टी० मेट्कॉफ़
सेक्रेटरी, भारत सरकार

---

(१) ट्रीटीज़ एंगेज़मेंट्स ऐण्ड सनद्ज़, जि० ३, पृ० ४४–४७।

उपर्युक्त सन्धि-पत्र के द्वारा डूंगरपुर राज्य ईस्ट इंडिया कम्पनी के संरक्षण में आ गया और इस संधि के पूर्व धारवालों के ख़िराज के चढ़े हुए रुपयों में केवल ३५००० रुपये (सालिमशाही) निम्नलिखित किश्तों में देने और अंग्रेज़ सरकार की रक्षा के बदले में तीन वर्ष के लिए नीचे लिखे अनुसार प्रतिवर्ष ख़िराज देने का वि० सं० १८७६ (ई० स० १८२०) में एक दूसरा इक़रारनामा हुआ।

अंग्रेज़ सरकार का ख़िराज नियत होना।

अंग्रेज़ सरकार और डूंगरपुर के रावल, महारावल श्रीजसवन्तसिंह के बीच का इक़रारनामा ई० स० १८२०—

अगहन (मार्गशीर्ष) सुदि १४ वि० सं० १८७५ तदनुसार ११ दिसंबर ई० स० १८१८ को अंग्रेज़ सरकार और डूंगरपुर के रावल, महारावल श्रीजसवन्तसिंह के बीच जो अहदनामा हुआ था, उसकी आठवीं शर्त में रावल ने इक़रार किया है कि उक्त अहदनामे की तारीख़ तक उनके ज़िम्मे धार या और किसी राज्य का जो ख़िराज बाक़ी रहा होगा, वह सब वे अंग्रेज़ सरकार को सालाना किश्तों में, जिन्हें अंग्रेज़ सरकार नियत करेगी, देंगे। महारावल के देश और आय की हीन दशा का विचार कर अंग्रेज़ सरकार ने आठवीं शर्त में बतलाई हुई सब बाक़ी की रक़म के बदले केवल ३५००० (सालमशाही) रुपये लेना स्वीकार किया है। अपनी तरक्क़ी के दिनों में डूंगरपुर रियासत ग़ैर रियासतों को जो सालाना ख़िराज देती थी, उसके बराबर यह रक़म है। महारावल इस लेख के द्वारा मंजूर करते हैं कि वे अंग्रेज़ सरकार को नीचे लिखी हुई फ़सलों पर किश्तवार रुपये दिया करेंगे—

माघ	सुदि १५	वि० सं०	१८७६	तदनुसार	जनवरी	ई० स०	१८२०	१५०० रु०
वैशाख	सुदि १५	,,	१८७७	,,	अप्रेल	,,	१८२०	१५०० रु०
माघ	सुदि १५	,,	१८७७	,,	जनवरी	,,	१८२१	२५०० रु०
वैशाख	सुदि १५	,,	१८७८	,,	अप्रेल	,,	१८२१	२५०० रु०
माघ	सुदि १५	,,	१८७८	,,	जनवरी	,,	१८२२	३००० रु०
वैशाख	सुदि १५	,,	१८७९	,,	अप्रेल	,,	१८२२	३००० रु०

माघ सुदि १५ वि० सं० १८७९ तदनुसार जनवरी ई० स० १८२३ ३५०० रु०
वैशाख सुदि १५ ,, १८८० , अप्रेल ,, १८२३ ३५०० रु०
माघ सुदि १५ ,, १८८० , जनवरी ,, १८२४ ३५०० रु०
वैशाख सुदि १५ ,, १८८१ , अप्रेल ,, १८२४ ३५०० रु०
माघ सुदि १५ ,, १८८१ , जनवरी ,, १८२५ ३५०० रु०
वैशाख सुदि १५ ,, १८८२ , अप्रेल ,, १८२५ ३५०० रु०

(और चूंकि) उपर्युक्त अहदनामे की नवीं शर्त में महारावल इक़रार करते हैं कि वे रक्षा के बदले अंग्रेज़ सरकार को मुल्क की हैसियत के मुताबिक ख़िराज देंगे, पर वह राज्य की निश्चित आय पर फी रुपये छः आने से अधिक न होगा और अंग्रेज़ सरकार रावल के मुल्क की जल्द तरक्क़ी होने की इच्छा से आज्ञा देती है कि केवल ई० स० १८१९, १८२० तथा १८२१ के ख़िराज की रक़म अदा किये जाने का बंदोबस्त हो, महारावल वादा करते हैं कि वे ऊपर लिखे हुए संवतों के लिए नीचे लिखे अनुसार रक़में अदा करेंगे[1]—

माघ सुदि १५ वि० सं० १८७६ तदनुसार जनवरी ई० स० १८२० ८५०० रु०
वैशाख सुदि १५ ,, १८७७ ,, अप्रेल ,, १८२० ८५०० रु०

कुल बाबत सन् १८१९=१७००० रु०

माघ सुदि १५ वि० सं० १८७७ तदनुसार जनवरी ई० स० १८२१ १०००० रु०
वैशाख सुदि १५ ,, १८७८ ,, अप्रेल ,, १८२१ १०००० रु०

कुल बाबत सन् १८२०=२०००० रु०

माघ सुदि १५ वि० सं० १८७८ तदनुसार जनवरी ई० स० १८२२ १२५०० रु०
वैशाख सुदि १५ ,, १८७९ ,, अप्रेल ,, १८२२ १२५०० रु०

कुल बाबत सन् १८२१=२५००० रु०

यह प्रबन्ध केवल तीन वर्ष के लिए है, जिसकी अवधि पूरी होने पर अंग्रेज़ सरकार नवीं शर्त के अनुसार ख़िराज का ऐसा बन्दोबस्त करेगी,

---

(१) ट्रीटीज़, एंगेज़मेंट्स ऐंड सनद्ज़, जिल्द ३, पृ० ५७-५९ ।

जो उसकी दृष्टि में नेकनामी के अनुकूल और रावल के मुल्क की तरक्क़ी तथा दोनों सरकारों के फ़ायदे के लिए उचित होगा।

यह अहदनामा अंग्रेज़ सरकार की तरफ़ से जेनरल सर जे० मालूकम के० सी० बी०, के० एल्० एस्० तथा महारावल श्रीजसवन्तसिंह की ओर से डूंगरपुर के मंत्री के आदेशानुसार आज २६वीं जनवरी ई० स० १८२० तदनुसार माघ सुदि १५ वि० सं० १८७६ को तय हुआ।

(दस्तख़त) ए० मैक्डानल्ड
फ़र्स्ट असिस्टेन्ट, टु सर जॉन मालूकम

रावल की मुहर
और दस्तख़त

फिर सिंधी, अरब और अफ़गान लोग, जिन्हें कई ठिकानेवालों ने अपने यहां रख छोड़ा था, प्रजा पर ज़ुल्म करने के कारण निकाल दिये गये।

उन दिनों महारावल जसवन्तसिंह के मुख्य सलाहकार किशनदास सोलंकी और मन्त्री ऋषभदास थे, जिन्होंने सिंधियों के उपद्रव के समय उसकी अच्छी सेवा की थी, जिससे उनके अधिकार बढ़ गये और किशनदास ने अपने लिए दो गाँवों का पट्टा भी लिखवा लिया। वह राज्य का समग्र कार्य अपने ही हाथ में रखना चाहता था, पर मन्त्री ऋषभदास उसका बाधक था, इसलिए उसने अपना मार्ग साफ़ करने के लिए ऋषभदास को विष दिलवाकर मरवा डाला और स्वयं राज्य का मुख़्तार होकर मनमानी करने लगा। वह जो चाहता वही महारावल से करा लेता था। उसने तीन गांवों का पट्टा अपने लिए फिर लिखवा लिया और जब अपना मतलब बन गया तब मुसाहबी से इस्तीफ़ा दे दिया। इसपर महारावल ने ईश्वरदास गांधी को मंत्री बनाया, परन्तु किशनदास के कारण महारावल और मन्त्री के बीच खटपट रहने लगी, जिससे वह भी पृथक् हो गया और उसके स्थान पर निहालचन्द कोटड़िया मंत्री हुआ और सरदार लोग उपद्रव करते ही रहे। इसपर अंग्रेज़ सरकार ने मुन्शी

मन्त्रियों का परिवर्तन

ख्यालीराम को एक सौ सवारों के साथ वहां भेजा। उसने निहालचन्द कोटड़िया के साथ मिलकर राज्य का अच्छा प्रबन्ध किया[1]।

चार वर्ष बाद वहां से ख्यालीराम के चले जाने पर निहालचन्द भी मंत्री पद से अलग हो गया, जिससे राज्य की फिर वही हालत होने लगी, जो ई० स० १८१८ की संधि के पूर्व थी। चारों ओर लूटमार मच गई और डाके पड़ने लगे।

अंग्रेज़ सरकार का भीलों को दबाकर इक़रारनामा लिखाना

अब अंग्रेज़ सरकार के संरक्षण में आ जाने से डूंगरपुर राज्य बाहरी आपत्तियों से बच गया, परन्तु आंतरिक विप्लव को शांत कर सरदारों को अनुकूल बनाना और भीलों का, जो लूटमार और हत्याएं किया करते थे, दमन करना आवश्यक था। इसके साथ ही भीलों आदि लुटेरों को खेती के काम में लगाकर देश की आय बढ़ाना भी मुख्य कार्य था, परन्तु महारावल जसवंतसिंह में इतनी योग्यता न थी कि वह इन उपद्रवों को मिटाकर राज्य की उन्नति कर सकता। इसलिए भीलों का दमन करने को सरकारी फ़ौज रखना और उसके व्यय के वास्ते ८४०० रुपये वार्षिक देने का इक़रारनामा ता० १३ जनवरी ई० सन् १८२४ (वि० सं० १८८० पौष सुदि ११) को कप्तान अलेग्ज़ेन्डर मैकडॉनल्ड की मध्यस्थता में लिखा गया[2], किंतु महारावल उस रक़म को भी न दे सका, क्योंकि कुप्रबन्ध से राज्य की आय में कुछ भी वृद्धि नहीं हुई, जिससे वह इक़रारनामा स्थगित हुआ। अंग्रेज़ सरकार से संधि होने के कारण उद्दंड सरदारों को प्रत्यक्षतः हानि थी, क्योंकि इससे उनकी आय का मार्ग बंद हो गया अर्थात् भीलों से लूटखसोट के माल में से वे लोग जो हिस्सा लेते थे, वह अब मिलना बंद हो गया। इसलिए उन्होंने भीलों को बहकाया, जिससे वे बहुत लूटमार

(१) सैयद सफदरहुसेन रचित डूंगरपुर राज्य के गैज़ेटियर (उर्दू) का हिन्दी अनुवाद (अप्रकाशित); पृ० २१४।

(२) ट्रीटीज़, एंगेज़मेंट्स ऐण्ड सनद्ज़, जिल्द ३, पृ० ४१। मुंशी ज्वालासहाय; वाकये राजपूताना, जि० १, पृ० ४७४।

करने लगे। महारावल जसवन्तसिंह ने उनका दमन करने के लिए अपनी सेना भेजी, परंतु वे लोग दबे नहीं, जिससे महारावल ने अंग्रेज़ सरकार से सहायता मांगी।

वि० सं० १८८२ (ई० स० १८२५ मई) में यहां सरकारी सेना भेजी गई, परन्तु भीलों ने उसका मुक़ाबला न किया। इस सेना के पहुंचने पर सरदारों ने भी अधीनता स्वीकार कर ली और भीलों को समझाकर नीचे लिखा इक़रारनामा कराया गया[1]—

(१) हम अपने तीर, कमान और सब हथियार सुपुर्द कर देंगे।

(२) हाल के दंगे में लूट से हमें जो कुछ मिला है, हम उसका एवज़ भी देंगे।

(३) भविष्य में हम क़सबों, गांवों या सड़कों पर कभी लूट मार न करेंगे।

(४) हम चोरों, लुटेरों, ग्रासियों, ठाकुरों या अंग्रेज़ सरकार के दुश्मनों को चाहे वे हमारे देश के हों या किसी और के अपनी पालों (गांवों) में आश्रय न देंगे।

(५) हम कम्पनी की आज्ञाओं का पालन करेंगे और आवश्यकता पड़ने पर हाज़िर होंगे।

(६) हम रावल व ठाकुरों के गांवों से अपने उचित और पुराने हक़ों के सिवाय और कुछ न लेंगे।

(७) हम डूंगरपुर के रावल को वार्षिक ख़िराज देने से कभी इन्कार न करेंगे।

(८) यदि कम्पनी की कोई प्रजा हमारे गांवों में ठहरेगी, तो हम उसकी रक्षा करेंगे।

यदि हम ऊपर लिखे अनुसार अमल न करें, तो अंग्रेज़ सरकार के अपराधी समझे जायं। दस्तख़त बेनम (बेना) सूरात और दूदा सूरात।

---

(१) ट्रीटीज़, एंगेज़मेंट्स एंड सनद्ज़; जिल्द ३, पृ० ६०-६१। मुंशी ज्वालासहाय; वाक़ये राजपूताना, जि० १, पृ० ४७६।

इसी प्रकार एक और इक़रारनामा तैयार किया गया, जिसपर अमरजी, डामर नाथा आदि २२ भीलों के मुखियों के हस्ताक्षर हुए।

इसी तरह का इक़रारनामा सेमरवाड़ा, देवल और नांदू के भीलों ने भी दस्तख़त कर स्वीकार किया।

महारावल के प्रबंधकुशल न होने से ही भीलों ने फ़साद किया था, इसलिए महारावल के अधिकार में चिरस्थायी शांति की संभावना न देख कैप्टन मेकडानल्ड ने उसके शासन-सम्बन्धी अधिकार में हस्ताक्षेप करना उचित समझा। निदान वि० सं० १८८२ (ई० स० १८२५ ता० २ मई) को नीमच मुक़ाम पर महारावल की तरफ़ से नीचे लिखा इक़रारनामा लिखा गया, जिसके अनुसार महारावल को शासन-कार्य में हस्ताक्षेप करने से वंचित रक्खा गया और अंग्रेज़ सरकार-द्वारा किसी योग्य व्यक्ति को मंत्री बनाकर शासनकार्य चलाने की आवश्यकता हुई।

महारावल का शासन कार्य से वंचित होना

डूंगरपुर के रावल जसवन्तसिंह और कैप्टन मैकडानल्ड के द्वारा ऑनरेबल कंपनी के बीच का इक़रारनामा[1]—

नीमच ता० २ मई ई० स० १८२५ (वि० सं० १८८२)

(१) अंग्रेज़ सरकार जिसे दीवान नियत करेगी, उसे मैं मंजूर करूंगा। राज्य-कार्य का प्रबंध उसके सुपुर्द करूंगा और किसी प्रकार का हस्ताक्षेप न करूंगा।

(२) मेरे निर्वाह के लिए अंग्रेज़ सरकार जो कुछ नियत करेगी उस पर मैं संतोष करूंगा और डूंगरपुर राज्य में मेरे रहने के लिए जो स्थान पसंद करेगी वहां रहूंगा।

(३) चालाक आदमियों की सलाह से मेरे मुल्क में कई वार फ़साद हुए हैं, इसलिए मैं लिख देता हूं कि मैं न तो उनकी सलाह पर कुछ ध्यान दूंगा और न स्वयं कोई फ़साद करूंगा। यदि मैं ऐसा करूं तो अंग्रेज़ सरकार जो सज़ा तजवीज़ करेगी, उसे मंजूर करूंगा।

(१) ट्रीटीज़, एंगेजमेंट्स ऐंड सनद्ज़, पृ० ६१। मु० ज्वालासहाय; वाकये राजपूताना, जि० १, पृ० ४७८।

फिर पोलिटिकल एजेंट ने पंडित नारायण को डूंगरपुर राज्य का प्रबंधकर्त्ता बनाया और ठाकुर गुलाबसिंह सूरमा व सरदारसिंह सोलंकी उसके सहायक नियत हुए। दो वर्ष तक पं० नारायण शासन-कार्य चलाता रहा। उसके चले जाने पर उन दोनों सरदारों की बन आई और वे अपनी इच्छानुसार राजकार्य चलाने लगे। उन्होंने महारावल पर ऐसा आतङ्क जमा रक्खा था कि उनकी अनुमति के बिना वह कोई काम नहीं कर सकता था। कुछ दिनों के पश्चात् वे दोनों सरदार मर गये, जिससे उनके पुत्र अभयसिंह सूरमा और उदयसिंह सोलंकी उनके स्थान पर नियत हुए। उन्होंने भी स्वार्थ और लोभवश अपने तथा अपने अनुयायियों के घर बनाने के हेतु प्रजा पर अत्याचार करना और अपने विरोधियों की संपत्ति छीनना आरंभ किया। महारावल के निकटवर्ती कुटुंबी साबलीवालों का गूगरां गांव छीनकर खुंमानसिंह को दिया गया, इसलिए सरदार भी महारावल से अप्रसन्न हो गये। उन्होंने प्रत्यक्षतः राजाज्ञा की अवहेलना करना आरंभ किया। उस समय महारावल के समीपी भाइयों के ठिकानों तथा सरदारों में कोई ऐसा प्रभावशाली व्यक्ति नहीं था, जो अपनी योग्यता-द्वारा राज्य में स्थायी शांति स्थापित कर प्रजा की रक्षा करता।

प्रतापगढ़ से कुंवर दलपतसिंह का गोद आना

अपनी संरक्षता में डूंगरपुर राज्य होने के कारण अंग्रेज़ सरकार ने उसकी दशा सुधारना चाहा। उसने महारावल तथा सरदारों आदि को पूरा अवसर दिया कि वे राज्य की आंतरिक स्थिति का सुधार करें, परन्तु बार बार ज़ोर देने पर भी कुछ फल न हुआ तब अंग्रेज़ सरकार ने प्रतापगढ़ (देवलिया) राज्य के स्वामी महारावल सावन्तसिंह के छोटे पौत्र दलपतसिंह को, जो सीसोदिया होने के कारण रावल शाखा से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखता था और न वह डूंगरपुर या बांसवाड़े के राजाओं का वंशधर था[1], योग्य जानकर महारावल का उत्तराधिकारी बनाना निश्चय किया।

(१) उदयपुर के एक पुराने राजकर्मचारी के यहां से हमको उस समय की लिखी हुई एक याददाश्त मिली, जिसमें लिखा है कि महाराणा भीमसिंह ने जेनरल माल्कम को यह

महारावल के समीपी बांधवों में कई वास्तविक हक़दार विद्यमान थे, परन्तु उनमें से किसी में भी सरकार के इस कार्य का विरोध करने की सामर्थ्य न थी, जिससे वि० सं० १८८२ (ई० स० १८२५) में दलपतसिंह प्रतापगढ़ से डूंगरपुर दत्तक लाया गया और राज्य-शासन-सम्बन्धी समस्त अधिकार उसको सौंपे जाकर महारावल का अनुचित हस्तक्षेप रोका गया।

राज्य-सम्बन्धी अधिकार मिलते ही कुंवर दलपतसिंह ने, महारावल जसवन्तसिंह के विद्यमान होने पर भी पट्टों, परवानों, ताम्रपत्रों आदि में केवल अपना नाम लिखवाना आरंभ किया, जिससे कई एक स्वार्थी लोगों को उसे (महारावल को) बहकाने का अच्छा मौक़ा मिला। गद्दी के नज़दीकी हक़दारों के रहते हुए भी दूसरे राज्य से ग़ैर हक़दार को गोद लेना सरदारों तथा राज्य के शुभचिन्तकों को अखरना चाहिये था, परन्तु पारस्परिक फूट होने से उस समय वे सब चुप थे। अब उन्होंने एकमत होकर प्रत्यक्ष रूप से दलपतसिंह को गोद लेने का विरोध आरंभ किया। महारावल भी उनमें मिल गया, किन्तु शक्तिशाली गवर्नमेंट के सामने वह विवश था। जब इस उपद्रव के बढ़ने की आशंका हुई और राज्य की ओर से सहायता के लिए अंग्रेज़ सरकार से प्रार्थना की गई तो यही उत्तर मिला—"अंग्रेज़ सरकार प्रत्येक रईस को अपना शासन बनाये रखने और अपने राज्य में शांति स्थापित कर देश को आपत्तियों से बचाने का उत्तरदायी समझती है"। इससे सरदारों को और भी उत्तेजना मिली। कुंवर दलपतसिंह ने भील आदि जातियों को दबाकर शांति-स्थापन का प्रयत्न किया और अंग्रेज़ सरकार से भी उसे सहायता पहुंची, तो भी उसको विशेष सफलता न मिली।

महारावल और कुंवर दलपतसिंह में विरोध

वागड़ का अधिकतर भाग मालवा और गुजरात से मिला हुआ है और उधर के हिस्से में भी भीलों की अधिक बस्ती है। इससे वागड़ प्रांत के भील वारदातें कर मालवा और गुजरात की ओर चले जाते और

कार्य अनुचित बतलाया, तो उसने उत्तर दिया—"मैं पहले इतिहास से इतना परिचित होता तो ऐसा नहीं होता, परंतु अब जो कुछ हो गया, वह बदला नहीं जा सकता"।

उधर वारदातें कर इधर आकर छिप जाते थे। इसी प्रकार अंग्रेज़ी इलाक़े के भील भी मालवा और गुजरात में वारदातें कर वागड़ में आ जाते तथा वहां वारदातें कर पीछे अपने इलाक़े में चले जाते थे। अंग्रेज़ सरकार, मालवा, गुजरात तथा राजपूताने के राज्यों के बीच, एक-दूसरे के मुलज़िम देने-लेने का अहदनामा न होने से ऐसे अवसरों पर जब पुलिस पता लगाकर उनकी गिरफ़्तारी के लिए जाती, तो खाली हाथ लौट आती, जिससे अपराधी सज़ा से बच जाते थे। इसपर अंग्रेज़ सरकार ने मालवा और गुजरात की तरफ़ के मार्ग को खुला रखने के लिए उस तरफ़ पुलिस का अच्छा प्रबन्ध कर नाके-घाटे रोक दिये, जिससे उधर वारदातों का होना बन्द हो गया, परन्तु उस पुलिस का व्यय रियासतों पर डाला गया और डूंगरपुर से भी ४५१५० रुपये वसूल किये गये। कुंवर दलपतसिंह को यह कार्रवाई अनुचित जान पड़ी, क्योंकि इस प्रबन्ध से डूंगरपुर को कोई लाभ नहीं हुआ था और न इसमें डूंगरपुर राज्य का कोई हस्ताक्षेप था। फिर सन् १८२६ ई० में कुंवर दलपतसिंह ने अंग्रेज़ सरकार से लिखापढ़ी की, जिससे अंग्रेज़ सरकार ने वह रक़म ई० स० १८३२ में लौटा दी[1]।

कुंवर दलपतसिंह का प्रतापगढ़ का स्वामी होना

वि० सं० १८६० (ई० स० १८३३) में प्रतापगढ़ में कुंवर दलपतसिंह का बड़ा भाई केसरीसिंह, जो सावंतसिंह का भावी उत्तराधिकारी था, निःसन्तान गुजर गया। तब महारावल सावंतसिंह ने पौत्र-प्रेम से प्रेरित होकर दलपतसिंह को पुनः प्रतापगढ़ में रखने का विचार किया और यह चाहा कि उसके पीछे प्रतापगढ़ का भी स्वामी वही हो। अपने दादा की इच्छानुसार दलपतसिंह अपना मुख्य निवास प्रतापगढ़ में रख डूंगरपुर का भी राज्य-कार्य चलाने लगा। वि० सं० १९०० (ई० स० १८४३) में महारावत सामंतसिंह का देहान्त हो गया, तब अपने दादा की इच्छानुसार वह प्रतापगढ़ का स्वामी बना और उसने चाहा कि डूंगरपुर तथा प्रतापगढ़ दोनों राज्यों पर उसका अधिकार हो। इसके लिए उसने प्रयत्न आरंभ कर अंग्रेज़ सरकार के सामने

(१) के० डी० अर्सकिन; ए गैज़ेटियर ऑव दि डूंगरपुर स्टेट, पृ० १३४।

भी यह प्रश्न उपस्थित किया। सरकार डूंगरपुर और प्रतापगढ़ के राज्यों को एक कर देने के प्रश्न को ध्यान-पूर्वक सोचने लगी, क्योंकि दलपतसिंह के डूंगरपुर गोद जाने के कारण हिन्दू-धर्मशास्त्र के अनुसार प्रतापगढ़ पर उसका हक़ नहीं रहा था।

उधर कुंवर दलपतसिंह के प्रतापगढ़ का स्वामी हो जाने से डूंगरपुर की राजगद्दी के दावेदार सरदारों को अपना पैतृक स्वत्व मिलने के लिए अंगरेज़ सरकार के सामने अपना दावा पेश करने का अवसर मिला। महारावल जसवन्तसिंह ने भी अपने खोये हुए अधिकारों की पुनः प्राप्ति के लिए प्रयत्न आरम्भ किया और चाहा कि नांदली के ठाकुर हिम्मतसिंह के पुत्र मोहकमसिंह को गोद लेकर अपना वारिस बनाया जावे। इसी उद्देश्य से उसने उदयपुर के महाराणा स्वरूपसिंह के पास भी पत्र भेजा और महाराणा ने भी समयानुसार प्रयत्न किया, परन्तु महारावल की शीघ्रता के कारण वह पासा उलटा पड़ा।

अधिकार-प्राप्ति के लिए महारावल का उद्योग

सूरमा अभयसिंह और उदयसिंह की सलाह से महारावल ने मोहकमसिंह को गोद लेने का कार्य शीघ्रता-पूर्वक करना चाहा। यहां तक कि उसने उक्त सरदारों के कथनानुसार मोहकमसिंह को गोद लेने का मुहूर्त निश्चय कर उसको नियत दिवस पर बुलाने के लिए घोड़ा और सिरोपाव तक भेज दिया। इसमें उक्त दोनों सरदारों की चालबाज़ी थी, क्योंकि इधर तो उन्होंने महारावल को ऐसी सलाह दी और उधर दलपतसिंह को सब हाल लिखकर डूंगरपुर बुलाया। फिर वे पोलिटिकल एजेंट कप्तान हंटर के पास खैरवाड़े पहुंचे और उन्होंने महारावल की शिकायत कर उसका यह कार्य रोकने की प्रार्थना की। अंग्रेज़ सरकार की स्वीकृति के बिना महारावल की यह कार्यवाही कप्तान हंटर को अनुचित जान पड़ी। इसमें उपद्रव होने की आशंका देख उसने खैरवाड़े से भील पल्टन की एक कम्पनी डूंगरपुर भेजी और उसे यह आज्ञा दी कि वह नांदली के ठाकुर या उसके पुत्र को राजधानी में प्रवेश करने से रोके। इस अवसर पर कतिपय राजपूतों को लेकर अभयसिंह और उदयसिंह धम्बा

हिम्मतसिंह को गोद लेने के संबन्ध में बखेड़ा

माता की मगरी पर चढ़ गये और उन्होंने राजमहलों पर गोलियां दागना शुरू किया। सम्भवतः उन गोलियों की मार से महारावल भी मारा जाता, परन्तु वह बाल-बाल बच गया[1]।

इस घटना का संवाद सुन कुंवर दलपतसिंह भी प्रतापगढ़ से चला आया और उसने नांदली के ठाकुर हिम्मतसिंह को इस झगड़े का मूल समझ उसे क़ैद कर दिया। यद्यपि महारावल जसवन्तसिंह निर्दोष था तो भी उक्त दोनों सरदारों के प्रपंच के कारण वही इस उपद्रव की जड़ समझा गया। अन्त में अंग्रेज़ सरकार ने वि० सं० १६०१ (ई० स० १८४५) में उसको वृन्दावन भेज दिया, जहां थोड़े ही समय बाद उसकी मृत्यु हुई। जब तक वह विद्यमान रहा, उसे व्यय के लिए १००० रुपये मासिक मिलते रहे[2]।

अंग्रेज़ सरकार का महारावल को वृन्दावन भेजना

महारावल जसवन्तसिंह अयोग्य शासक था और उसका चाल-चलन भी ठीक न था, जिससे डूंगरपुर की बड़ी दुर्दशा हुई। अंग्रेज़ सरकार से संधि होने और उसको समय समय पर सरकार की ओर से सहायता मिलने पर भी वह अपने राज्य का सुप्रबन्ध कर सरदारों, भीलों आदि को क़ाबू में न ला सका, जिससे दलपतसिंह प्रतापगढ़ से दत्तक लाया गया। फिर भी खटपटी सरदारों के उत्तेजित करने पर सरकार की इच्छा के विरुद्ध आचरण करने लगा, जिसका परिणाम उस (महारावल) के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हुआ।

महारावल जसवन्तसिंह के दो राणियां थीं, उनमें से राठोड़ राणी ईडरणी गुमानकुंवरी के गर्भ से सूर्यकुमारी का जन्म हुआ था[3], जो अविवाहित ही परलोक सिधारी।

महारावल की राणियां और संतति

(१) डूंगरपुर राज्य के बड़वे की ख्यात, पृ० १०७–१०८।

(२) ट्रीटीज़, एंगेजमेंट्स ऐंड सनद्ज़; जिल्द ३, पृ० २२। के० डी० अर्स्किन; राजपूताना गैज़ेटियर (मेवाड़ रेज़िडेन्सी), जिल्द २ (ए०), पृ० १३४।

(३) डूंगरपुर की केला बावड़ी की (आषाढ़ादि) वि० सं० १८८३ (चैत्रादि १८८४) शाके १७४६ वैशाख सुदि ७ (ई० स० १८२७ ता० ३ मई) गुरुवार की प्रशस्ति।

महारावल जसवन्तसिंह के समय के १८ लेख मिले हैं, जिनमें आठ ताम्र-लेख और दस शिलालेख हैं। इनमें सबसे पहला लेख वि० सं० १८६५ फाल्गुन सुदि ५ (ई० स० १८०९ ता० १९ फरवरी) और अन्तिम लेख (आ०) वि० सं० १८९८ (चै० १८९९) वैशाख सुदि १० (ई० स० १८४२ ता० १९ मई) गुरुवार का है। वि० सं० १८८५ (ई० स० १८२८) के पीछे के कुछ लेखों में कुंवर दलपतसिंह (प्रतापगढ़वाले) का भी नाम है।

महारावल के समय के ताम्र-पत्र और शिलालेख

इसी प्रकार स्वतः कुंवर दलपतसिंह के भी वि० सं० १८८९ (ई० स० १८३२) से जसवन्तसिंह की मृत्यु के पीछे तक के चार ताम्र-लेख मिले हैं। उनमें प्रारम्भ के ताम्र-लेखों में उसको महाराजकुमार और जसवन्तसिंह की मृत्यु के पीछे के ताम्र-पत्र में महारावत लिखा है। उपर्युक्त महारावल जसवन्तसिंह के समय के लेखों में नीचे लिखे हुए लेख उस समय के इतिहास पर कुछ प्रकाश डालते हैं—

(१) (आ०) वि० सं० १८६६ (चै० १८६७) चैत्र सुदि ९ (ई० स० १८१० ता० १३ अप्रेल) का दानपत्र। इसमें सूरमा गुमानसिंह को बड़ोदिया गांव देने का उल्लेख है। इससे ज्ञात होता है कि डूंगरपुर टूटा तब सूरमा उम्मेदसिंह काम आया, परन्तु यह ज्ञात नहीं होता कि सूरमा उम्मेदसिंह किस शत्रु के साथ लड़ाई में मारा गया। अनुमान होता है कि वि० सं० १८६२ (ई० स० १८०५) में महारावल फ़तहसिंह के समय सिंधिया के सेनापति सदाशिवराव की डूंगरपुर पर चढ़ाई हुई, उसमें उम्मेदसिंह मारा गया हो और उसकी मूंडकटी में फ़तहसिंह के पुत्र जसवन्तसिंह ने उम्मेदसिंह के संबंधी गुमानसिंह को बड़ोदिया गांव दिया हो।

(२) वि० सं० १८६७ पौष वदि (अमांत, पूर्णिमांत माघ वदि) ३ (ई० स० १८११ ता० १२ जनवरी) का तरवाड़ी लखीराम के नाम का दानपत्र। इसमें शाह नवलचन्द के साथ तरवाड़ी लखीराम ओल में गया इसलिए धंबोला गांव में उसके बराड़ के रुपये छोड़ने का वर्णन है। इस ताम्रपत्र से यह ज्ञात नहीं होता कि नवलचन्द ओल में कहां और कब गया? अनु-

मान होता है कि वि० सं० १८६२ (ई० स० १८०५) में दौलतराव सिंधिया के सेनापति सदाशिवराव की चढ़ाई हुई, उसमें दो लाख रुपये देने ठहरे थे अतएव उनकी वसूली तक के लिए वह ओल में गया हो।

(३) वि० सं० १८६८ शाके १७३३ माघ सुदि ७ (ई० स० १८१२ ता० २० जनवरी) सोमवार के सूरपुर गांव के गौतमेश्वर महादेव की प्रशस्ति उसमें सूरमा गुमानसिंह-द्वारा अपने पिता गौतम के पीछे गौतमेश्वर महादेव का शिवालय बनाने का उल्लेख है और उसके भाई गुलालसिंह तथा सरदारसिंह का भी नाम है।

(४) आषाढ़ादि वि० सं० १८८३ (चैत्रादि १८८४) शाके १७४९ वैशाख सुदि ७ (ई० स० १८२७ ता० ३ मई) की डूंगरपुर की केला बावड़ी की प्रशस्ति। इसमें महारावल जसवन्तसिंह की राठोड़ राणी ईडरणी गुमानकुंवरी-द्वारा उक्त बावड़ी बनाये जाने का उल्लेख है। उक्त प्रशस्ति में महारावल वैरिशाल, फ़तहसिंह और जसवन्तसिंह की राणियों के नाम एवं जसवन्तसिंह की राठोड़ राणी ईडरणी के मायके(पीहर)वाले राठोड़ विजयसिंह के वंश का भी वर्णन है। इस प्रशस्ति में जसवन्तसिंह की पहली राणी गुमानकुंवरी के गर्भ से राजकुमारी सूर्यकुंवरी के जन्म का भी उल्लेख है।

(५) आषाढ़ादि वि० सं० १८९८ (चैत्रादि १८९९) शाके १७६४ वैशाख सुदि १० (ई० स० १८४२ ता० १९ मई) की डूंगरपुर के सूरमों के चौरे की प्रशस्ति। इसमें सूरमा गुलालसिंह और उसके पुत्र अभयसिंह द्वारा विष्णु-मंदिर बनाने का उल्लेख है। उक्त प्रशस्ति में सरदारसिंह सोलंकी को जसवन्तसिंह का प्रधान बतलाया है और सूरमाओं को सोमवंशी क्षत्रिय लिखा है।

महारावल उदयसिंह (दूसरा)

दसवां अध्याय

महारावल उदयसिंह (दूसरे) से वर्त्तमान समय तक

उदयसिंह (दूसरा)

महारावल जसवंतसिंह अंग्रेज़ सरकार-द्वारा वृन्दावन भेज दिया गया, तो भी सरदारों का बखेड़ा न मिटा। उन्होंने डूंगरपुर और प्रतापगढ़ राज्य पृथक् पृथक् रहने और डूंगरपुर की गद्दी पर वहां के राज-वंश में से किसी योग्य व्यक्ति को बिठलाने के लिए अंग्रेज़ सरकार से अपनी प्रार्थना बराबर जारी रक्खी। उनकी इस प्रार्थना में जसवंतसिंह की राणियां भी सम्मिलित थीं। अंग्रेज़ सरकार ने महारावत दलपतसिंह के अधिकार में डूंगरपुर का राज्य रहने में अधिक उपद्रव की आशंका देख यह निश्चय किया कि दलपतसिंह प्रतापगढ़ की गद्दी पर ही रहे और डूंगरपुर के लिए वहां के हक़दारों में से किसी को गोद लेकर उसे डूंगरपुर का स्वामी बना दिया जाय। जब तक वह (नवीन राजा) राज्य-कार्य संभालने के योग्य न हो, तब तक डूंगरपुर का राज्य-प्रबन्ध दलपतसिंह की निगरानी में रहे।

गोद लेने के बारे में अंग्रेज़ सरकार का निर्णय

अंग्रेज़ सरकार के इस निर्णय को राणियां, सरदारों आदि ने उचित समझा और वहां के नज़दीकी हक़दारों में से किसी को दत्तक लेने का विचार होने पर सावली के ठाकुर जसवन्तसिंह के (जो नांदली के बाद राज्य का हक़दार था) पुत्रों में से एक को गोद लेना निश्चय हुआ। उक्त ठाकुर के चार पुत्र थे। उनमें से किसे दत्तक लिया जाय, यह प्रश्न उपस्थित हुआ तो सरदारों आदि ने उन चारों लड़कों की बुद्धि की परीक्षा करने के लिए कुछ मिठाई मंगवाकर उनमें बँटवा दी। उस समय तीन लड़कों ने तो अपने अपने हाथों में मिठाई ले ली, किन्तु तीसरे पुत्र

महारावल उदयसिंह को साबली से गोद लाना

उदयसिंह ने हाथ में मिठाई न ली और थाली में लाकर देने को कहा। आठ वर्ष के बालक की यह चतुराई देख सब लोग चकित हो गये। अनन्तर कुछ रुपये मंगवाकर उन चारों लड़कों को दिये, जिनमें से तीन लड़कों ने तो उन रुपयों को अपने पास रख लिया, पर उदयसिंह ने उन रुपयों में से कुछ ब्राह्मणों को देकर शेष रुपयों से शस्त्र मंगवा देने की इच्छा प्रकट की। उपस्थित सरदारों ने उसकी बुद्धिमानी की सराहना करते हुए उसी को डूंगरपुर राज्य का स्वामी स्थिर किया। उनके निर्णय को महारावल जसवन्तसिंह की राणियों आदि ने भी स्वीकार कर लिया। फिर वे सब सरदार उस बालक को लेकर प्रतापगढ़ गये और उन्होंने वि० सं० १९०३ आषाढ़ सुदि ३ (ई० स० १८४६ ता० २३ जून) को उसे महारावत दलपतसिंह के पास उपस्थित कर उसको डूंगरपुर का स्वामी स्वीकार करने के लिए आग्रह किया। तब महारावत दलपतसिंह ने भी उनके इस निर्णय को पसंद कर उदयसिंह को डूंगरपुर का स्वामी स्वीकार किया और उसके अल्पवयस्क होने के कारण उस(दलपतसिंह)की सलाह से राज्यशासन होता रहा, परन्तु वह प्रतापगढ़ में ही रहता था, जिससे राज्य-प्रबंध में कुछ भी सुधार न होकर त्रुटियां ज्यों-की-त्यों बनी रहीं।

महारावल उदयसिंह का गद्दी बैठना

महारावल उदयसिंह का जन्म (आषाढ़ादि) वि० सं० १८९५ (चैत्रादि १८९६) (अमांत)(द्वि०) ज्येष्ठ (पूर्णिमांत आषाढ़) वदि १० (ई० स० १८३९ ता० ६ जुलाई) शनिवार, भरणी नक्षत्र को हुआ और वृंदावन में महारावल जसवन्तसिंह की मृत्यु हो जाने के पश्चात् वह वि० सं० १९०३ आश्विन सुदि ८ (ई० स० १८४६ ता० २८ सितम्बर) को डूंगरपुर के राज्य-सिंहासन पर बैठा। सबसे पहले उसको योग्य शिक्षा मिलने की आवश्यकता थी, परन्तु उन दिनों राजपूताने में आधुनिक रीति से शिक्षा देने की प्रथा का जन्म ही नहीं हुआ था, इसलिए उस समय की प्रचलित रीति के अनुसार वहीं के पंडितों-द्वारा उसको शिक्षा देने की व्यवस्था की गई। वह योग्य और अनुभवी सरदारों के निरीक्षण में रक्खा गया, जिससे उसकी मानसिक और शारीरिक शक्तियों

का विकास हुआ। उसने अपनी कुशाग्र बुद्धि से उस समय की रूढ़ि के अनुसार शीघ्र ही आवश्यक शिक्षा प्राप्त कर ली और शासन-प्रबन्ध का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त कर लिया। अनुभवी सरदारों की देख-रेख में रहकर उसने सब राजरीतियां सीख सामान्यतः राजनीति भी जान ली और व्यावहारिक ज्ञान में वह कुशल हो गया। अपने अनुभव को बढ़ाने के लिए उसने राजपूताने के अन्य राज्यों में भी भ्रमण किया और वि० सं० १९१२ मार्गशीर्ष (ई० स० १८५५ दिसम्बर) में वह उदयपुर जाकर वहां के स्वामी महाराणा स्वरूपसिंह से मिला। महाराणा ने उदयपुर नगर से दक्षिण की तरफ़ नागों के अखाड़े तक स्वागतार्थ जाकर उसका सम्मान किया और उसने महाराणा के गौरव के अनुसार शिष्टाचार प्रकट किया।

महारावल की बाल्यावस्था के कारण राज्य-प्रबन्ध महारावत दलपतसिंह की इच्छा के अनुसार होता था, परन्तु राज्य के मुख्य मुसाहब अभयसिंह सूरमा और उदयसिंह सोलंकी थे, जिनके कुप्रबन्ध से अंग्रेज़ सरकार का ख़िराज भी बाक़ी रहने लगा और राज्य पर तीन-चार लाख रुपयों का ऋण हो गया। तब महारावत दलपतसिंह ने वि० सं० १९०६ (ई० स० १८४९) में उनको अलग कर ठाकरड़ा के ठाकुर गुलाबसिंह को प्रधान बनाया, जिसपर उन्होंने पांच हज़ार भीलों का दल लेकर उपद्रव करना आरंभ किया। इसपर अंग्रेज़ सरकार ने सहायता देकर उस उपद्रव को शांत किया और वि० सं० १९०९ (ई० स० १८५२) में राज्य-प्रबन्ध के लिए मुन्शी सफ़दरहुसेनखां नियत हुआ और महारावत दलपतसिंह का हस्तक्षेप दूर किया गया।

सूरमा अभयसिंह और उदयसिंह सोलंकी को राज्य-कार्य से पृथक् करना

सत्रह वर्ष की आयु हो जाने पर (आषाढ़ादि) वि० सं० १९११ (चैत्रादि १९१२) ज्येष्ठ सुदि २ (ई० स० १८५५ ता० १८ मई) को महारावल का पहला विवाह सिरोही के महाराव शिवसिंह की पुत्री (उम्मेदसिंह की बहिन) उम्मेदकुंवरी से हुआ। उक्त देवड़ी महाराणी के गर्भ से (आषाढ़ादि) वि० सं० १९१२

महाराजकुमार का जन्म

चैत्रादि १९१३ (अमांत) चैत्र (पूर्णिमांत वैशाख) वदि ८ (ई० स० १८५६ ता० २८ अप्रेल) सोमवार को महाराजकुमार खुंमाणसिंह का जन्म हुआ।

मुन्शी सफ़दरहुसेनखां ने रियासत में अच्छा प्रबन्ध किया, परन्तु वह वि० सं० १९१३ (ई० स० १८५६) में वहां से चला गया। इस समय तक महारावल को राज्य-कार्य का भली-भांति अनुभव हो गया था, इसलिए राज्याधिकार सौंपे जाने पर वह वि० सं० १९१५ (ई० स० १८५८) से स्वतः राज्य-कार्य करने लगा।

महारावल का स्वतः राज्य-कार्य चलाना

वि० सं० १९१४ (ई० स० १८५७) में अंग्रेज़ सरकार की भारतीय सेना बाग़ी हो गई। उसने कई अंग्रेज़ अफ़सरों का मार डाला और जगह जगह विद्रोह किया। नीमच की सरकारी सेना भी बाग़ी हो गई, जिससे अन्देशा हुआ कि मेवाड़ में खैरवाड़े की छावनी की सेना कहीं विद्रोही न हो-जाय। ज्योंही महारावल को नीमच की सेना के विद्रोह का समाचार मिला त्योंही वह अपनी तथा अपने सरदारों की सेना के साथ खैरवाड़े की छावनी में पहुंचा, चार महीने तक वहां ठहरा और उधर उसने बाग़ी सेना को रोकने में वहां के अंग्रेज़ अफ़सर कप्तान ब्रुक को अच्छी सहायता दी। महा-रावल के समझाने से खैरवाड़े की भील-सेना अंग्रेज़ सरकार की वफ़ादार बनी रही, जिससे उधर बाग़ियों का उपद्रव न हुआ। महारावल की इस सेवा से प्रसन्न होकर अंग्रेज़ सरकार ने उसको खिलअत देना निश्चय किया और वाइसरॉय तथा राजपूताना के एजेंट गवर्नर जेनरल ने उसकी इस सेवा की सराहना कर कृतज्ञता-सूचक खरीते भेजे।

सन् १८५७ ई० का विद्रोह और महारावल की सहायता

लॉर्ड डलहौज़ी ने कई एक देशी राजाओं को निःसन्तान होने पर गोद लेने से वंचित रक्खा और उनके मरने पर उनके राज्य ब्रिटिश राज्य में मिला लिये, जिससे राजाओं में असंतोष फैलने लगा। जब सिपाही-विद्रोह मिट गया और भारत-वर्ष का शासन ईस्ट इण्डिया कंपनी के हाथ से निकलकर श्रीमती महाराणी विक्टोरिया के अधीन हुआ, तब उसने भारतीय

डूंगरपुर के महारावल को गोद लेने की सनद मिलना

राजा और प्रजा के विश्वास के लिए इस आशय का इश्तिहार जारी कराया कि हिन्दुस्तानवालों की इज़्ज़त और हक़ बराबरी के समझे जायेंगे। धार्मिक विषयों में हस्तक्षेप न होगा और ईस्ट इंडिया कंपनी ने राजाओं के साथ जो अहदनामे किये हैं, उनका यथेष्ट पालन होगा। फिर भारत का तत्कालीन गवर्नर जेनरल लॉर्ड कैनिङ्ग महाराणी का प्रतिनिधि (Viceroy) बनाया जाकर भारतवर्ष के शासन के लिए नियत हुआ। उसके शासनकाल में भारतीय राजा-महाराजाओं के असंतोष को मिटाने के लिए उनके निःसन्तान होने की अवस्था में गोद लेने के अधिकार के प्रश्न का निर्णय होकर समस्त देशी राज्यों को गोद लेने का अधिकार मिलना स्थिर हुआ। वि० सं० १९१८ फाल्गुन सुदि १० तदनुसार ता० ११ मार्च सन् १८६२ ई० को वाइसरॉय के हस्ताक्षर से गोद के अधिकार की सनदें तैयार होकर भारतवर्ष के राजाओं को दी गईं। उस समय डूंगरपुर राज्य को भी वैसी सनद मिली जिसका आशय इस प्रकार है—

"श्रीमती महाराणी विक्टोरिया की इच्छा है कि भारत के बड़े और छोटे राजाओं का अपने अपने राज्यों पर अधिकार तथा उनके वंश की जो प्रतिष्ठा एवं मान-मर्यादा है वह सदैव बनी रहे, इसलिए उक्त इच्छा की पूर्ति के निमित्त मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि वास्तविक उत्तराधिकारी के अभाव में यदि आप या आपके राज्य के भावी शासक हिन्दू-धर्मशास्त्र और अपनी वंश-प्रथा के अनुसार दत्तक लेंगे तो वह जायज़ समझा जायगा"।

वि० सं० १९२१ (ई० स० १८६४) में महारावल ने द्वारिका की यात्रा करने को प्रस्थान किया। उस समय अंग्रेज़ सरकार की तरफ़ से उसके साथ मेजर मैकेंज़ी नियत हुआ। वह ता० १५ दिसम्बर को बंबई पहुंचा। उस समय उसके स्वागत के लिए बंबई के गवर्नर की तरफ़ से रेलवे स्टेशन पर एक अफ़सर, कुछ सवार और सिपाही उपस्थित थे। स्टेशन पर उतरते ही नियमानुसार पन्द्रह तोपों की सलामी सर हुई और वे लोग निवासस्थान (बालकेश्वर) तक उसको पहुंचाने

महारावल की द्वारिका यात्रा

गये। वहां उसने बंबई के तत्कालीन गवर्नर से मुलाक़ात की। महारावल की योग्यता से वह बड़ा प्रसन्न हुआ और अपनी मित्रता की स्मृति चिर-स्थायी रखने के हेतु उसने महारावल के लिए एक राइफ़ल (बन्दूक) भेजी।

काठियावाड़ की यात्रा से वहां के राज्यों की उन्नत दशा का महारावल को प्रत्यक्ष अनुभव हुआ, जिससे उसने अपने राज्य की भी उन्नति करना चाहा। इसके लिए व्यापार की वृद्धि, खेती की उन्नति, देश में शांति, प्रजा को न्याय मिलने आदि बातों की तरफ़ उसकी रुचि बढ़ी।

देशोन्नति की ओर महारावल का ध्यान

व्यापार की वृद्धि के साधनों में उसने मेलों की योजना की। उक्त राज्य में बेणेश्वर महादेव[1] के मेले में, जो फाल्गुन में होता और पन्द्रह दिन तक रहता था, दूर-दूर के व्यापारी और यात्री आते थे। उनके सुभीते और व्यापार की वृद्धि के लिए पांच वर्ष तक उस मेले में आने और बिकनेवाले माल का महसूल माफ़ कर दिया और आगे के लिए पहले से आधा कर दिया, जिससे विशेषरूप से व्यापारी आने लगे और ख़ूब क्रय-विक्रय होने लगा। इस मेले के अवसर पर महारावल स्वयं वहां जाकर रहता, जिससे लोगों पर उसका प्रभाव पड़ने के अतिरिक्त व्यापारियों और यात्रियों को संतोष होने लगा।

दूसरा बड़ा मेला गलियाकोट में फ़करुद्दीन नामक पीर की स्मृति में प्रतिवर्ष मुहर्रम के महीने में होता था, जिसमें दूर-दूर के बोहरे लोग ज़ियारत के लिए आते थे। उक्त मेले में अनेक व्यापारी भी एकत्र होते थे।

(१) बांसवाड़े के स्वामी बेणेश्वर का स्थान अपने राज्य में होने का दावा करते थे। इसलिए पोलिटिकल एजेंट ने सन् १८६४ ई० (वि० सं० १९२१) में इसके निर्णयार्थ अपने असिस्टंट को उसकी जांच पड़ताल के लिए नियत किया। उसने तहक़ीक़ात कर उक्त स्थान का डूंगरपुर राज्य की सीमा के अंतर्गत होने का फ़ैसला दिया, जिसे बांसवाड़ा के दरबार ने भी स्वीकार किया, परन्तु सन् १८७१-७२ ई० में उक्त राज्य ने उस मेले में जानेवाले बैलों पर प्रति बैल ६ रुपये महसूल लगाया, जिसकी सूचना 'सुपरिन्टेन्डेन्ट, हिली ट्रैक्ट्स' को होने पर उसने बांसवाड़े के महारावल को लिख वह महसूल माफ़ करा दिया।

महारावल ने उक्त मेले के अवसर पर भी व्यापारियों के लिए महसूल में कमी की और उनकी रक्षा का यथेष्ट प्रबंध कर दिया, जिससे उसमें भी पहले की अपेक्षा अधिक व्यापार होने लगा और राज्य को भी महसूल की अच्छी आय होने लगी।

उसने खेती की उन्नति के लिए काश्तकारों को रिआयत पर ज़मीन देना, कुए बनवाने के लिए उनको उत्साहित करना और आवश्यकतानुसार राज्य से भी सहायता देना आरंभ किया। तालाबों की मरम्मत कराकर आबपाशी के साधन बढ़ाये गये, जिससे खेती की ओर लोगों की प्रवृत्ति बढ़ी और बहुतसी पड़ी हुई ज़मीन में खेती होने लगी। उसने वि० सं० १९१६ (ई० स० १८५९) से राजमहलों का जीर्णोद्धार और सुधार आरंभ किया, जिससे बहुतसे ग़रीब लोगों को सहारा मिलने लगा।

न्याय-विभाग को ठीक करने के लिए वि० सं० १९२३ (ई० स० १८६६) में फ़ौजदारी अदालत के काम पर मुंशी निज़ामुद्दीन मुक़र्रर किया गया।

लुटेरे भील लोग यद्यपि दबे हुए थे, तो भी कभी कभी वे उपद्रव कर बैठते थे। एक बार जब महारावल दौरे पर था, तब मांडव के भीलों ने उसके

भीलों का उपद्रव

लश्कर का सामान लूट लिया। यही नहीं, उन्होंने पोलिटिकल एजेंट के कैम्प (पड़ाव) पर भी आक्रमण किया और वे उसका सामान भी ले गये। वि० सं० १९२४ (ई० स० १८६७) में देवल की पाल के भीलों ने राज्य की आज्ञा से सिर फेरा और विद्रोह कर डूंगरपुर से खेरवाड़े जानेवाले मार्ग को रोक दिया। उन्होंने देवल के थानेदार को पकड़कर बुरी तरह मार डाला। भीलों की इस उद्दंडता का समाचार सुनकर महारावल ने अपनी सेना के साथ घटना-स्थल पर पहुंच कर भीलों को घेर लिया। वे लोग "बराड़" (ज़मीन का महसूल) सहूलियत से नहीं देते थे और प्रतिवर्ष उस कर को वसूल करने में कठिनाई होती थी। बराड़ की वसूली का समय आता, तब प्रतिवर्ष विलायतियों (अरब, मकरानी और सिंधी) का एक बेड़ा भेजना पड़ता था। अपना आतंक जमाने के

लिए विलायती लोग कभी कभी भीलों के साथ कठोर व्यवहार भी करते थे। ज्योंही उस वर्ष सदैव के अनुसार बराड़ की वसूली के लिए विलायतियों का बेड़ा भेजा गया, तो भीलों ने उसपर हमला कर दिया, जिससे रणसागर के पास विलायतियों के बेड़े के १४ सिपाही मारे गये। भीलों की इस धृष्टता का समाचार सुन महारावल क्रुद्ध हो उठा। उसने हथाई के ठाकुर रघुनाथसिंह को सेना देकर उनपर भेजा। उसने तसल्ली देकर भीलों के मुखिये लालूड़ा और मावा को बुलाकर मरवा डाला, जिससे उन लोगों को राज्य का अविश्वास हो गया और वे अधिक उपद्रव करने लगे, जिन्हें महारावल की सेना न दबा सकी। अन्त में खैरवाड़े की "मेवाड़ भीलकोर" की सहायता से वे लोग चारों तरफ़ से दबाये गये और उनके मुखियों को गिरफ़्तार कर दंड दिया गया, जिससे उनका उपद्रव शांत हुआ। फिर महारावल ने विलायती और मकरानियों के बेड़ों को, जो प्रजा पर अत्याचार करते थे, निकालना शुरू किया और ई० स० १८६६ तक १८७ व्यक्तियों को अपने राज्य से निकाल दिया, जिससे उनका ज़ुल्म मिट गया।

उक्त उपद्रव के मुखिये ठाकुर अभयसिंह सूरमा (गेंजीवाला) और रघुनाथसिंह (हथाईवाला) महारावल के विरोधी थे, क्योंकि अब राज्य में उनकी पूछ नहीं थी। इसलिए वे ऐसे उपद्रवों से ही प्रसन्न रहते थे। भीलों का यह उपद्रव इसलिए हुआ कि महारावल अपने राज्य की दीवानी और फ़ौजदारी का अच्छा प्रबन्ध करना चाहता था, जिससे सरदारों को अपने अधिकार चले जाने का भय था। महारावल शिवसिंह के देहांत के पश्चात् राज्य और सरदारों के बीच वैमनस्य बढ़ता ही गया। उन दिनों बड़े दरजे के सरदार अपने पट्टे की प्रजा के दीवानी और फ़ौजदारी मामलों का फ़ैसला स्वयं करने लगे। वे अपने अधिकारों का दुरुपयोग भी करते थे, जो उन्हें रुपये देता वह चाहे कितना ही अपराधी क्यों न हो बच जाता। अपराधियों से रुपये लेने की ओर सरदारों का लक्ष्य होने से भील लोग लूट मार को जारी रख पकड़े जाने पर रुपये देकर छूट जाते। सरदारों के इस

सरदारों के दीवानी और फ़ौजदारी के अधिकार छिन जाना

बुरे काम को रोकने के लिए महारावल ने प्रयत्न किया, परन्तु फिर भी उन्होंने अपना आचरण नहीं सुधारा। तब महारावल ने उनके अधिकार छीनने का प्रस्ताव किया और मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट कर्नल निक्सन ने भी उससे सहमत होकर राजपूताना एजेंसी में उसकी रिपोर्ट कर दी। राजपूताने के तत्कालीन एजेंट गवर्नर जेनरल कर्नल कीटिंग ने उसे स्वीकार कर लिया, परन्तु सरदारों को यह निर्णय अस्वीकार हुआ और असन्तोष बढ़ने से वे लोग महारावल के विरोधी बने रहे। उनकी इन शिकायतों को मिटाने के लिए हिली ट्रैक्ट्स के सुपरिंटेंडेंट कर्नल मैक्सन ने सन् १८७१-७२ की अपनी रिपोर्ट में सरदारों को दीवानी और फ़ौजदारी के अधिकार दिलाने की अनुमति दी, परन्तु मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट ने उसका विरोध किया और महारावल के साथ उस(कर्नल मैक्सन)का अच्छा व्यवहार न होने की शिकायत कर उसकी रिपोर्ट को अनुचित बतलाया। इस प्रकार सरदारों का यह प्रयत्न असफल हुआ, तो भी महारावल और उनके बीच विरोध बना ही रहा।

मुलज़िमों के लेन-देन का अहदनामा

अब तक अंग्रेज़ सरकार के साथ अपराधियों के लेन-देन के संबंध में कोई नियम न होने से फ़ौजदारी सीगे के मुक़द्दमों में अपराधियों को सौंपने में झगड़ा हो जाता था और एक जगह का अपराधी दूसरी जगह छिपकर सज़ा से बच जाता था, जिससे अधिक वारदातें होती थीं। उनको रोकने के लिए वि० सं० १९२६ (ई० स० १८६९) में महारावल ने अंग्रेज़ सरकार के साथ अपराधियों के परस्पर लेन-देन का नीचे लिखा अहदनामा किया, जिससे इस बाबत में कोई झगड़ा न रहा और फ़ौजदारी कार्रवाई में सुभीता हो गया—

पहली शर्त—अंग्रेज़ी राज्य या उसके बाहर का कोई व्यक्ति यदि अंग्रेज़ी इलाक़े में कोई संगीन जुर्म करे और डूंगरपुर राज्य की सीमा के भीतर आश्रय ले तो डूंगरपुर सरकार उसे गिरफ्तार करेगी और उसके तलब किये जाने पर प्रचलित नियम के अनुसार अंग्रेज़ सरकार के सुपुर्द करेगी।

दूसरी शर्त—कोई आदमी, जो डूंगरपुर की प्रजा हो, डूंगरपुर राज्य की सीमा के भीतर कोई बड़ा जुर्म करे और अंग्रेज़ी राज्य में शरण ले, तो उसके तलब किये जाने पर अंग्रेज़ सरकार उसे गिरफ़्तार करेगी और दस्तूर के मुताबिक़ डूंगरपुर सरकार के हवाले करेगी।

तीसरी शर्त—कोई व्यक्ति, जो डूंगरपुर की प्रजा न हो, डूंगरपुर राज्य की सीमा के भीतर कोई संगीन जुर्म कर अंग्रेज़ी इलाक़े में शरण ले, तो अंग्रेज़ सरकार उसे गिरफ्तार करेगी और उसके मुक़द्दमे की तहकीक़ात वह अदालत करेगी, जिसे अंग्रेज़ सरकार हुक्म देगी। साधारण नियम के अनुसार ऐसे मुक़द्दमों की तहकीक़ात उस पोलिटिकल एजेंट की अदालत में होगी, जिससे डूंगरपुर राज्य का राजनैतिक संबंध होगा।

चौथी शर्त—किसी सूरत में कोई सरकार किसी व्यक्ति को, जिसपर संगीन जुर्म का अभियोग लगाया गया हो, सुपुर्द करने के लिए बाध्य न होगी, जब तक कि प्रचलित नियम के अनुसार जिसके राज्य में अपराध किये जाने का अभियोग लगाया गया हो वह सरकार या उसकी आज्ञा से कोई व्यक्ति अपराधी को तलब न करे और जब तक जुर्म की ऐसी शहादत पेश न की जाय, जिससे जिस राज्य में अभियुक्त मिले उसके अनुसार उसकी गिरफ्तारी जायज़ समझी जाय और यदि वही अपराध उसी राज्य में किया जाता, तो वहां भी अभियुक्त दोषी सिद्ध होता।

पांचवीं शर्त—नीचे लिखे हुए अपराध संगीन जुर्म समझे जायंगे—

(१) क़त्ल।

(२) क़त्ल करने का प्रयत्न।

(३) उत्तेजना की दशा में किया हुआ दंडनीय मनुष्य-वध।

(४) ठगी।

(५) विष देना।

(६) ज़िना-बिल्-जब्र (बलात्कार)।

(७) सख्त चोट पहुंचाना।

(८) बच्चों का चुराना।

(९) स्त्रियों का बेचना।

(१०) डकैती।

(११) लूट।

(१२) सेंध लगाना।

(१३) मवेशी की चोरी।

(१४) घर जलाना।

(१५) जालसाज़ी।

(१६) जाली सिक्का बनाना या खोटा सिक्का चलाना।

(१७) दंडनीय विश्वासघात।

(१८) माल असबाब का हज़म करना, जो दंडनीय समझा जाय।

(१९) ऊपर लिखे हुए अपराधों में मदद देना।

छठी शर्त—ऊपर लिखी हुई शर्तों के अनुसार अपराधी को गिरफ़्तार करने, रोक रखने या सुपुर्द करने में जो खर्च लगे, वह उस सरकार को देना पड़ेगा, जो अपराधी को तलब करे।

सातवीं शर्त—ऊपर लिखा हुआ अहदनामा तब तक जारी रहेगा, जब तक अहदनामा करनेवाली दोनों सरकारों में से कोई उसके तोड़े जाने के संबंध में अपनी इच्छा दूसरी से प्रकट न करे।

आठवीं शर्त—इस (अहदनामे) में जो शर्तें दी गई हैं उनमें से किसी का भी ऐसे किसी अहदनामे पर असर न होगा जो दोनों पक्षों के बीच इससे पहले हो चुका है, सिवा किसी अहदनामे के उस अंश के, जो इसके विरुद्ध हो।

यह अहदनामा डूंगरपुर में ता० ७ मार्च ई० स० १८६९ को हुआ।

(हस्ताक्षर) ए० आर० ई० हचिन्सन,
लेफ़्टनेन्ट-कर्नल, स्थानापन्न पोलिटिकल एजेंट, मेवाड़।

(हस्ताक्षर) मेयो
डूंगरपुर के महारावल के हस्ताक्षर।

ता० २१ अप्रेल ई० स० १८६९ को शिमले में हिन्दुस्तान के वाइसरॉय और गवर्नर जेनरल ने इस अहदनामे को स्वीकार किया।

(दस्तखत) डब्ल्यू० एस० सेटनकर,
सेक्रेटरी, गवर्नमेन्ट ऑव् इंडिया, फ़ॉरिन डिपार्टमेंट।

१८ वर्ष के पश्चात् इस अहदनामे में जो थोड़ासा परिवर्तन हुआ, वह नीचे अनुसार है—

२१ वीं अप्रेल ई० स० १८६६ को अंग्रेज़ सरकार और डूंगरपुर रियासत के बीच अपराधियों को सौंपने के बाबत जो अहदनामा हुआ था और चूंकि अंग्रेज़ी इलाक़े से भागकर डूंगरपुर राज्य में पनाह लेनेवाले मुजरिमों के सौंपने के लिए उस अहदनामे में जो प्रणाली निश्चित हुई थी वह अनुभव से अंग्रेज़ी राज्य में प्रचलित क़ानूनी बर्ताव से कम आसान और कम कारगर पाई गई, इसलिए इस लिखावट के द्वारा अंग्रेज़ सरकार तथा डूंगरपुर राज्य के बीच यह शर्त हुई है कि भविष्य में अहदनामे की वे शर्तें, जिनमें मुजरिमों को सुपुर्द करने की कार्रवाई बतलाई गई है, अंग्रेज़ी इलाक़े से भागकर डूंगरपुर राज्य में आश्रय लेनेवाले मुजरिमों को सौंपने के विषय में न लगाई जायगी, लेकिन इस समय ऐसे प्रत्येक विषय में अंग्रेज़ी भारत में जो नियम प्रचलित हैं, उन्हीं के अनुसार कार्रवाई होगी।

आज ता० २० जुलाई ई० स० १८८७ को डूंगरपुर में हस्ताक्षर हुए।

मुहर　　(दस्तख़त) महारावल डूंगरपुर
(हिन्दी में)

(दस्तख़त) कर्नल, ई० टेम्पल,
स्थानापन्न पोलिटिकल सुपरिंटेंडेंट
मुहर　　हिली ट्रैक्ट्स (पहाड़ी ज़िले) मेवाड़।
(दस्तख़त) डफ़रिन
हिन्दुस्तान के वाइसरॉय और गवर्नर जेनरल।

ता० २८ मार्च ई० स० १८८८ को फ़ोर्ट विलियम में हिन्दुस्तान के वाइसरॉय और गवर्नर जेनरल ने इसको मंजूर करके इसकी तस्दीक़ की।

(दस्तख़त) एच्० एम्० ड्यूरंड,
सेक्रेटरी, गवर्नमेंट ऑव इंडिया, फ़ॉरिन डिपार्टमेंट।

वि० सं० १९२५ (ई० स० १८६८-६९) में वर्षा बहुत कम होने से राजपूताने में भारी अकाल पड़ा। डूंगरपुर राज्य भी इस अकाल के प्रकोप से न बचने पाया। महारावल ने अपनी प्रजा की रक्षा के लिए अन्न का महसूल माफ़ कर दिया। पहाड़ी प्रदेश में जहां गाड़ियों आदि के जाने के मार्ग नहीं थे वहां अन्न पहुंचने में बड़ी कठिनता और देर होती थी, तो भी दूर-दूर से अन्न मंगवाकर बेचने का प्रबन्ध किया गया। तालाब खुदवाने, महल, शहरपनाह, दरवाज़े, कुंए, बावड़ी आदि तैयार कराने के कार्य आरम्भ हुए और दुर्भिक्ष-पीड़ित लोगों को उन कार्यों पर लगाया गया। जो लोग परिश्रम करने में असमर्थ थे उनके लिए अन्नक्षेत्र खोले गये, जहां उन्हें भोजन मिलता था। यद्यपि राज्य की स्थिति ठीक न थी तो भी महारावल ने जहां तक उससे हो सका प्रजा को बचाने के लिए पूरा प्रयत्न किया और उस समय राज्य की हैसियत से अधिक रुपये व्यय किये, परन्तु दुर्भिक्ष के अन्त में हैज़े का बड़ा ज़ोर रहा, जिससे हज़ारों मनुष्य मर गये।

वि० सं० १९२५ का भीषण अकाल

चिरकाल से राजपूतों में यह कुप्रथा चली आती थी कि यदि उनके एक से अधिक पुत्री का जन्म हो तो वे पिछली को जन्मते ही बहुधा मार डालते थे। इसका कारण यह था कि राजपूतों को लड़की के विवाह पर दहेज आदि में बहुत व्यय करना पड़ता, जिसको वे असह्य समझते थे। वे अपनी हैसियत से अधिक व्यय करते, तभी उनकी लड़कियों का विवाह होता था। जो लोग इस प्रकार व्यय करने में असमर्थ होते, उनकी पुत्रियां आजन्म कुंवारी रह जाती थीं। यदि किसी के एक से अधिक पुत्रियां होतीं तो वह उनके विवाह के व्यय से ही बरबाद हो जाता था। इसी लिए महारावल ने वि० सं० १९२५ माघ सुदि ४ (ई० स० १८६९ ता० १७ जनवरी) को एक आज्ञा-पत्र निकाल कन्याओं को मारने की रोक की और ऐसा करनेवाले को भारी दंड देने की घोषणा की।

लड़कियों को मारने की राजपूती प्रथा को रोकना

महारावल को राजपूताने के भिन्न-भिन्न नगर एवं राज्यों में भ्रमण

कर वहां के प्रबन्ध, वैभव आदि को अवलोकन करने का बड़ा चाव था, परन्तु इस कार्य में अधिक व्यय न करने का भी उसे विचार रहा, इसलिए वि० सं० १९२६ (ई० स० १८६९-७०) में उसने अप्रकट-रूप से राजपूताने के कई राज्यों में भ्रमण कर उनकी राजधानी और वहां के प्रबन्ध आदि को देख बहुत कुछ अनुभव प्राप्त किया।

महारावल का राजपूताने में भ्रमण

कोटे का महाराव शत्रुशाल वि० सं० १९२७ (ई० स० १८७०) में अपना विवाह करने को ईडर गया। वहां से लौटते समय उसका मुक़ाम डूंगरपुर राज्य के बीछीवाड़े स्थान में हुआ। उस समय महाराव के साथ लगभग सात हज़ार मनुष्य, १५०० घोड़े, १५०० ऊंट, ९ हाथी और ६ तोपें थीं। उक्त स्थान में डूंगरपुर राज्य की ओर से आतिथ्य का यथोचित प्रबन्ध किया गया। फिर महारावल ने अपनी तरफ़ से सरदार आदि चार प्रतिष्ठित पुरुषों को महाराव के पास भेज डूंगरपुर में मेहमान होने के लिए आग्रह करवाया, जिसको उस (महाराव) ने स्वीकार किया। तब महारावल डूंगरपुर से एक कोस दूर थाणा गांव तक पेशवाई कर महाराव को डूंगरपुर में ले आया। दो दिन तक उक्त महाराव का डूंगरपुर में ठहरना हुआ और महारावल की ओर से उसका प्रेम-पूर्वक आतिथ्य हुआ।

कोटे के महाराव शत्रुशाल का आतिथ्य

वि० सं० १९३० पौष सुदि ३ (ई० स० १८७३ ता० २२ दिसम्बर) रविवार को महारावल की राजकुमारी गुलाबकुंवरी का विवाह जैसलमेर के महारावल वैरिशाल के साथ हुआ। जैसलमेर से उक्त महारावल की बरात आने पर महारावल उदयसिंह ने बीछीवाड़े में उसका स्वागत किया और जब बरात लौटी तब वहीं तक पहुंचाने को गया। कर्नल निक्सन (मेवाड़ का पोलिटिकल एजेंट) और मेजर गनिंग (सुपरिंटेंडेंट हिली ट्रैक्ट्स, मेवाड़) भी इस विवाह में सम्मिलित हुए। इस विवाह में बहुत रुपये व्यय हुए।

जैसलमेर के महारावल वैरिशाल के साथ महारावल की राजकुमारी का विवाह

वि० सं० १९३१ (ई० स० १८७५) में महाराजकुमार खुमानसिंह का विवाह रतलाम के महाराजा भैरवसिंह की पुत्री जसकुंवरी से (अमांत) माघ (पूर्णिमांत फाल्गुन) वदि २ (ता० २२ फरवरी) को बड़े समारोह के साथ हुआ। उक्त कुंवराणी के गर्भ से केवल एक कन्या (गिरवरकुंवरी) उत्पन्न हुई थी।

रतलाम में महाराजकुमार खुमानसिंह का विवाह

वि० सं० १९३० (ई०स० १८७४ फरवरी) को महारावल का दीवान निहालचन्द मर गया। वह बड़ा बुद्धिमान् तथा राज्य का शुभचिंतक था। उसकी उत्तम कारगुज़ारी के कारण महारावल ने उसे दो गांव जागीर में देने के अतिरिक्त पैर में सोने के लंगर पहनने की इज़्ज़त प्रदान की और मेवाड़ के महाराणा शंभुसिंह ने भी उसको स्वर्ण के लंगर पहनने का सम्मान दिया। उसकी मृत्यु के पश्चात् कुछ समय तक महारावल राज्य के सब कार्यों को स्वयं करता रहा। उस समय वह अपने पुत्र महाराजकुमार खुमानसिंह को भी पास रखता था, ताकि उसे भी राज्य-कार्य का अनुभव हो। फिर वि० सं० १९३३ (ई० स० १८७६) में उसने शिवलाल गांधी को दीवान के पद पर नियत किया।

दीवान निहालचन्द की मृत्यु

मेवाड़ का महाराणा सज्जनसिंह अपना प्रथम विवाह करने के लिए वि० सं० १९३२ आषाढ़ (ई० स० १८७५) में ईडर गया। उस समय डूंगरपुर राज्य के बीछीवाड़े गांव में उसका मुकाम हुआ। इन वर्षों में मेवाड़ के महाराणा और डूंगरपुर के महारावल की परस्पर मुलाक़ात में विवाद उत्पन्न हो रहा था, इसलिए महारावल स्वयं महाराणा की मुलाक़ात को न गया, परन्तु महाराणा के लिए उचित प्रबंध करवा दिया।

महाराणा सज्जनसिंह का बीछीवाड़े में मुकाम

वि० सं० १९३३ आश्विन सुदि १४ (ई० स० १८७६ ता० २ अक्टोबर) को महारावल ने राणियों सहित तीर्थ-यात्रा के लिए प्रस्थान किया।

महारावल की तीर्थयात्रा

ता० ६ अक्टोबर को वह खैरवाड़े होता हुआ, ऋषभदेव पहुंचा। बारहपाल के मुक़ाम पर मेवाड़ के महाराणा सज्जनसिंह के भेजे हुए प्रतिष्ठित पुरुषों ने उसे उदयपुर आने का आग्रह किया, परंतु कई बातों के विचार से महारावल उदयपुर न जा सका और वहां से वह सीधा एकलिंगजी, नाथद्वारा और कांकरोली होता हुआ नसीराबाद पहुंचा। दूसरे दिन वह अजमेर होकर पुष्कर गया, जहां उसने स्नान कर दान-पुण्य किया। वहां से रेल-द्वारा जयपुर होता हुआ वह भरतपुर पहुंचा, जहां के महाराजा जसवन्तसिंह ने महारावल को अपना मेहमान किया। वहां से वह डीग, गोवर्द्धन और मथुरा देखता हुआ वृंदावन पहुंचा। अपने ज़नाने को वहीं छोड़ वह दिल्ली गया और वहां के दर्शनीय स्थानों को अवलोकन कर पुनः मथुरा लौट आया, जहां से वह आगरे गया। आगरे से कानपुर, इलाहाबाद, बनारस और बांकीपुर होता हुआ वह गया पहुंचा, जहां उसने विधिपूर्वक गया-श्राद्ध कर बग्घी-द्वारा पुनः बांकीपुर के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में बेला नामक ग्राम में एक ब्राह्मणी के घर में बाघ के घुस जाने की सूचना पाते ही वह वहां पहुंचा, उस समय वहां के निवासी उस बाघ को चारों ओर से घेरकर हल्ला मचा रहे थे। महारावल ने बग्घी से उतरकर बाघ पर गोली चलाई तो वह घायल होकर सामना करने को आया। इतने में महारावल के साथ के महाराज भैरवसिंह आदि सरदारों ने तलवार चलाकर उसको मार डाला। वहां से वह पुनः बनारस, इलाहाबाद, जबलपुर और खंडवा होता हुआ ओंकारेश्वर गया। वहां से नासिक होकर वह बंबई पहुंचा, जहां उसका बंबई प्रान्त के गवर्नर सर फ़िलिप वुडहाउस से मिलना हुआ। कुछ दिन बंबई में ठहरकर वह सूरत और डाकोर होता हुआ मोडासे पहुंचा, जहां से ता० २ फरवरी सन् १८७७ ई० को उसने अपनी राजधानी में प्रवेश किया। महारावल की इस अनुपस्थिति में पंडित भगवतीप्रसाद राज्य का समस्त कार्य करता रहा।

महाराणी विक्टोरिया के 'कैसरेहिंद' (Empress of India) पद धारण करने के उपलक्ष्य में वि० सं० १९३३ (ई० सन् १८७७ ता० १

कर्नल इंम्पी का महारावल के लिए तमगा व निशान लाना

जनवरी) को भारत के तत्कालीन वाइसरॉय और गवर्नर जेनरल लॉर्ड लिटन ने दिल्ली में एक बड़ा दरबार किया। उस समय भारत के सभी राजा-महाराजा आदि निमंत्रित होकर दिल्ली पहुंचे। महारावल को भी उक्त दरबार में सम्मिलित होने का निमंत्रण पहुंचा था, परन्तु वह उस समय यात्रा में होने के कारण दरबार में उपस्थित न हो सका। उक्त दरबार की स्मृति में उसके लिए तमगा और झंडा लेकर मेवाड़ का पोलिटिकल एजेंट कर्नल इम्पी डूंगरपुर गया और ता० २० दिसंबर ई० सन् १८७७ (वि० सं० १९३४ मार्गशीर्ष सुदि १५) को एक दरबार में उसने यह झंडा तथा तमग़ा महारावल को दिया। महारावल ने अंग्रेज़ सरकार के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए श्रीमती महाराणी विक्टोरिया के 'कैसरेहिन्द' पद धारण करने के दरबार में अपने यात्रा में रहने के कारण उपस्थित न हो सकने पर खेद प्रकट किया और झंडे तथा तमगे के लिए धन्यवाद दिया।

वि० सं० १९३६ (ई० स० १८७९) में उस(महारावल)ने डूंगरपुर के गैबसागर तालाब की पाल पर बने हुए एकलिङ्गजी, राधेविहारी और

महारावल-द्वारा नये मंदिरों की प्रतिष्ठा

रामचन्द्र के मंदिर तथा 'उदयवाव' नामक बावड़ी एवं फ़तेपुरा ग्राम के नीलकंठ महादेव की प्रतिष्ठा करवाई और उसने स्वर्ण का तुलादान भी किया।

उसके राज्य-प्रबन्ध में सायर (चुंगी) की आय में वृद्धि अवश्य हुई, परन्तु उसकी ठीक व्यवस्था न होने के कारण पूरी आय राज्य में जमा नहीं

सायर की आय ठेके पर देना

होती थी। इसलिए वि० सं० १९३७ (ई० स० १८८०) में उस(महारावल)ने ४५००० रुपये वार्षिक जमा कराने की शर्त पर सायर (दाण, चुंगी) का ठेका ईडर इलाक़े के गोसाईं मोहनगिरि को दे दिया। उन्हीं दिनों विरोधी सरदारों का मुखिया गंजी का जागीरदार अभयसिंह सूरमा मर गया, तब महारावल ने उसका पट्टा ज़ब्त कर लिया।

वि० सं० १९३७ (ई० सन् १८८१) में पहली बार राजपूताने में मनुष्य-

गणना का कार्य आरंभ हुआ और अंग्रेज़ सरकार की इच्छा के अनुसार महारावल ने भी डूंगरपुर में मनुष्य-गणना का कार्य आरंभ कराया। डूंगरपुर राज्य विशेषतः पहाड़ी प्रदेश है, जहां अधिक संख्या में भील बसते हैं। वहां मनुष्यगणना का यह पहला अवसर था। जब अहलकार घरों पर नंबर लगाने और मनुष्यों के नाम लिखने के लिए देहात में जाने लगे तब भीलों में कई प्रकार से तर्क-वितर्क होने लगा। कुछ लोगों ने समझा कि यह काम इसलिए छेड़ा गया है कि प्रत्येक मनुष्य से कुछ रुपये लिये जायंगे। इस विषय में जब समझदार लोगों में भी अनेक कल्पनाएं होने लगीं, तब भीलों में इस प्रकार की अफवाहों का फैलना स्वाभाविक ही था। उदयपुर राज्य के भील जब इस कार्य पर बिगड़ उठे तो उनके पड़ोसी डूंगरपुर के भीलों में भी उपद्रव की आशंका उत्पन्न हुई। इसपर महारावल ने उन्हें पूरी तसल्ली देकर समझाया कि इस घर-गिनती से तुमको कुछ हानि न पहुंचेगी तब वे मान गये और महारावल ने उनकी झोंपड़ियों की संख्या के अनुसार उनकी अनुमानिक गणना करा दी, जिससे कुछ भी उपद्रव न होने पाया।

मनुष्य-गणना

वि० सं० १९३८ श्रावण सुदि १२ (ई० स० १८८१ ता० ७ अगस्त) रविवार को महारावल की पटराणी देवड़ी उम्मेदकुंवरी का देहांत हो गया। उक्त महाराणी ने अपने जीवन-काल में डूंगरपुर के गैबसागर तालाब की पाल पर उपर्युक्त रामचन्द्रजी का मंदिर बनवाया था और वि० सं० १९३६ में अन्य मंदिरों के साथ उसकी भी प्रतिष्ठा हुई।

महाराणी देवड़ी का देहांत

ता० २४ अप्रेल ई० स० १८८२ (वि० सं० १९३९) में महारावल यात्रा के निमित्त आबू गया।

महारावल की आबू-यात्रा

ग्यारह वर्ष पूर्व महाराजकुमार खुंमानसिंह का विवाह हो चुका था, परन्तु उसके पुत्र न हुआ। इसलिए वि० सं० १९४३ आषाढ़ सुदि ६ (ई० स० १८८६ ता० ७ जुलाई) बुधवार को उसका दूसरा विवाह ईडर राज्य के ठिकाने सूर के स्वामी

महाराजकुमार का दूसरा विवाह

राठोड़ जगतसिंह की पुत्री से हुआ, जिसके गर्भ से वि० सं० १६४४ (अमांत) आषाढ़ वदि १२ (पूर्णिमांत, श्रावण वदि १२) (ई० स० १८८७ ता० १७ जुलाई) रविवार को पौत्र विजयसिंह का जन्म हुआ।

सरदारों की बैठक का झगड़ा

राज्य में दीर्घ काल से दरबार के समय सरदारों की बैठक का झगड़ा चला आता था। श्रीमती महाराणी विक्टोरिया के पचास वर्ष तक राज्य करने के उपलक्ष्य में स्वर्ण-जयन्ति-महोत्सव भारतवर्ष में मनाया गया, उसके संबंध में डूंगरपुर में होनेवाले दरबार के समय सुपरिंटेंडेंट हिली ट्रैक्ट्स (मेवाड़) ने इस झगड़े का फ़ैसला नीचे लिखे अनुसार करा दिया—

[क] महारावल की दाहिनी ओर की पंक्ति में—

(१) प्रधान (अंग्रेज़ अफ़सरों की उपस्थितिवाले दरबार में प्रधान की बैठक प्रथम रहेगी, अन्यथा नहीं)।
(२) बनकोड़ा
(३) पीठ
(४) बीछीवाड़ा
(५) मांडव
(६) ठाकरड़ा
(७) सोलज
(८) बमासा
(९) लोड़ावल

[ख] महारावल के बांई ओर की पंक्ति में—

(१) गढ़ी (चीतरी)
(२) कुवां
(३) साबली (कुर्सियों के दरबार में बांई ओर की पंक्ति में, अन्यथा सामने)।
(४) ओड़ा ,, ,,
(५) नांदली ,, ,,

इस प्रकार भविष्य के लिए उनकी बैठकें स्थिर हो गईं।

राजधानी डूंगरपुर में जितने राज्य-भवन थे वे सब पुराने ढंग के बने हुए थे। इसलिए वि० सं० १९३९ (ई० स० १८८३) में उस (महारावल) ने गैबसागर तालाब पर अपने नाम से नये ढंग का 'उदयविलास' महल बनवाया, जिसकी समाप्ति वि० सं० १९४४ (ई० स० १८८७) में हुई।

उदयविलास महल का बनना

उस समय तक डूंगरपुर में कोई अस्पताल (शफ़ाख़ाना) न था, इसलिए वि० सं० १९४८ (ई० स० १८९२ ता० १ जनवरी) को महारावल ने सार्वजनिक हित के लिए अस्पताल खोल कर वहां से बीमारों को औषध आदि मिलने की समुचित व्यवस्था की।

अस्पताल का खुलना

वि० सं० १९५० (अमांत) आश्विन (पूर्णिमांत कार्तिक) वदि ६ (ई० स० १८९३ ता० ३० अक्टोबर) सोमवार को महाराजकुमार खुमानसिंह का ३७ वर्ष की आयु में परलोकवास हो गया, जिसकी चोट अन्त समय तक महारावल के हृदय पर बनी रही। इसी वर्ष स्वर्गवासी महाराजकुमार की सूरवाली कुंवराणी के गर्भ से महारावल के दूसरा पौत्र उत्पन्न हुआ, परंतु ढाई मास की आयु में ही उसका अवसान हो गया।

महाराजकुमार का देहांत

डूंगरपुर में अब तक बालकों का पठन-पाठन प्राचीन शैली पर होता था और जनता अपने बालकों को पंडितों, यतियों आदि के यहां भेज आवश्यक शिक्षा दिलाती थी। यह शिक्षा पर्याप्त नहीं थी, क्योंकि इससे उनको साधारण पढ़ने-लिखने तथा महाजनी हिसाब आदि के अतिरिक्त अधिक ज्ञान नहीं होता था। इसलिए महारावल ने वि० सं० १९५० (ई० स० १८९३) में वहां एक पाठशाला (स्कूल) स्थापित की जहां प्रारंभिक (प्राइमरी) शिक्षा दिये जाने की व्यवस्था हुई।

पाठशाला की स्थापना

इसी वर्ष (आषाढ़ादि) वि० सं० १९५० (चैत्रादि १९५१) चैत्र सुदि १३ (ई० स० १८९४ ता० १८ अप्रेल) को सरदारों ने महारावल के
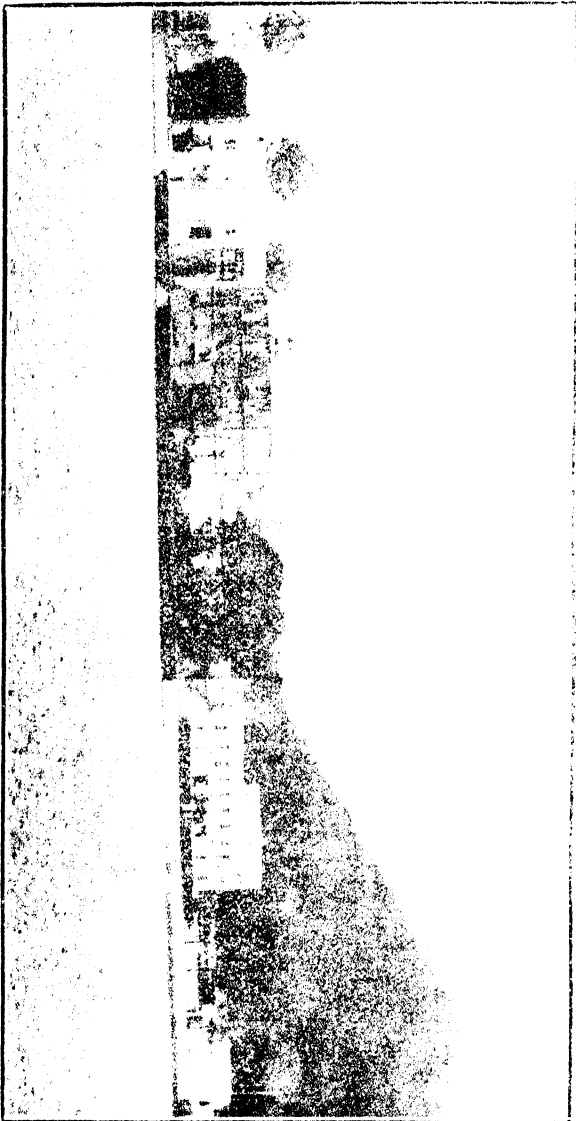
उदयविलास महल

महारावल के प्रतिकूल सरदारों की शिकायतें

प्रतिकूल ७३ बातों की शिकायत मेवाड़ के रेज़िडेंट के पास पेश की। उसके विचारार्थ स्वयं रेज़िडेंट खैरवाड़े गया और वहां उसने जागीरदारों तथा राज्य के मोतमिदों के उज्र सुनकर जागीरदारों की शिकायतों को अनुचित बतलाया और यह भी तय कर दिया कि ठिकानेदार के मरने पर उसके उत्तराधिकारी को राज्य में नज़राना दाखिल करना होगा।

बांसवाड़ा के महाराजकुमार का डूंगरपुर में रहना

बांसवाड़े का महाराजकुमार शंभुसिंह किसी कारणवश वि० सं० १९५३ (ई० स० १८९६) में डूंगरपुर चला गया तो महारावल ने उसे स्नेहपूर्वक ६ मास तक अपने यहां रक्खा और उसकी विदाई के समय उसे अपनी ओर से बहुत कुछ सामान देकर संतुष्ट किया। इसका परिणाम यह हुआ कि दोनों राज्यों के बीच की पुरानी अनबन मिट गई।

म्युनीसिपल कमेटी की स्थापना

डूंगरपुर पुरानी शैली से बसा हुआ क़स्बा है। वहां के निवासी स्वच्छता के लाभों को न समझकर इधर-उधर कूड़ा-करकट डालते थे, जिससे वहां बीमारियां रहा करती थीं, अतएव उनके लाभार्थ वि० सं० १९५४ श्रावण सुदि ११ (ई० स० १८९७ ता० ८ अगस्त) को महारावल ने राजधानी में म्यूनीसिपैलिटी क़ायम की।

महारावल के लोकोपयोगी कार्य

उक्त महारावल के समय डूंगरपुर राज्य में पाठशाला और अस्पताल खोलने की व्यवस्था हुई। चेचक की बीमारी से बचने के लिए टीका लगाने का प्रबन्ध हुआ। म्यूनीसिपैलिटी की स्थापना हुई, पच्चीस गांवों में तालाब बनवाये गये और राजधानी डूंगरपुर में एकलिङ्गजी एवं राधेबिहारी आदि के मंदिर बने।

महारावल के बनवाये हुए महल आदि

महारावल ने राज-महलों का जीर्णोद्धार कराकर कचहरियां बनवाईं। उदयविलास नामक नवीन और भव्य महल, सागवाड़ा तथा आंतरी में छोटे महल, हनुमत्पोल, तोरणपोल और खेदा की पोल नामक दरवाज़े बनाये। उसने अपने पिता महारावल

जसवन्तसिंह की छत्री बनवाई और कई पुराने स्थानों की मरम्मत कराई।

महारावल उदयसिंह के समय के वि० सं० १९१७ से १९५१ (ई० स० १८६० से १८९४) तक के २५ लेख हमारे देखने में आये हैं, जिनमें से ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ लेखों का सारांश यहां नीचे दिया जाता है—

(१) नोलसाम गांव की वि० सं० १९१९ फाल्गुन सुदि ३ (ई० स० १८६३ ता० २० फरवरी) शुक्रवार की विष्णु-मन्दिर की प्रशस्ति, जिसमें डूंगरपुर के सूरमों की महारावल जसवन्तसिंह, दलपतसिंह (प्रतापगढ़-वाले) और उदयसिंह के समय की सेवाओं तथा उनके द्वारा मन्दिर बनाये जाने का वर्णन है।

(२) खेड़ा समोर गांव का वि० सं० १९१९ (अमांत) फाल्गुन (पूर्णिमांत चैत्र) वदि ३ (ई० स० १८६३ ता० ८ मार्च) रविवार का ताम्र-पत्र, जिसमें शाह निहालचन्द को वि० सं० १९१६ (ई० स० १८५९) में कामदार नियत करने पर उक्त गांव देने का उल्लेख एवं उस (निहालचन्द) की सेवाओं का वर्णन है।

(३) नोलसाम गांव के चामुंडा माता के मंदिर की वि० सं० १९२१ फाल्गुन सुदि २ (ई० स० १८६५ ता० २७ फरवरी) चंद्रवार की प्रशस्ति, जिसमें सूरमा गुलालसिंह के पुत्र अभयसिंह और उसके पुत्र गंभीरसिंह, गुलाबसिंह आदि के हाथ से उक्त मंदिर की प्रतिष्ठा होने का उल्लेख है तथा सूरमों को वशिष्ठ-गोत्री एवं चंद्रवंशी लिखा है।

(४) नोलसाम गांव के शिव-मंदिर की वि० सं० १९२१ फाल्गुन सुदि २ (ई० स० १८६५ ता० २७ फरवरी) चंद्रवार की प्रशस्ति, जिसमें उपर्युक्त सूरमों के द्वारा मंदिर बनवाने के अतिरिक्त कुंवर दलपतसिंह (प्रतापगढ़वाले) का उल्लेख है।

(५) बेणेश्वर के मंदिर का वि० सं० १९२२ माघ सुदि १५ (ई० स० १८६६ ता० ३० जनवरी) का शिलालेख, जिसमें बेणेश्वर महादेव के सम्बन्ध में डूंगरपुर और बांसवाड़ा के बीच झगड़ा होने और डूंगरपुर की सीमा में उक्त मंदिर के होने का विवरण है एवं उसपर मेजर ए० एम०

मैकेंज़ी, पोलिटिकल सुपरिंटेंडेंट हिली ट्रैफ्ट्स के हस्ताक्षर भी अंग्रेज़ी में खुदे हुए हैं।

(६) मोरड़ी गांव का (आषाढ़ादि) वि० सं० १६२६ (चैत्रादि १६३०) चैत्र सुदि ८ (ई० स० १८७३ ता० ५ अप्रेल) शनिवार का शाह निहालचन्द रूपाचन्द के नाम का ताम्र-पत्र, जिसमें अच्छी सेवा के उपलक्ष्य में मोरड़ी गांव देने का उल्लेख है।

(७) डूंगरपुर की उदयवाव की वि० सं० १६३६ शाके १८०१ माघ सुदि ३ (ई० स० १८८० ता० १३ फरवरी) शुक्रवार की प्रशस्ति, जिसमें महारावल उदयसिंह-द्वारा उक्त वापी बनाये जाने और उसकी विद्यारसिकता, दानशीलता आदि का प्रशंसात्मक वर्णन है।

(८) डूंगरपुर के राधेविहारी के मंदिर की वि० सं० १६३६ शाके १८०१ माघ सुदि १० (ई० स० १८८० ता० २० फरवरी) की प्रशस्ति, जिसमें महारावल उदयसिंह-द्वारा उक्त मंदिर के बनाये जाने के अतिरिक्त उसके स्वर्णतुला, यात्रा, धार्मिकता, सिंहों की शिकार, न्यायपरायणता आदि का वर्णन है।

(६) मावजी का गड़ा गांव का वि० सं० १६३७ भाद्रपद सुदि ४ (ई० स० १८८० ता० ८ सितम्बर) का ताम्र-लेख, जिसमें हवलदार हसनखां को उसकी अच्छी सेवा के उपलक्ष्य में वह गांव दिये जाने का उल्लेख है।

महारावल का देहांत

इकावन वर्ष राज्य भोगकर वि० सं० १६५४ (अमांत) माघ (पूर्णिमांत फाल्गुन) वदि ६ (ई० स० १८६८ ता० १३ फरवरी) को सायंकाल के समय ५८ वर्ष की आयु में महारावल का परलोकवास हुआ।

महारावल के विवाह और संतति

महारावल का प्रथम विवाह सिरोही में हुआ था। उक्त महारानी के गर्भ से महाराजकुमार खुंमानसिंह और राजकुमारी गुलाबकुंवरी (शृंगारकुंवरी) का जन्म हुआ, जिसका पहले उल्लेख हो चुका है। दूसरी राणी शिवकुंवरी थी, जो बांसवाड़ा राज्य के मोटा गांव ठिकाने के अंतर्गत मूली के चौहान दौलतसिंह की पुत्री थी और जिसका देहांत भी महारावल की विद्यमानता में हो गया था।

महारावल उदयसिंह पुराने ढंग का उदार राजा था। डूंगरपुर-राज्य में इस समय जो वैभव देख पड़ता है उसका अधिकतर श्रेय उक्त महारावल को ही है। चिरकाल से बनी हुई अशांति को मिटाकर उसने अपनी सत्ता को दृढ़ किया। राजाओं में जो गुण होने चाहियें वे सब अधिकांश में उसमें विद्यमान थे। वह दीन-दुखियों के कष्टों को मिटाने की यथा-शक्ति चेष्टा करता था। उसमें गुण-ग्राहकता थी, इसलिए उसने अपने मंत्री निहालचन्द की सेवाओं को स्मरण कर उसे दो गांव दिये और हवलदार हसनखां को भी एक गांव दिया। उसने अंग्रेज़ सरकार के साथ सदा मित्र-भाव बनाये रक्खा और राजपूताने के अन्य नरेशों से भी उसने पुनः अपना संबन्ध जोड़ा। मेवाड़ के महाराणा स्वरूपसिंह और शंभुसिंह के साथ उसका घनिष्ठ संबन्ध रहा। स्मार्त होने पर भी वह अन्य धर्मों को समान-भाव से देखता था। राजसी त्यौहारों के सिवा उसका रहन-सहन सादा और आडम्बर-शून्य था। उसके पास प्रत्येक व्यक्ति अपनी प्रार्थना सहज में पहुंचा सकता था। अपने राज्य में दी हुई धर्मार्थ भूमि और जागीर को उसने अनुचित-रीति से लेने की कभी चेष्टा नहीं की। अपने सरल और उदार व्यवहार से उसने सबको प्रसन्न रक्खा। नांदली के सरदार हिम्मतसिंह को बंदीगृह से मुक्त कर उसकी जागीर पुनः उसे दे दी। वह बाहर से आये हुए योग्य पुरुषों का उचित सम्मान करता, काव्य-रसिक होने से कवियों को आश्रय देता और कभी-कभी स्वयं भी कविता करता था। उसके कविता-प्रेम से प्रेरित होकर सिंढायच गोत्र के चारण कवि किशन ने उसके नाम पर 'उदयप्रकाश' काव्य की रचना की थी। उसके समय में डूंगरपुर राज्य की व्यापारिक स्थिति अच्छी रही। अपने राजकुमार और राजकुमारी के विवाहोत्सव मनाने, राज्य-महलों को तैयार कराने, नवीन मंदिरों को बनाने, यात्रा करने और दुर्भिक्ष के समय में प्रजा-पालन में लाखों रुपये व्यय होने पर भी उसने रियासत पर क़र्ज़ न छोड़ा। उसके समय में राजपूतों में शादी-गमी के रिवाज का सुधार करने और व्यर्थ के व्यय को रोकने के लिए 'वॉल्टर-कृत राजपुत्र-हितकारिणी सभा'

महारावल का व्यक्तित्व

की स्थापना हुई। उसने अपने राज्य में सती होने की मनाई की और राजपूतों में जन्म होते ही लड़कियों को मारने की कुत्सित प्रथा को रोका। विशेष पढ़ा-लिखा न होने के कारण उसके दीर्घकालीन राज्य समय में शासन-शैली में परिवर्तन नहीं हुआ और प्राचीन पद्धति से ही राज्य-कार्य चलता रहा, जिससे आय में यथेष्ट वृद्धि न हो सकी। उसके समय में सरदारों का बखेड़ा बना रहा। मादक पदार्थों का सेवन और विलासिता की ओर प्रवृत्ति होने पर भी वह उनके अधीन न रहा, परन्तु सरल-हृदय होने से कभी-कभी वह धूर्त लोगों के चक्कर में अवश्य आ जाता था।

उसका क़द मझोला, शरीर भरा हुआ गठीला, वर्ण गौर और पेशानी चौड़ी थी। निशाना लगाने में वह कुशल था और अन्त समय तक उसकी स्मरणशक्ति अक्षुण्ण बनी रही।

विजयसिंह

महारावल विजयसिंह का जन्म वि० सं० १९४४ (अमांत) आषाढ़ (पूर्णिमांत, श्रावण) वदि १२ (ई० सन् १८८७ ता० १७ जुलाई) को हुआ और अपने दादा महारावल उदयसिंह का स्वर्गवास होने पर वह वि० सं० १९५४ (ई० सन् १८९८) में ११ वर्ष की आयु में डूंगरपुर राज्य का स्वामी हुआ। उसके राज्य पाने के छः मास बाद ही उसकी माता का भी देहांत हो गया।

महारावल उदयसिंह के समय तक डूंगरपुर राज्य का अंग्रेज़ सरकार से होनेवाला पत्र-व्यवहार मेवाड़ के रेज़िडेन्ट तथा उसके अधीनस्थ सुपरिंटेंडेंट हिली ट्रैक्ट्स (मेवाड़) के द्वारा होता रहा, परन्तु कार्य की अधिकता से मेवाड़ के पोलिटिकल एजेंट कर्नल् निक्सन के समय से ही डूंगरपुर, बांसवाड़ा और प्रतापगढ़ का कार्य चलाने के लिए उसकी सहायतार्थ एक असिस्टेंट नियुक्त करने का प्रयत्न जारी था, जिससे इन तीनों राज्यों का कार्य चलाने के लिए मेवाड़ के रेज़िडेंट की अधीनता में एक असिस्टेंट

राजपूताने के दक्षिणी प्रांत के लिए पृथक् पोलिटिकल एजेन्ट की नियुक्ति

नियत किया गया जो प्रारंभ में मेवाड़ का असिस्टेंट रेज़िडेंट और पीछे से दक्षिणी राजपूताने का पोलिटिकल एजेंट होकर बांसवाड़े में रहने लगा।

रीजेंसी कौंसिल की नियुक्ति

महारावल की बाल्यावस्था के कारण शासन-कार्य चलाने के लिए मेवाड़ के असिस्टेंट रेजिडेंट की अध्यक्षता में चार मेम्बरों की एक कौंसिल बनाई गई।

रीजेन्सी कौंसिल रियासत के अनावश्यक व्यय में कमी करने लगी, परन्तु उसके दूसरे ही वर्ष वि० सं० १९५६ (ई० सन् १८९९–१९००) में भयानक अकाल पड़ गया। उस वर्ष के प्रारम्भ में वर्षा अच्छी हुई, जिससे अच्छी फ़सल की आशा होने लगी, अतएव जिनके पास ग़ल्ला था, उन्होंने भी उसे बेच डाला, परन्तु पीछे से वर्षा न होने के कारण भयङ्कर अकाल पड़ गया और बाहर से ग़ल्ला मंगवाने की आवश्यकता हुई। डूंगरपुर से सम्बन्ध रखनेवाले दोनों रेल्वे स्टेशन (उदयपुर और तलोद) बहुत दूर पड़ते थे। इसके अतिरिक्त पहाड़ी प्रांत होने से वहां ग़ल्ला पहुंचाना अत्यन्त कठिन जान पड़ा, क्योंकि अनेक बैलों के मर जाने से भार-वहन के साधन भी नष्ट हो गये और क्षुधार्त भीलों की लूट-खसोट के मारे चारों तरफ़ से नाज लाने के मार्ग बन्द हो गये। भीलों की सहायता के लिए उनकी पालों के निकट कई काम शुरू किये गये और मज़दूरी करनेवालों को प्रति-दिन उनका वेतन मिलने लगा, जिससे कई लोगों को सहारा मिला। अन्यत्र भी इसी तरह के काम आरम्भ किये गये और जो लोग काम करने में अशक्त थे, उन्हें मुफ़्त भोजन मिलने की व्यवस्था की गई। इस काम में राज्य ने डेढ़ लाख से अधिक रुपये व्यय किये। पर्याप्त अन्न न मिलने पर कई लोगों ने वृक्षों के छिलकों को पीसकर खाना आरम्भ किया और भील आदि लोग पशुओं को मारकर खाने लगे। अपने बिलखते हुए बाल-बच्चों को छोड़कर कई लोग विदेश चले गये और हज़ारों मर गये। यही दशा पशुओं की भी हुई। घास और वृक्षों के पत्ते तक न मिलने से हज़ारों पशु मर गये। बड़ी कठीनता से लोगों ने कहीं इस अकाल से छुटकारा पाया। दूसरे वर्ष वृष्टि तो अच्छी हुई, परन्तु हैज़ा और

संवत् १९५६ का भीषण दुर्भिक्ष

पेचिश की बीमारी फैलने से हज़ारों घर जन-शून्य होकर अनेक गांव ऊजड़ हो गये।

डूंगरपुर राज्य पर इस भीषण अकाल का प्रभाव बहुत बुरा पड़ा और ई० स० १६०१ की मनुष्य-गणना के समय सन् १८६१ ई० की मनुष्य-गणना की अपेक्षा ६५००० मनुष्य कम रहे। जो ज़मीन खेती के काम में आती थी उसका अधिकांश किसानों के अभाव में विना बोये ही पड़ा रहा, जिससे राज्य की आय में भी कमी हुई। अकाल के समय प्रजा-पालन में बहुत खर्च हो जाने के कारण अंग्रेज़ सरकार से क़र्ज़ लेकर काम चलाना पड़ा।

रीजेंसी कौंसिल ने इस अवसर पर सब अनावश्यक व्ययों को कम करना आरंभ कर अपने उत्तरदायित्व का पालन किया। उसने शासन-सुधार पर ध्यान देकर मजिस्ट्रेट के पद पर पंडित श्रीराम दीक्षित (रायबहादुर) बी० ए० को नियत किया; चोरी और डकैती को रोकने के लिए पुलिस का संगठन कर स्थान-स्थान पर चौकियां और थाने क़ायम किये और टॉडगढ़ का तहसीलदार गणेशराम रावत दीवान के पद पर नियत किया गया। अब तक डूंगरपुर राज्य में माल-हासिल प्राचीन प्रथा के अनुसार कूंता-लाटा से वसूल होता था और काश्तकारों से कई ऐसी लागतें ली जाती थीं, जो राज्य के खज़ाने में पूर्ण-रूप से नहीं आती थीं किन्तु प्रायः वसूल करनेवाले लोग ही उन्हें हज़म कर जाते थे। इस प्रकार की गड़बड़ से आय का ठीक अन्दाज़ नहीं हो सकता था, क्योंकि वह कभी कम, तो कभी अधिक होती थी। इसी लिए माल-हासिल नक़द रुपयों में लेने का विचार कर सेटलमेंट (बन्दोबस्त) कराने का निश्चय हुआ।

रीजेंसी कौंसिल-द्वारा शासन-प्रबन्ध की नई व्यवस्था

वि० सं० १६६० (ई० स० १६०३) में मेवाड़ के असिस्टेंट रेज़िडेंट कर्नल ए० टी० होम के निरीक्षण में सेटलमेंट का कार्य आरम्भ हुआ और दीवान गणेशराम उसका असिस्टेंट बनाया गया। लगभग दो वर्ष में सारे राज्य में सेटलमेंट होकर दस वर्ष के लिए पक्का ठेका कर दिया

गया, जिससे काश्तकारों और राज्य को बड़ा सुभीता हुआ तथा आय नियमित रूप से होने लगी।

सायर (दाण, चुंगी) का ठेका रहने से राज्य को विशेष लाभ नहीं था। कभी कभी ठेकेदार लोग मनमाना महसूल ले लेते थे और व्यापारियों को असुविधा भी होती थी, अतएव सायर का प्रबन्ध सुधारने की व्यवस्था की जाकर राज्य से बाहर जाने और आनेवाली प्रत्येक वस्तु पर उचित महसूल लगा दिया गया, जिससे आय में अच्छी वृद्धि हुई। इसी प्रकार आबकारी और जंगल विभाग की उचित व्यवस्था हुई। शिक्षा की उन्नति की ओर भी ध्यान दिया गया। म्यूनीसिपेलिटी का भी सुधार हुआ और कई जगह नये तालाब बनाने तथा पुरानों की मरम्मत कराने की योजना हुई।

महारावल की शिक्षा

सात वर्ष की आयु में ही महारावल की शिक्षा प्रारम्भ हो गई थी और उसके पितामह महारावल उदयसिंह ने उसके लिए मौलवी अब्दुलहक़ तथा मोहनलाल ताराचन्द शाह को नियत किया था, किंतु वह शिक्षा पर्याप्त न होने से वह (महारावल) मेयोकॉलेज (अजमेर) में भेजा गया। वहां उसकी देख-रेख और शिक्षा के लिए वहीं का एक अध्यापक मि० हर्बर्ट शेरिंग नियत हुआ और वि० सं० १९६२ (ई० स० १९०५) में महारावल वहां की डिप्लोमा परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ। उसका शिक्षक और गार्जियन अंग्रेज़ था, तो भी उसपर पश्चिमी सभ्यता की चकाचौंध का प्रभाव न पड़ा तथा उसके चित्त पर हिन्दू-संस्कृति ज्यों-की-त्यों बनी रही। अनन्तर वह केडेटकोर में सैनिक शिक्षा पाने के लिए देहरादून भेजा गया, परन्तु वहां अपने विचारों के विरुद्ध व्यवहार देख उसने रहना पसंद न किया। अधिकारियों के बार-बार कहने पर भी उसने अपना विचार न पलटा और वहां से पुनः अजमेर आकर वि० सं० १९६४ (ई० स० १९०७) में मेयोकॉलेज की सर्वोच्च परीक्षा 'पोस्ट डिप्लोमा' में सफलता प्राप्त की।

इस समय महारावल की आयु २० वर्ष की हो गई थी, इसलिए

वि० सं० १९६३ माघ सुदि ६ (ई० स० १९०७ ता० १९ जनवरी) को उसका पहला विवाह सैलाना नरेश जसवन्तसिंह की विदुषी राजकुमारी देवेन्द्रकुमारी से हुआ।

महारावल का विवाह

वि० सं० १९६४ फाल्गुन सुदि ५ (ई० स० १९०८ ता० ७ मार्च) शनिवार को उक्त महाराणी के गर्भ से कुंवर लक्ष्मणसिंह (वर्तमान महारावल) का जन्म हुआ।

मेयोकॉलेज की शिक्षा समाप्त कर महारावल ने पोलिटिकल एजेंट कैप्टन आर० सी० ट्रैंच० के निरीक्षण में डेढ़ वर्ष तक राज्य के भिन्न-भिन्न विभागों की कार्यप्रणाली का ज्ञान प्राप्त किया। तदनन्तर राजपूताने के एजेंट गवर्नर जेनरल कर्नल पिन्हे ने डूंगरपुर जाकर वि० सं० १९६५ फाल्गुन सुदि ८ (ई० स० १९०९ ता० २७ फरवरी) को उदयविलास महल में दरबार कर महारावल को राज्य के समस्त अधिकार सौंप दिये।

महारावल को राज्याधिकार मिलना

महारावल को राज्याधिकार का मिलना डूंगरपुर राज्य के लिए बहुत शुभ हुआ, क्योंकि राज्याधिकार मिला उसी दिन ता० २७ फरवरी (फाल्गुन सुदि ८) शनिवार को उक्त महारावल के दूसरे महाराजकुमार वीरभद्रसिंह का जन्म हुआ था।

दूसरे महाराजकुमार का जन्म

वि० सं० १९६६ में महारावल ने विजय-पलटन नामक क़वायदी सेना तैयार करना आरम्भ किया। अपनी प्रजा को थोड़े सूद पर रुपये उधार मिलने के उद्देश्य से उसने राम-लक्ष्मण बैंक खोला। राजधानी के पुराने महलों, देव-मंदिरों एवं पुंजपुर, थाणा आदि के कई एक पुराने तालाबों की मरम्मत कराई और उसी वर्ष उसने अपने दादा उदयसिंह के नाम पर सौ रुपये भर का उदयशाही सेर स्थिर किया।

महारावल का शासन-कार्य

वि० सं० १९६७ वैशाख वदि १२ (ई० स० १९१० ता० ६ मई) को श्रीमान् सम्राट् एडवर्ड सप्तम का लन्दन नगर में परलोकवास हो गया,

सम्राट् सप्तम एडवर्ड का परलोकवास और वर्त्तमान सम्राट् पंचम जॉर्ज की गद्दीनशीनी

जिसका संवाद पहुंचने पर महारावल ने तीन दिन तक डूंगरपुर नगर की दुकानें बन्द रखवाईं। वि० सं० १९६७ वैशाख सुदि ११ (ता० १९ मई) को वर्त्तमान सम्राट् पंचम जॉर्ज इंग्लैंड में सिंहासनारूढ़ हुए, जिसके समाचार आने पर १०१ तोपों के फ़ैर कराये गये और १२ क़ैदी छोड़े गये।

परलोकवासी सम्राट् एडवर्ड सप्तम की स्मृति में राजपूताने के राजा महाराजाओं की ओर से अजमेर नगर में एडवर्ड मेमोरियल बनाना निश्चय

महारावल का अजमेर और शिमला जाना

हुआ। उसके लिए अजमेर की जनता, राजा-महाराजाओं और उनके प्रतिनिधियों की एक सभा अजमेर के टाउनहॉल में हुई, जिसमें महारावल भी सम्मिलित हुआ। उस समय उसने अपने विचारों को सुस्पष्ट शब्दों में प्रकट किया। अंग्रेज़ी में उसकी भाषण-शक्ति देख श्रोतागण मुग्ध हो गये। उसने इस मेमोरियल के लिए अपनी तरफ़ से १५००० रुपये दिये और राजधानी डूंगरपुर के निकट बादशाह की स्मृति में 'एडवर्ड समुद्र' तालाब बनवाया। अनन्तर इसी वर्ष के सितम्बर में शिमले जाकर वह भारत के तत्कालीन वाइसरॉय लॉर्ड मिंटो से मिला और चार दिन तक वहां ठहरा। वहां रहते समय ग्वालियर के महाराजा माधवराव सिंधिया, महाराजा सर प्रतापसिंह, भारत के कमांडर-इन-चीफ़ और पंजाब के लेफ़्टनेंट गवर्नर आदि से उसका मिलना हुआ।

वि० सं० १९६८ श्रावण सुदि २ (ई० स० १९११ ता० २७ जुलाई) को वह बंबई की सैर के लिए रवाना हुआ और अजमेर होता हुआ बंबई

महारावल का बम्बई जाना

पहुंचा। जहां कुछ दिन ठहरकर उसने वहां के दर्शनीय स्थानों को अवलोकन किया। वहां पर उसका महाराजा बीकानेर, झालावाड़ आदि से मिलना हुआ।

सम्राट् पंचम जॉर्ज की गद्दीनशीनी के उपलक्ष्य में ई० स० १९११ ता० १२ दिसंबर को दिल्ली में बड़े समारोह के साथ दरबार का आयोजन

महारावल का दिल्ली दरबार में जाना

होकर स्वयं सम्राट् और सम्राज्ञी भारतवर्ष में पधारे। उस अवसर पर उक्त दरबार में सम्मिलित होने के लिए भारतवर्ष के समस्त राजा-महाराजाओं आदि को निमन्त्रण भेजे गये। तदनुसार ता० २ दिसंबर को वह दिल्ली पहुंचा। वहां उसकी अग्र-गामिता के लिए कैप्टन हचिन्सन विद्यमान था। ता० ७ दिसम्बर को श्रीमान् सम्राट् का दिल्ली में पदार्पण होनेवाला था, अतएव राज-दम्पती के स्वागतार्थ समस्त भारतीय नरेश लालगढ़ क़िले में उपस्थित थे, जहां वह भी विद्यमान था। वहां से महारावल सवारी के साथ रहा। फिर अपने सरदारों और अहलकारों के साथ शाही कैम्प में जाकर उसने श्रीमान् राज-राजेश्वर से भेंट की। सायंकाल को तत्कालीन गवर्नर जेनरल लॉर्ड हार्डिंज ने सम्राट् की ओर से महारावल के कैम्प में आकर वापसी मुला-क़ात की। ता० १२ दिसम्बर को शाही दरबार हुआ, जिसमें महारावल भी उपस्थित था। ता० १६ को जब सम्राट् का दिल्ली से प्रस्थान होने लगा, उस समय वह उनकी विदा की मुलाक़ात के लिए गया और उसी दिन वहां से रवाना होकर डूंगरपुर पहुंचा। इस दिल्ली दरबार के अवसर पर सैलाना, बड़वानी, सिरोही, काश्मीर, झालावाड़, बीकानेर, बूंदी, कोटा, जयपुर, अलवर, जैसलमेर, पटियाला, कपूरथला, माइसोर, ओरछा, रीवां, बड़ौदा आदि राज्यों के नरेशों से उसकी मुलाक़ात हुई।

महारावल को ख़िताब मिलना

महारावल की योग्यता आदि गुणों पर प्रसन्न होकर श्रीमान् सम्राट् पंचम जॉर्ज ने सन् १९१२ ई० के जून मास में अपने जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में उसे के० सी० आई० ई० के ख़िताब से भूषित किया।

तृतीय महाराजकुमार का जन्म

वि० सं० १९७० (अमांत) फाल्गुन (पूर्णिमांत चैत्र) वदि ७ (ई० स० १९१४ ता० १८ मार्च) बुधवार को तृतीय महाराज-कुमार नागेन्द्रसिंह का जन्म हुआ।

बनारस के हिन्दू-विश्व-विद्यालय का शिलान्यास भारत के वाइस-रॉय लॉर्ड हार्डिंज के द्वारा वि० सं० १९७२ माघ सुदि १ (ई० स०

हिन्दू-विश्व-विद्यालय के शिला-न्यासोत्सव पर महारावल का बनारस जाना

१९१६ ता० ४ फरवरी) को होनेवाला था। इस अवसर पर महारावल भी वहां उपस्थित हुआ और उस कार्य के लिए उसने दस हज़ार रुपये दिये। वहां महाराजा काश्मीर, जोधपुर, बीकानेर, कोटा, किशनगढ़, झालावाड़, सर प्रतापसिंह, अलवर, दतिया, नाभा, दरभंगा आदि के नरेशों से उसका मिलना हुआ।

विं० सं० १९७३ (ई० स० १९१७) में उसने अपने दोनों छोटे कुंवर

महारावल का दोनों छोटे कुंवरों को जागीर देना

वीरभद्रसिंह और नागेन्द्रसिंह को पूंजपुर और करोली की जागीर प्रदान की।

इसी वर्ष उसने अपने दीवान गणेशराम रावत को उसकी वृद्धावस्था

दीवान गणेशराम रावत को पेंशन और बाबू मोहनलाल का दीवान बनना

के कारण पेंशन दी और उसके स्थान पर बाबू मोहनलाल दीवान बनाया गया।

वि० सं० १९७४ आषाढ़ वदि ६ (ई० स० १९१७ ता० १३ जून)

महारावल का दूसरा विवाह और चतुर्थ राजकुमार का जन्म

को महारावल ने अपना दूसरा विवाह बांकानेर (काठियावाड़) राज्यान्तर्गत सिंधावदर के झाला ठाकुर की पुत्री सज्जनकुंवरी से किया। उसके गर्भ से चतुर्थ महाराजकुमार प्रद्युम्नसिंह का जन्म हुआ।

महारावल ने शासनाधिकार अपने हाथ में लेने के पश्चात् राज्य के भिन्न-भिन्न विभागों में सुधार करना प्रारम्भ किया। वि० सं० १९७४

महारावल का शासन सुधार

(ई० स० १९१८) में 'राजप्रबन्धकारिणी सभा' और दीवानी फ़ौजदारी के मुक़द्दमों की अपीलें सुनने व क़ानून बनाने के लिए "राज-शासन-सभा" (जिसमें मेंबर और असेसर बैठते हैं) नियत की। उसने जनता को म्यूनीसिपल बोर्ड के सदस्य और प्रेसीडेंट चुनने का अधिकार दिया, आबकारी का नवीन प्रबन्ध किया और मद्रास सिस्टम से शराब बनवाकर बेचने की प्रथा जारी की। जेलखाने के लिए नवीन इमारत बनाई और बंदिजनों को काम सिखाने की व्यवस्था

होकर दरियें, गलीचे, कपड़े आदि वहां बनने लगे। चिकित्सालय और पब्लिक वर्क्स की उन्नति हुई। पुलिस और क़वायदी सेना की नई योजना हुई। उसने भीलों की भी एक पलटन बनाई, जो शिकार में सहायता देती थी। प्रजाहित के लिए राम लक्ष्मण बैंक खोला, जिससे थोड़े सूद पर प्रजा को रुपया मिलने लगा। मेवाड़ और ईडरवालों से सीमा-संबन्धी जो मुक़द्दमे चल रहे थे, उन्हें अंग्रेज़ सरकार से फैसल करवाया।

महारावल के लोकोपयोगी कार्य

महारावल ने विधवा-विवाह को जायज़ मान उसके लिए आज़ादी दी। उसके राज्यकाल में पुंजपुर, चूंडावाड़ा और खुमाणपुर के पुराने तालाबों की मरम्मत हुई। राजधानी के समीप परलोकवासी सम्राट् एडवर्ड-सप्तम की स्मृति में एडवर्ड-समुद्र नामक नया तालाब बनाने का कार्य आरम्भ किया। उसने निःशुल्क शिक्षा-पद्धति जारी की। देहात में पाठशालाएं खुलीं। राजधानी की पाठशाला का नवीन भवन बनाकर शिक्षा की उन्नति की। कन्याओं के लिए 'देवेन्द्र-कन्या-पाठशाला' स्थापित हुई। देहात में भी चिकित्सालय बनाए गए। राजधानी डूंगरपुर में पुस्तकालय स्थापित किया गया। राजपूत बोर्डिङ्ग हाउस की स्थापना हुई और उसमें रहनेवाले ग़रीब राजपूत विद्यार्थियों को भोजन आदि व्यय राज्य से मिलने लगा। अपने राज्य में ही नहीं, किंतु बाहर के लोकोपयोगी कार्यों में भी वह सदैव सहायता दिया करता था।

यूरोपीय महायुद्ध में महारावल की सहायता

महारावल ने अंग्रेज़ सरकार के साथ मित्रता का सम्बन्ध पूर्ववत् बनाये रक्खा। जब यूरोप में विश्वव्यापी महायुद्ध आरम्भ हुआ, तब उसने स्वयं रणक्षेत्र में जाने की इच्छा प्रकट की, जिसपर भारत के वॉइसराय लार्ड हार्डिंज ने उसे धन्यवाद दिया और युद्ध में जाने की आवश्यकता न होना बतलाकर उसकी प्रार्थना को स्वीकार न किया। इंडियन वॉर-रिलीफ़ फ़ंड में ८७२७ रुपये देने के अतिरिक्त वह १००० रुपये मासिक रूप में युद्ध-फंड में अलग देता रहा। राज्य से एक वायुयान, एक मोटर, कुछ घोड़े तथा सौ आदमी युद्ध

के लिए दिये गए। महारावल की ओर से १७५६४० रुपये युद्ध-कार्य में और ५६६२० रुपये वॉर-लोन में दिये गए।

महारावल का प्रजा-प्रेम और अन्य नरेशों से मैत्री-सम्बन्ध

महारावल अपनी प्रजा की उन्नति का पूर्ण पक्षपाती था, इसलिए प्रजा उसे बहुत प्रेम करती थी। ई० स० १९१२ में जब उसे के० सी० आई० ई० का ख़िताब मिला तो प्रजा ने उल्लास-पूर्वक सार्वजनिक सभा कर अपने नरेश के प्रति बड़े उच्च भाव प्रदर्शित किये। डूंगरपुर राज्य की प्रजा ही नहीं, बाहर के निवासियों के साथ भी उसका बहुत अच्छा व्यवहार था, इसी लिए जब वह ई० स० १९१२ में मोड़ासे की तरफ़ गया तो वहां की प्रजा ने उसका बड़ा आदर किया। वि० सं० १९७२ (ई० स० १९१६) में वह नरसिंहगढ़ गया, तब वहां के राजा अर्जुनसिंह ने उसके हाथ से कॉटन फ़ैक्टरी का शिला-न्यास करवाया। अपने सरदारों के साथ उसका प्रशंसनीय व्यवहार रहा। उसने भारतवर्ष के सभी बड़े बड़े अफ़सरों और राजा महाराजाओं आदि से मित्रता का सम्बन्ध बढ़ाया। भारत के वाइसरॉय लॉर्ड मिंटो, हार्डिंज और चेम्सफोर्ड महारावल के उत्तम आचरण से प्रसन्न रहे। ग्वालियर के महाराजा माधवराव सिंधिया तथा बीकानेर, कोटा, सिरोही, अलवर, नरसिंहगढ़, सैलाना, सीतामऊ आदि राज्यों के नरेशों के साथ उसका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा और पिछले समय में वह काशी के भारत-धर्म-महामंडल का सहायक भी हो गया था।

महारावल के बनाये हुए महल आदि

अपने राज्य में महारावल ने कई नवीन भवन बनाए उनमें से वीरपुर की कोठी, विजयगढ़ पर महल आदि मुख्य हैं। उसने गैबसागर झील में एक शिव-मंदिर बनाने का कार्य आरम्भ किया, परन्तु वह उसके समय में पूर्ण न हो सका। अपनी माता हिम्मतकुंवरी की स्मृति में उसने बनेश्वर में महालक्ष्मी का मंदिर बनवाया और देव-सोमनाथ आदि मंदिरों का जीर्णोद्धार करवाया।

वि० सं० १९७३ (ई० सन् १९१६) अप्रेल से ही महारावल का स्वास्थ्य ख़राब हो गया था, इसलिए वह जलवायु परिवर्तनार्थ पांच छः

महारावल की बीमारी और मृत्यु

महीने तक भारतवर्ष में भ्रमण करता रहा। वहां से लौटने पर उसे टाइफॉइड बुखार हो गया। सुयोग्य चिकित्सकों-द्वारा इलाज होने पर भी विशेष लाभ न हुआ और उसका स्वास्थ्य दिन दिन बिगड़ता ही गया। ऐसी स्थिति में भी उसने राज्य-कार्य में कोई त्रुटि न होने दी। यूरोपीय महायुद्ध के समय वि० सं० १९७५ (ई० स० १९१८) में भारत में भी इन्फ्लुएंज़ा रोग का भीषण रूप से आक्रमण हुआ। डूंगरपुर में भी वह फैल गया और वहां नित्य २५-३० आदमी मरने लगे। ता० ३१ अक्टूबर को उस (महारावल) पर भी उसी बीमारी का आक्रमण हुआ और वि० सं० १९७५ कार्तिक सुदि १२ (ई० स० १९१८ ता० १५ नवम्बर) को ३१ वर्ष की युवावस्था में उसने इस असार संसार से प्रयाण किया।

महारावल की दो राणियों से चार कुंवर—लक्ष्मणसिंह, वीरभद्रसिंह, नागेन्द्रसिंह और प्रद्युम्नसिंह—तथा एक पुत्री रमाकुंवरी का जन्म हुआ,

महारावल की राणियां और संतति

जिनमें से पहले तीन कुमार और कुंवरी बड़ी महाराणी की तथा चौथा कुंवर दूसरी महाराणी की सन्तान है। राजकुमारी रमाकुंवरी का जन्म वि० सं० १९६७ (ई० स० १९११) में हुआ। वह वांकानेर (काठियावाड़) के झालावंशी राजकुमार प्रतापसिंह को ब्याही गई है।

महारावल विजयसिंह सदाचारी, सरलचित्त, धर्मशील, निर्भीक और शिल्प एवं चित्रकला का प्रेमी था। उसने अपने राज्य-काल में प्रजा पर

महारावल का व्यक्तित्व

कभी अत्याचार नहीं किया। वह सिंह की शिकार का प्रेमी और बंदूक का निशाना लगाने में कुशल था। उदारस्वभाव होने के कारण सार्वजनिक कार्यों में वह सदा तत्पर रहता था। राज्याधिकार मिलने के पश्चात् उसने केवल दस वर्ष ही राज्य किया तो भी इस अवधि में उसने नियत दान-पुण्य के अतिरिक्त दीन-दुखियों की सहायता तथा सार्वजनिक संस्थाओं को बहुत-कुछ दान किया। वह प्रबन्ध-कुशल और योग्य शासक था। प्रत्येक धर्म को वह समदृष्टि से देखता और

किसी का पक्षपात नहीं करता था। उसकी शासन-प्रणाली तथा सौजन्य से पोलिटिकल अफ़सर तथा प्रजाजन प्रसन्न रहे। वह अपने नौकरों की सेवा को पहचान उनकी योग्य सेवा का पुरस्कार देता, विद्वानों को अपने पास रख उनकी सहायता करता और लोकहितैषी कार्यों में सदा आगे रहता था। विद्यार्थी-जीवन में संस्कृत की शिक्षा न मिलने पर भी उसने संस्कृत में योग्यता प्राप्तकर राम-गीता की टीका की। अपने काव्य-प्रेम के कारण डिंगल काव्यों में उसकी अच्छी गति हो गई थी। वह शिव और रामचन्द्र का परम-भक्त था, धार्मिक ग्रन्थों को बड़ी श्रद्धा से सुनता और उनके अनुसार आचरण करता था। प्राचीन स्थानों को वह आदर से देखता और यथासाध्य उनका जीर्णोद्धार कराता था। अपने देश के रीति-रस्म, चाल-ढाल, वेश-भूषा आदि उसे बहुत पसंद थे। वह योग्य देशवासियों को राज्य-सेवा में रखना पसंद करता, उन्हें योग्य पद देता और उच्च शिक्षा के लिए अपने यहां के विद्यार्थियों को राज्य-व्यय से बाहर भेजता था। उसने इंजीनियरी और डाक्टरी की शिक्षा के लिए विद्यार्थियों को रुड़की तथा इंदौर भेजकर उन्हें उन विषयों की शिक्षा दिलाई। आयुर्वेदिक चिकित्सा के लिए उसने अपने नाम पर "विजय आयुर्वेदिक औषधालय तथा चिकित्सालय" स्थापित किया। बहु-विवाह की बुरी प्रथा को हानिकारक जानते हुए भी उसने अपनी बीमारी के दिनों में दूसरा विवाह कर मानसिक दुर्बलता को व्यक्त किया।

उसका क़द लंबा, शरीर सुडौल और भरा हुआ, वर्ण गौर तथा चेहरा प्रभावशाली था।

महारावल लक्ष्मणसिंहजी

महारावल लक्ष्मणसिंहजी का जन्म वि० सं० १९६४ फाल्गुन सुदि ५ (ई० स० १९०८ ता० ७ मार्च) शनिवार को हुआ और अपने पिता का स्वर्गवास हो जाने पर वि० सं० १९७५ कार्तिक सुदि १२ (ई० स० १९१८ ता० १५ नवम्बर) शुक्रवार को ११ वर्ष की आयु में राज्य के स्वामी हुए।

जन्म और गद्दीनशीनी

श्रीमान् रायरायां महाराजाधिराज महारावल सर लक्ष्मणसिंहजी बहादुर,
के. सी. एस. आई.

महारावल विजयसिंह ने अपने देहांत के समय एक वसीयत लिख दी थी। तदनुसार महारावल के बालक होने के कारण राज्य-प्रबन्ध दक्षिणी राजपूताना के पोलिटिकल एजेंट मेजर डी० एम० फ़ील्ड के निरीक्षण में कौंसिल-द्वारा होने लगा। प्रधान के पद पर पुनः मुंशी गणेशराम रावत नियत हुआ और मुख्य-मुख्य मामलों में राजमाता देवेन्द्रकुमारी की भी सम्मति ली जाने लगी।

कौंसिल-द्वारा राज्य-प्रबन्ध

वि० सं० १६७६ मार्गशीर्ष (ई० स० १६१६ नवम्बर) में महारावल शिक्षा प्राप्ति के लिए अजमेर के मेयो कॉलेज में भरती हुए। इनका पहला विवाह भिनगा नरेश की राजकुमारी से बनारस में हुआ।

महारावल की शिक्षा और पहला विवाह

कौंसिल-द्वारा शासन-प्रबन्ध अच्छा होने से राज्य पर जो कुछ ऋण था, वह सब चुका दिया गया और वि० सं० १६७६ (ई० स० १६२२) तक पांच लाख रुपये की बचत भी रही। लक्ष्मण-गेस्ट हाउस, विजय अस्पताल (देवेन्द्र-ज़नाना वार्ड सहित) और हाई-स्कूल की नवीन इमारतें बनवाई गईं। विजय-राजराजेश्वर मंदिर और एडवर्ड सागर का अधूरा काम सम्पूर्ण कराया गया। शिक्षा की उन्नति के लिए हाईस्कूल तक की पढ़ाई की व्यवस्था हुई और चिकित्सा-विभाग में भी बहुत सुधार हुआ।

लोकोपयोगी कार्यों की ओर कौंसिल की रुचि

महारावल अजमेर के मेयो कॉलेज की डिप्लोमा परीक्षा में उत्तीर्ण होकर पोस्ट डिप्लोमा क्लास के प्रथम वर्ष के कोर्स का अध्ययन करने के पश्चात् वि० सं० १६८४ (ई० स० १६२७) में अपने अनुभव और ज्ञान की वृद्धि के लिए यूरोप गये तथा पांच महीनों के पश्चात् अक्टोबर मास में वे वहां से लौटे।

महारावल साहब की यूरोप-यात्रा

वि० सं० १६८४ फाल्गुन वदि १० (ई० स० १६२८ ता० १६ फ़रवरी) गुरुवार को एजेन्ट गवर्नर जेनरल राजपूताना ने डूंगरपुर में दरबार कर महारावल साहब को शासन-सम्बन्धी समस्त अधिकार सौंप दिये। अबतक इन्हें शासनाधिकार प्राप्त हुए थोड़ा

राज्याधिकार मिलना

ही समय हुआ है, तो भी इन्होंने अपने को सुयोग्य शासक सिद्ध किया है। इनके सुशासन से राज्य की आय में पर्याप्त वृद्धि हुई है। राज्य की आर्थिक स्थिति सन्तोषप्रद है और प्रजा भी संतुष्ट है। ये शिल्पकला से अनुराग रखते हैं। इनके शासनकाल में कितने ही नये भवन बने हैं और बनते ही जाते हैं। राज्य में सर्वत्र मोटर चलने लायक मार्ग बना दिये गये हैं। बेगार की प्रथा मिटा दी गई है। भील लोगों के कृषि में लगा देने से उनकी लूट-खसोट की शिकायत कम हो गई है। विद्या की भी इनके समय में यथेष्ट वृद्धि हुई है और देहातों में भी कितनी ही नई पाठशालाएं खुल गई हैं। राजधानी डूंगरपुर में प्रजा के आराम के लिए पानी का नल और बिजली की रोशनी का प्रबन्ध हो गया है। ये बुद्धिमान, सच्चरित्र, उदार, मिलनसार और सरल प्रकृति के नरेश हैं। आखेट के प्रेमी हैं और बाघ के शिकार को बहुधा पसंद करते हैं। अभी इनका इतिहास लिखने का समय नहीं आया है तो भी इनके शासनकाल में डूंगरपुर राज्य के उज्ज्वल भविष्य के चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं।

महारावल को के० सी० एस० आई० का ख़िताब मिलना

वि० सं० १९९२ ज्येष्ठ सुदि २ (ई० स० १९३५ ता० ३ जून) को (स्वर्गीय) श्रीमान् भारतसम्राट् पंचम जार्ज महोदय ने इनको के० सी० एस० आई० के माननीय ख़िताब से भूषित किया।

महारावल के विवाह और संतति

इनके दो विवाह हुए हैं, जिनमें से बड़ी महाराणी (भिनगावाली) के गर्भ से एक राजकुमारी का जन्म हुआ है। दूसरा विवाह वि० सं० १९८४ चैत्र (ई० स० १९२८ मार्च) में कृष्णगढ़ के (स्वर्गीय) महाराजा मदनसिंह की कुंवरी से हुआ, जिससे तीन राजकुमारियां और तीन महाराजकुमार उत्पन्न हुए हैं।

ग्यारहवां अध्याय

महारावल के समीपी सम्बन्धी और मुख्य-मुख्य सरदार

डूंगरपुर राज्य में छोटे-बड़े कई सरदार हैं, जो तीन विभागों में विभक्त हैं। मेवाड़ की भांति वहां भी पहले और दूसरे दरजे के सरदार 'सोलह' और 'बत्तीस' कहलाते हैं। तीसरे दरजे में छोटे-छोटे टांकेदार और मुआफ़ीदार हैं जो 'गुडाबंदी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। महारावल के नज़दीकी रिश्तेदारों के ठिकाने अर्थात् सावली, ओडां और नांदलीवाले ताज़ीमी सरदार हैं तथा वे हवेली वाले कहलाते हैं।

पहले दरजे के सरदारों में कितने एक ठिकाने पुराने हैं और कुछ नये। पहले दरजे के सरदारों में उपरोक्त तीनों हवेलियां सहित इस समय चौदह ठिकाने हैं, जिनको महारावल की तरफ़ से ताज़ीम और पैर में स्वर्ण पहनने का सम्मान प्राप्त है। पहले ये सरदार अपने ठिकानों की आसामियों के दीवानी और फौजदारी मुक़द्दमे स्वयं फ़ैसल करते थे, परन्तु स्वेच्छाचार के कारण वि० सं० १९२५ (ई० स० १८६८) के लगभग उनके ये अधिकार जाते रहे। सरदारों को ख़िराज के अतिरिक्त नियत सवार और पैदलों के साथ महारावल की सेवा में विद्यमान रहना पड़ता है। बिना राज्य की आज्ञा के उन्हें दत्तक लेने का अधिकार नहीं है। जागीरदार की मृत्यु होने पर नवीन जागीरदार तलवार-बंदी का नज़राना देता है तभी वह वहां का स्वामी समझा जाता है। जिस व्यक्ति को जागीर मिली हो, उसके वंश में कोई न हो तो उस जागीर पर राज्य का अधिकार हो जाता है।

प्रथम वर्ग के सरदारों में सबसे बड़ी आय बनकोड़ा के सरदार की है, जिसका अनुमान पच्चीस हज़ार रुपये वार्षिक किया गया है। दो सरदार ऐसे हैं, जिनकी दस हज़ार से सत्रह हज़ार तक की आय है। सात ठिकाने ऐसे हैं जिनकी आय पांच हज़ार से दस हज़ार वार्षिक तक कूंती

गई है। बाक़ी अन्य सरदारों के एक हज़ार से पांच हज़ार तक की जागीरें हैं। पहले दरजे के सरदारों में बनकोड़ा, पीठ, बीछीवाड़ा, मांडव, ठाकरड़ा, चीतरी, लोड़ावल, बमासा और सेमलवाड़ावाले चौहान हैं। सोलज व रामगढ़ के सरदार सीसोदिया चूंडावत; साबली, ओड़ां और नांदलीवाले महारावल के वंश के गुहिलोत अहाड़ा हैं।

दूसरे दरजे के सरदारों के ठिकानों की (जिनको बत्तीस कहते हैं) संख्या इस समय पन्द्रह है। उनमें पादरड़ी बड़ी, पादरड़ी छोटी, गडमाला, घगेरी, साकोदरा, चीखली, गामड़ा, बामनिया और वालाई के सरदार चौहान; मांडा का सरदार सोलंकी; पारड़ा-सकानी, पारड़ा थूर का सरदार सीसोदिया चूंडावत; नठावा का सरदार सीसोदिया राणावत, खेड़ा का सरदार कछवाहा और गामड़ी व मांडवा के सरदार गहलोत अहाड़ा हैं। इनमें सबसे बड़ी आय का ठिकाना साकोदरा है, जिसके लगभग चार हज़ार की जागीर है।

डूंगरपुर राज्य में चौहान सरदारों का बड़ा समूह है। वे नाडोल के चौहानों के वंशज हैं और नाडोल की अवनति के समय बागड़ में जाकर बसे। वहां उनका बड़ा विस्तार हुआ। वे वागड़िये चौहान कहलाते हैं। जब वागड़ राज्य का बटवारा होकर उसके दो राज्य डूंगरपुर और बांसवाड़ा हुए तब कितने ही चौहान बांसवाड़े की अधीनता में चले गये और कितने एक डूंगरपुर में रहे। बागड़ में इन चौहानों की स्थिति सामान्य ही रही, पर सामूहिक बल अच्छा होने से वे शक्तिशाली माने जाते थे और अवसर विशेष पर उनकी बड़ी जमीयत एकत्रित हो जाती थी, जिससे कितने ही वर्षों तक इन दोनों राज्यों की बागडोर उन लोगों के हाथ में रही।

महारावलजी के सगे भाई

पूंजपुर

पूंजपुर का महाराज वीरभद्रसिंह, महारावल विजयसिंह का दूसरा पुत्र और वर्त्तमान महारावलजी का सहोदर भाई है। उसका जन्म वि० सं०

१६६५ फाल्गुन सुदि ८ (ई० स० १६०६ ता० २७ फ़रवरी) को महारावल विजयसिंह की ज्येष्ठ महाराणी देवेन्द्रकुमारी के गर्भ से हुआ। प्रारंभिक शिक्षा डूंगरपुर में प्राप्तकर वह अपने भ्राता (वर्त्तमान महारावल साहब) के साथ उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिए मेयो कालेज (अजमेर) भेजा गया, जहां ई० स० १६२६ में उसने डिप्लोमा परीक्षा पास की। फिर उसने इङ्गलैंड जाकर ऑक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी से एम० ए० की उपाधि प्राप्त की।

भूतपूर्व महारावल विजयसिंह ने अपनी विद्यमानता में ही वि० सं० १६७३ (ई० स० १६१७) में उस(वीरभद्रसिंह)को 'महाराज' की उपाधि देकर पूंजपुर का पट्टा प्रदान किया। इस समय वह डूंगरपुर राज्य का मुसाहिब आला है और लोकप्रिय तथा निरभिमानी सरदार है।

करोली

करोली का महाराज नागेन्द्रसिंह, महारावल विजयसिंह का तीसरा कुंवर है। वि० सं० १६७० फाल्गुन (अमांत, पूर्णिमांत चैत्र) वदि ७ (ई० स० १६१४ ता० १८ मार्च) को महाराणी देवेन्द्रकुमारी के गर्भ से उसका जन्म हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर वह वि० सं० १६७६ (ई० स० १६२२) में अजमेर के मेयो कॉलेज में प्रविष्ट हुआ, जहां उसने वि० सं० १६८७ (ई० स० १६३०) में डिप्लोमा परीक्षा पास की। अनन्तर उसने गवर्नमेंट कॉलेज अजमेर में भरती होकर ई० स० १६३४ में आगरा यूनिवर्सिटी की बी० ए० की परीक्षा पास की, जिसमें वह सर्व प्रथम रहा। इस समय वह इङ्गलैंड में उच्च परीक्षा के लिए अध्ययन कर रहा है।

भूतपूर्व महारावल विजयसिंह ने अपने जीवनकाल में ही वि० सं० १६७३ (ई० स० १६१७) में उसको 'महाराज' की पदवी देकर करोली की जागीर दी तब से वह करोली का महाराज कहलाता है। वह निरभिमानी और होनहार युवक है।

महाराज प्रद्युम्नसिंह

महाराज प्रद्युम्नसिंह महारावल विजयसिंह का चतुर्थ पुत्र और

वर्तमान महारावल साहब का सबसे छोटा भाई है। उसका जन्म वि० सं० १९७४ पौष (अमांत, पूर्णिमांत माघ) वदि ५ (ई० स० १९१८ ता० १ फ़रवरी) को बांकानेर राज्यांतर्गत सिंधावदर के झाला ठाकुर की पुत्री सज्जनकुमारी के गर्भ से हुआ है। राजकोट के राजकुमार कॉलेज की डिप्लोमा और मेयो कॉलेज की पोस्ट डिप्लोमा परीक्षा पास कर, इस समय वह इलाहाबाद में कृषि सम्बन्धी उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहा है।

हवेलीवाले

साबली

साबली के सरदार गुहिलोतवंशी (अहाडा) हैं और ठाकुर उनकी उपाधि है।

महारावल गिरधरदास का एक पुत्र हरिसिंह[1] था, जिसको साबली की जागीर मिली। हरिसिंह[2] का पांचवां वंशधर जसवंतसिंह हुआ, जिसके

---

(१) बड़वा और राणीमंगे की ख्यात में साबली के स्वामी को महारावल गिरधरदास के पुत्र केसरीसिंह का वंशज लिखा है। राणीमंगे की ख्यात में गिरधरदास के एक पुत्र का नाम हरीसिंह लिखा है, परन्तु उसको कौनसा ठिकाना मिला और उसकी औलाद में कौन है, इसका कुछ भी उल्लेख नहीं है। सैयद सफ़दरहुसेनखां ने साबलीवालों को हरिसिंह का वंशज बतलाया है। उसी के आधार पर यहां साबली के सरदार को हरिसिंह का वंशज लिखा है।

(२) वंशक्रम—(१) हरिसिंह (२) पृथ्वीसिंह (३) रत्नसिंह (४) धीरतसिंह (५) ज़ालिमसिंह (६) जसवंतसिंह (७) अभयसिंह (८) गुलाबसिंह (९) शंभुसिंह और (१०) गुमानसिंह।

राणीमंगे की ख्यात में साबली की वंशावली केसरीसिंह से आरम्भ कर उसके पीछे क्रमशः जयसिंह और अजीतसिंह के नाम देकर उनका उत्तराधिकारी धीरतसिंह को बतलाया है। उसमें हरिसिंह, पृथ्वीसिंह और रत्नसिंह का नाम नहीं है, जिससे ज्ञात होता है कि केसरीसिंह का वंश अजीतसिंह तक रहकर समाप्त हो गया हो और फिर हरिसिंह का वंशज धीरतसिंह वहां का स्वामी हुआ हो। इसी से सैयद सफ़दरहुसेन ने उसे हरिसिंह का वंशज लिखा हो।

चार पुत्र अभैसिंह, भैरूंसिंह, उदयसिंह और लछमनसिंह हुए। जसवन्तसिंह का उत्तराधिकारी अभैसिंह हुआ और उदयसिंह डूंगरपुर की गद्दी पर बैठा। लछमनसिंह को ओडां और भैरूंसिंह को मांडवा की जागीर मिली। अभैसिंह का पुत्र गुलाबसिंह निःसन्तान था, इसलिए उसने अपने भाई भैरूंसिंह के पुत्र शंभुसिंह को गोद लिया। उस (शंभुसिंह) का उत्तराधिकारी गुमानसिंह हुआ, जो साबली का वर्त्तमान सरदार है।

ओडां

ओडां के स्वामी महारावल गिरधरदास के छोटे पुत्र हरिसिंह[1] के वंशज हैं।

साबली के ठाकुर जसवन्तसिंह के चार पुत्र थे, उनमें से ज्येष्ठ पुत्र अभैसिंह के वंशज साबली के स्वामी हैं। तीसरा पुत्र उदयसिंह डूंगरपुर राज्य का स्वामी हुआ। चौथे लक्ष्मणसिंह[2] को उदयसिंह ने महारावल हो जाने पर वि० सं० १९१६ (ई० स० १८५९) में ओडां की जागीर और पैर में सुवर्ण पहनने की प्रतिष्ठा प्रदान की, जिससे उसकी गणना प्रथम वर्ग के सरदारों में हुई। लक्ष्मणसिंह निःसंतान था, इसलिए उसने अपने बड़े भाई भैरूंसिंह मांडवावाले के चौथे पुत्र पर्वतसिंह को दत्तक लिया। उसका पुत्र नाहरसिंह ओडां का वर्त्तमान स्वामी है।

नांदली

नांदली के स्वामी महारावल जसवन्तसिंह (प्रथम) के वंशज हैं और ठाकुर उनका खिताब है।

(१) देखो साबली का वृत्तान्त पृ० २००, टिप्पण संख्या २।

(२) वंशक्रम—(१) लक्ष्मणसिंह, (२) परबतसिंह, (३) नाहरसिंह।

"रूलिंग प्रिंसिज़, चीफ़्स एंड लीडिंग परसोनेजिज़ इन् राजपूताना एण्ड अजमेर" के अब तक के संस्करणों में महाराज लक्ष्मणसिंह को महारावल जसवन्तसिंह का वंशज बतलाया है, जो ठीक नहीं है। वह तो साबली के ठाकुर जसवन्तसिंह का पुत्र था, जैसा कि बड़वे और राणीमंगे की ख्यात तथा राज्य के पत्रादिक से ज्ञात होता है।

महारावल जसवन्तसिंह (प्रथम) का दूसरा पुत्र फ़तहसिंह[1] था, जिसके पौत्र प्रतापसिंह को महारावल खुमाणसिंह ने नांदली की जागीर दी। प्रतापसिंह का क्रमानुयायी देवीसिंह हुआ। उसके पश्चात् हिन्दूसिंह और हिम्मतसिंह क्रमशः नांदली के स्वामी हुए। महारावल जसवन्तसिंह (दूसरे) ने, जब प्रतापगढ़ का कुंवर दलपतसिंह पुनः प्रतापगढ़ जाकर अपने दादा सामंतसिंह की गद्दी बैठ गया, तब हिम्मतसिंह के पुत्र मोहकमसिंह को गोद लेना चाहा, जो वास्तव में हक़दार भी था, परन्तु इस कार्य में उसने अंग्रेज़ सरकार की आज्ञा न ली। सूरमा अभयसिंह और सोलंकी उदयसिंह भी, जो उस समय डूंगरपुर राज्य के कर्त्ताधर्त्ता थे, महारावल के इस कार्य के विरुद्ध थे। इस गोद के मामले में जब उपद्रव बढ़ने की आशंका हुई तो सरकार ने महारावल को मोहकमसिंह को गोद लेने से रोक दिया, परन्तु फिर भी उक्त दोनों सरदारों ने उपद्रव कर ही दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि महारावल जसवन्तसिंह वृन्दावन भेजा गया और नांदली का ठाकुर हिम्मतसिंह क़ैद हुआ तथा महारावल उदयसिंह (दूसरा) सावली से गोद जाकर डूंगरपुर के सिंहासन पर बैठा। उसने वि० सं० १६०५ (ई० स० १८४८) में उस(हिम्मतसिंह)को क़ैद से मुक्त कर नांदली का पट्टा पीछा बहाल कर दिया। हिम्मतसिंह की मृत्यु होने पर उसका पुत्र मोहकमसिंह नांदली का स्वामी हुआ। उसके पीछे उम्मेदसिंह और फ़तहसिंह क्रमशः नांदली के ठाकुर हुए। फ़तहसिंह का पुत्र जसवन्तसिंह इस समय नांदली का स्वामी है।

ताज़ीमी सरदार

बनकोड़ा

बनकोड़ा के सरदार वागड़िये चौहान हैं और ठाकुर उनकी उपाधि है। नाडोल के राजा आसराज (अश्वराज) के वंशजों में से मुंधपाल वागड़

---

(१) वंशक्रम—(१) फ़तहसिंह, (२) पृथ्वीसिंह, (३) प्रतापसिंह, (४) देवीसिंह, (५) हिन्दूसिंह, (६) हिम्मतसिंह, (७) मोहकमसिंह, (८) उम्मेदसिंह, (९) फ़तहसिंह (दूसरा), (१०) जसवन्तसिंह।

में चला गया। जब मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) ने वि० सं० १५७७ (ई० स० १५२०) में ईडर के राव रायमल राठोड़ की सहायतार्थ निज़ामुल्मुल्क (मलिकहुसेन बहमनी) पर, जो गुजरात के सुल्तान मुज़फ्फ़र शाह की तरफ़ से ईडर का हाकिम था, चढ़ाई की उस समय अहमद-नगर की लड़ाई में सुंधपाल का वंशज चौहान डूंगरसी बड़ी वीरता से लड़-कर मारा गया। उसके कई भाई-बेटे भी मारे गये और डूंगरसी के पुत्र कान्हसिंह ने बड़ी वीरता दिखलाई।

अहमदनगर के क़िले के दरवाज़े के किवाड़ तोड़ने के लिए जब हाथी आगे बढ़ाया गया, तब वह उनमें लगे हुए तीक्ष्ण भालों के कारण दरवाज़े पर मुहरा न कर सका। यह देखकर वीर कान्हसिंह ने भालों के आगे खड़े होकर हाथी को अपने बदन पर झोंक देने के लिए महावत से कहा। निदान महावत के वैसा ही करने पर हाथी ने कान्हसिंह पर मोहरा किया जिससे किवाड़ तो टूट गये, पर कान्हसिंह का शरीर छिन्न-भिन्न होजाने से उसकी मृत्यु हो गई[1]। डूंगरसी का छोटा पुत्र लालसिंह गुजरात के सुल्तान बहादुरशाह की चित्तोड़गढ़ की चढ़ाई[2] के समय काम आया। उसको महारावल पृथ्वीराज ने बोरी का पट्टा दिया था।

लालसिंह के पुत्र वीरभानु और महारावल सहसमल का परस्पर विरोध हो गया था, जिससे उसने उसकी जागीर छीन ली, तो भी वह (वीरभानु) राजद्रोही न हुआ। महारावल पूंजा के समय महाराणा जगत्-सिंह ने अपने प्रधान अक्षयराम कावड़िये को ससैन्य डूंगरपुर पर भेजा, तो उस(वीरभानु)का पुत्र सूरजमल महारावल की सेना के साथ रहकर लड़ता हुआ काम आया। इस स्वामिभक्ति के उपलक्ष्य में उस (सूरजमल) के पुत्र परसा[3] को बनकोड़े की जागीर दी गई। परसा का सातवां वंशधर

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात, भाग पहला; पृ० १६१।

(२) वही; भाग पहला; पृ० १७०, टिप्पण १।

(३) वंशक्रमः—(१) परसा, (२) केसरीसिंह, (३) माधसिंह, (४) लाल-सिंह, (५) नाहरसिंह, (६) पृथ्वीसिंह, (७) जालिमसिंह, (८) भारतसिंह,

भारतसिंह महारावल फ़तहसिंह के समय वि० सं० १८५७ (ई० स० १८००) में मेड़तिया राठोड़ सरदारसिंह के हाथ से मारा गया, जिससे उसके पुत्र परबतसिंह को मूंडकटी में एक गांव दिया गया। परबतसिंह का पांचवां वंशधर सज्जनसिंह इस समय बनकोड़े का सरदार है और बांसवाड़े राज्य की तरफ़ से भी मौर गांव उसकी जागीर में है।

पीठ

पीठ के सरदार भी चौहान मुंधराज के वंशज हैं और ठाकुर उनकी पदवी है। मुंधराज के वंश में चौहान बाला हुआ, जिसका पुत्र हाथी था। उसका पौत्र अखेराज हुआ, जिसने महारावल आसकरण के समय पीठ की जागीर पाई। अखेराज के पश्चात् अभैराम, दयालदास, सुजानसिंह, अमरसिंह, जैतसिंह, बख़्तसिंह, सूरजमल और केसरीसिंह क्रमशः पीठ के स्वामी हुए। केसरीसिंह निःसंतान था, इसलिए साकोदरा से दीपसिंह दत्तक लिया गया। दीपसिंह का उत्तराधिकारी जोरावरसिंह हुआ जिसका पुत्र संग्रामसिंह पीठ का वर्त्तमान सरदार है, जो इस समय महारावल के हाउस-होल्ड का ऑफ़िसर है।

बीछीवाड़ा

बीछीवाड़े के सरदार पूरबिये चौहान हैं और ठाकुर उनकी उपाधि है।

वि० सं० १५८४ (ई० स० १५२७) में मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह (सांगा) और मुग़ल बादशाह बाबर के बीच बयाना के पास खानवे के मैदान में युद्ध हुआ, उस समय मैनपुरी (इटावा) की तरफ़ से चौहान चन्द्रभान ४००० सवारों के साथ आकर महाराणा की सेना में सम्मिलित हुआ और उक्त युद्ध में मारा गया, जिसके वंशजों के अधिकार में मेवाड़ में बेदला और पारसोली के सरदार हैं। चन्द्रभान के पुत्रों में से एक

(९) परबतसिंह, (१०) वीरमदेव, (११) केसरीसिंह (दूसरा), (१२) दलपतसिंह, (१३) किशनसिंह, (१४) सज्जनसिंह।

दलपत[1] था, जिसका बेटा केशवराव[2] हुआ, जो डूंगरपुर के महारावल की सेवा में जा रहा। उसका पुत्र सामंतसिंह (शामसिंह) हुआ, जिसको वहां पर बीछीवाड़े की जागीर मिली। सामंतसिंह का १० वां वंशधर धीरतसिंह था, जिसके तीन पुत्र इंद्रसिंह, अमरसिंह और नाहरसिंह हुए। धीरतसिंह के पीछे इंद्रसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ, पर वह निःसन्तान था, इसलिए उसका छोटा भाई अमरसिंह वहां का स्वामी बना, किन्तु वह भी अपुत्र मरा इसलिए उसके कुटुंबियों में से मोहबतसिंह बीछीवाड़े का स्वामी हुआ, जो इस समय विद्यमान है।

मांडव

मांडव के सरदार चौहान हैं और ठाकुर उनकी उपाधि है।

बनकोड़ा के चौहान ठाकुर लालसिंह के तीन पुत्र नाहरसिंह, सुरतानसिंह और दौलतसिंह थे। नाहरसिंह बनकोड़े का स्वामी रहा और

(१) कर्नल वॉल्टर ने अपनी पुस्तक 'बायोग्राफ़िकल स्केचिज़ ऑव दि चीफ़्स ऑव मेवाड़' के पृ० १५ में बेदले की पीढ़ियों में चन्द्रभान और संग्रामसिंह के बीच समरसी, भीखम, भीमसेन, देवीसेन, रूपसेन और दलपत के नाम दिये हैं, जिनको एक दूसरे का पुत्र मानना ठीक नहीं है, क्योंकि खानवे का युद्ध वि० सं० १५८४ (ई० स० १५२७) में हुआ और संग्रामसिंह वि० सं० १६२४ में अकबर की चित्तोड़ की चढ़ाई के समय मारा गया। इन दोनों घटनाओं के बीच केवल ४० वर्ष का अन्तर है, जो बहुत थोड़ा है। इस अवस्था में चन्द्रभान और संग्रामसिंह के बीच में ६ पीढ़ी का होना नितांत असंभव है। संभव है कि चन्द्रभान और संग्रामसिंह के बीच के नामवाले (समरसी, भीखम, भीमसेन, देवीसेन, रूपसेन और दलपत) चन्द्रभान के पुत्र हों। भाटों की ख्यातों में इतिहास के अंधकार की दशा में चौदहवीं शताब्दी के बाद के भी कई नाम उलट-पुलट लिखे गये हैं। इसी प्रकार उन्होंने इतिहास के अंधकार की दशा में इन छः नामों को चन्द्रभाम के पुत्र न लिखकर क्रमशः एक दूसरे के पुत्र लिख दिया हो।

(२) वंशक्रम—(१) केशवराव, (२) सामंतसिंह, (३) जगत्सिंह, (४) रामसिंह, (५) जोरावरसिंह, (६) अनोपसिंह, (७) तख्तसिंह, (८) कुशलसिंह, (९) पृथ्वीसिंह, (१०) सूजा, (११) बख्तसिंह, (१२) धीरतसिंह, (१३) इन्द्रसिंह, (१४) अमरसिंह, (१५) मोहब्बतसिंह।

सुरतानसिंह[1] ने महारावल शिवसिंह के समय अच्छी सेवा की, जिससे उक्त महारावल ने वि० सं० १८१७ (ई० स० १७६०) में उसको १२ गांव जागीर में दिये। तब से उसकी गणना ताज़ीमी सरदारों में होकर मांडव का अलग ठिकाना क़ायम हुआ। सुरतानसिंह का पुत्र प्रतापसिंह हुआ, जिसके पांच बेटे थे, उनमें से ज्येष्ठ पद्मसिंह मांडव का स्वामी रहा। दूसरे बेटे दुरजनसिंह को ठाकरड़े का पट्टा मिला और तीसरा अर्जुनसिंह गढ़ी (बांसवाड़ा राज्य) गोद गया (डूंगरपुर राज्य में गढ़ी के सरदार का मुख्य गांव चीतरी है)। पद्मसिंह का उत्तराधिकारी उसका पुत्र भैरूंसिंह हुआ। भैरूंसिंह का तीसरा वंशधर दलपतसिंह निःसंतान था, जिससे वर्त्तमान सरदार उम्मेदसिंह गामड़ा से गोद गया। बांसवाड़ा राज्य की तरफ़ से यहां के सरदार को नवागांव जागीर में है।

ठाकरड़ा

ठाकरड़ा के सरदार चौहान हैं और ठाकुर उनकी उपाधि है।

मांडव के ठाकुर प्रतापसिंह का दूसरा पुत्र दुर्जनसिंह[2] महारावल फ़तहसिंह के समय राजमाता के वध-कर्त्ता ऊमा सूरमा को पकड़ लाया, जिसपर उक्त महारावल ने दुर्जनसिंह को ठाकरड़े का पट्टा दिया। दुर्जनसिंह निःसंतान था, इसलिए उसका छोटा भाई अर्जुनसिंह उसका उत्तराधिकारी बना, परन्तु वह बांसवाड़ा राज्य के गढ़ी (चीतरी-डूंगरपुर राज्य) के सरदार के यहां गोद गया, तब उस (अर्जुनसिंह) का छोटा भाई भीमसिंह ठाकरड़े का स्वामी हुआ। भीमसिंह के पुत्र गुलाबसिंह ने महारावल उदयसिंह (दूसरे) के समय कुछ वर्ष तक डूंगरपुर राज्य के मंत्री-पद का कार्य किया था। गुलाबसिंह के छोटे भाई दौलतसिंह को गामड़े की जागीर

(१) वंशक्रम—(१) सुरतानसिंह (२) प्रतापसिंह (३) पद्मसिंह (४) भैरूंसिंह (५) डूंगरसिंह (६) सूरजमल (७) दलपतसिंह (८) उम्मेदसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) दुर्जनसिंह (२) अर्जुनसिंह (३) भीमसिंह (४) गुलाबसिंह (५) उदयसिंह (६) केसरीसिंह (७) विशनसिंह (८) दुर्गानारायणसिंह।

मिली। उस(गुलाबसिंह)के पश्चात् उसका पुत्र उदयसिंह तथा उसके पीछे केसरीसिंह ठाकरड़े का स्वामी हुआ। उस(केसरीसिंह)का पौत्र दुर्गानारायणसिंह इस समय वहां का सरदार है और बांसवाड़े की तरफ़ से खेड़ा रोहानियां उसकी जागीर में है।

सोलज।

सोलज के स्वामी मेवाड़ के सुप्रसिद्ध रावत चूंडा के वंशधर हैं और ठाकुर उनकी उपाधि है।

सलूंबर के रावत कृष्णदास के एक पुत्र विट्ठलदास का वंशधर रूपसिंह[1] था। उसे डूंगरपुर के महारावल रामसिंह ने सोलज की जागीर दी। रूपसिंह के पश्चात् पूंजा, बुधसिंह, रत्नसिंह, कुबेरसिंह और गुलाबसिंह वहां के सरदार हुए, परन्तु उस(गुलाबसिंह)के संतान न होने से उसका भाई दुर्जनसिंह ठिकाने का स्वामी हुआ। दुर्जनसिंह के भी कोई संतान न थी, इसीलिए पारड़े से मोहबतसिंह को गोद लिया। उसका पौत्र फ़तहसिंह सोलज का वर्त्तमान सरदार है।

बमासा।

बमासा के स्वामी चौहानों की माधावत शाखा से हैं और वे ठाकुर कहलाते हैं।

चौहान माधोसिंह[2] का पुत्र आसकरण और उसका सूरतसिंह हुआ। सूरतसिंह का बेटा उम्मेदसिंह और उसका नाहरसिंह था। नाहरसिंह का प्रपौत्र हंमीरसिंह था। उसके पश्चात् भवानीसिंह, उदयसिंह, फतहसिंह और

---

(१) वंशक्रम—(१) रूपसिंह, (२) पूंजा, (३) बुधसिंह, (४) रत्नसिंह, (५) कुबेरसिंह, (६) गुलाबसिंह, (७) दुर्जनसिंह, (८) मोहबतसिंह, (९) पहाड़सिंह, (१०) फ़तहसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) माधोसिंह, (२) आसकरण, (३) सूरतसिंह, (४) उम्मेदसिंह, (५) नाहरसिंह, (६) जालिमसिंह (७) दलेलसिंह, (८) हंमीरसिंह, (९) भवानीसिंह, (१०) उदयसिंह, (११) फ़तहसिंह, (१२) लालसिंह।

लालसिंह क्रमशः बमासा के ठाकुर हुए। महारावल विजयसिंह के समय वहां के अंतिम सरदार लालसिंह की निःसंतान मृत्यु हो जाने पर वह ठिकाना खालसा कर लिया गया, परन्तु फिर वि० सं० १९७४ (ई० स० १९१७ ता० १५ जुलाई) को उसी खानदान के ठाकुर सज्जनसिंह को आजीवन के लिए ठिकाना प्रदान किया गया, जो इस समय वहां का सरदार है।

लोड़ावल

लोड़ावल के स्वामी चंद्रभानोत चौहान हैं और ठाकुर उनका खिताब है।

महारावल पूंजा के समय चौहान मनोहरसिंह[1] को लोड़ावल की जागीर मिली। उसके पीछे बाघसिंह, सूरतसिंह, माधोसिंह, बानसिंह, हिन्दूसिंह, जोधसिंह, रणसिंह, भैरूंसिंह और विजयसिंह क्रमशः लोड़ावल के स्वामी हुए। वर्तमान सरदार सज्जनसिंह, विजयसिंह का प्रपौत्र है।

रामगढ़।

रामगढ़ के स्वामी चूंडावत सीसोदिये हैं और प्रसिद्ध रावत चूंडा के वंशधर हैं। उनका खिताब रावत है।

सलूंबर के रावत कृष्णदास का दसवां पुत्र विट्ठलदास था। उसके पुत्र रणछोड़दास के तीसरे बेटे कुशलसिंह का पुत्र कीर्तिसिंह एक दिन महारावल रामसिंह के समय डूंगरपुर गया और महारावल के बादल महल में ठहरा। आज्ञा लिये बिना ही महारावल के महल में ठहरने से महारावल उस पर बिगड़ उठा और तत्काल ही उसे बंदूक का निशाना बनाया। इस प्रकार उसके मारे जाने से चूंडावत उसका बदला लेने के लिए तैयार हो गये।

(१) वंशक्रम—(१) मनोहरसिंह, (२) बाघसिंह, (३) सूरतसिंह, (४) माधोसिंह, (५) बानसिंह, (६) हिंदूसिंह, (७) जोधसिंह, (८) रणसिंह, (९) भैरूंसिंह, (१०) विजयसिंह, (११) किशोरसिंह, (१२) शिवसिंह, (१३) सज्जनसिंह।

कीर्तिसिंह के कुटुम्बियों ने सलूंबर (मेवाड़) के रावत की सहायता पाकर डूंगरपुर पर चढ़ाई की, उस समय महारावल ने उनका बल अधिक देखकर सुलह के लिए प्रयत्न किया और विवश होकर उस (कीर्तिसिंह) के पुत्र विजयसिंह[1] को मूंडकटी में दो गांव धताणा और रामगढ़ देकर इस कलह को शांत किया। वि० सं० १८१० (ई० स० १७५३) में मेवाड़ के महाराणा प्रतापसिंह (दूसरे) ने विजयसिंह को उसकी अच्छी सेवा के एवज़ में थाणे का पट्टा दिया और वि० सं० १८२४ में महाराणा अरिसिंह (दूसरे) ने मेवाड़ के गृह-कलह के समय अच्छी सेवा करने के उपलक्ष्य में उसको रावत का खिताब दिया। विजयसिंह के पुत्र सूरजमल ने ख़ुदादादखां सिंधी को, जिसने महारावल जसवंतसिंह (दूसरे) को क़ैद कर रक्खा था, मार डाला। सूरजमल के पश्चात् गंभीरसिंह हुआ। अनंतर उसका पुत्र प्रतापसिंह उक्त ठिकाने का स्वामी हुआ। प्रतापसिंह का उत्तराधिकारी उसका पुत्र खुमाणसिंह हुआ। खुमाणसिंह का बेटा बदनसिंह इस समय रामगढ़ का सरदार है[2]। राज्य की ओर से उपर्युक्त ठिकाना मूंडकटी में मिलने से वहां का ख़िराज माफ़ है।

चीतरी

चीतरी के सरदार चौहान शाखा के क्षत्रिय हैं और बांसवाड़ा राज्य की तरफ़ से भी उनको गढ़ी की बड़ी जागीर है तथा उनकी उपाधि राव है।

बनकोड़ा के ठाकुर परसा के पुत्र केसरीसिंह का एक बेटा अगरसिंह था, जो बांसवाड़े जा रहा और वहां उसने जागीर प्राप्त की। अगरसिंह का पुत्र उदयसिंह, डूंगरपुर के महारावल शिवसिंह के समय मोदी के ठाकुर को, जो बाग़ी हो गया था, पकड़ लाया। उस सेवा के एवज़ उसे वि० सं० १८१० (ई० स० १७५३) में चीतरी और घाटे का पट्टा मिला,

---

(१) वंशक्रम—(१) विजयसिंह, (२) सूरजमल, (३) गंभीरसिंह, (४) प्रतापसिंह, (५) खुमाणसिंह, (६) बदनसिंह।

(२) मेवाड़ में थाणे का ठिकाना दूसरे दर्जे (बत्तीस) के सरदारों में है।

जो उसकी मृत्यु के पीछे ज़ब्त हो गया था। उदयसिंह[1] का पुत्र जोधसिंह हुआ और जोधसिंह के बेटे जसवन्तसिंह के निःसन्तान होने से ठाकरड़े से अर्जुनसिंह वहां पर गोद गया, जिसने सिंधियों के उपद्रव के समय डूंगरपुर राज्य की अच्छी सेवा की। इसके उपलक्ष्य में वि० सं० १८७२ (ई० स० १८१५) में महारावल जसवन्तसिंह ने चीतरी व घाटे की जागीर उसे पुनः प्रदान की। अर्जुनसिंह का पुत्र रत्नसिंह था, जो मेवाड़ के महाराणा शंभुसिंह का श्वसुर था। वि० सं० १९२८ (ई० स० १८७१) में उक्त महाराणा ने उसे ताज़ीम और बांह-पसाव की इज़्ज़त देकर राव का ख़िताब दिया। वह भी निःसन्तान था, इसलिए ठाकरड़े से गंभीरसिंह को वि० सं० १९२८ (ई० स० १८७१) में गोद लिया, किन्तु उसके भी संतान नहीं हुई, जिससे उसने ठाकरड़े से अपने भाई उदयसिंह के पुत्र संग्रामसिंह को गोद लिया। संग्रामसिंह भी अपुत्र मरा तब गामड़ा गांव से रायसिंह गोद लिया गया, जिसका पुत्र हिम्मतसिंह चीतरी (गढ़ी) का वर्त्तमान सरदार है।

सैंमलवाड़ा।

सैंमलवाड़ा के सरदार चौहान हैं और ठाकुर उनकी पदवी है।

नाडोल के चौहान राव आसराज (अश्वराज) का एक वंशधर मुंधपाल वागड़ में चला आया, जिसके वंश में चौहान वाला हुआ, जिसका पुत्र डूंगरसी वीर राजपूत था। वाला का एक पुत्र हाथी था जिसके वंशजों में अर्थूणा (बांसवाड़े में) का ठिकाणा मुख्य है। हाथी के पौत्र रामसिंह के दो पुत्र कपूर और किशना हुए। कपूर अपने पिता का उत्तराधिकारी हुआ और किशना के आठवें वंशधर बलवन्तसिंह[2] को महारावल शिवसिंह

---

(१) वंशक्रम—(१) उदयसिंह (२) जोधसिंह (३) जसवंतसिंह (४) अर्जुनसिंह, (५) रत्नसिंह, (६) गंभीरसिंह, (७) संग्रामसिंह, (८) रायसिंह, (९) हिम्मतसिंह।

(२) वंशक्रम—(१) बलवंतसिंह, (२) अजबसिंह, (३) सरदारसिंह, (४) प्रतापसिंह, (५) परबतसिंह, (६) भारतसिंह, (७) कल्याणसिंह, (८) मानसिंह, (९) केसरीसिंह, (१०) गोपालसिंह, (११) कालूसिंह।

ने सैंमलवाड़े की जागीर दी। बलवंतसिंह के पीछे अजयसिंह, सरदारसिंह, प्रतापसिंह, परवतसिंह, भारतसिंह, कल्याणसिंह और मानसिंह क्रमशः सैंमलवाड़ा के स्वामी हुए। मानसिंह का उत्तराधिकारी केसरीसिंह हुआ, परन्तु वह शीघ्र ही मर गया और उसके कोई संतान न थी इसलिए उसका चचा गोपालसिंह (मानसिंह का भाई) सैंमलवाड़े का स्वामी हुआ, जिसकी वि० सं० १६८३ (ई० स० १६२६) में मृत्यु हुई। उसको महारावल विजयसिंह ने वि० सं० १६७४ (ई० स० १६१७) में ताज़ीम देकर सम्मानित किया। गोपालसिंह का उत्तराधिकारी उसका पुत्र कालूसिंह हुआ, जो सैंमलवाड़े का वर्त्तमान सरदार है।

द्वितीय श्रेणी के सरदार

नम्बर	ठिकाना	खांप	उपाधि सहित सरदार का नाम	विशेष वृत्त
१	वालाई	चौहान	ठाकुर रूपसिंह	
२	वगेरी	चौहान	ठा० खुमाणसिंह	
३	पादरड़ी (बड़ी)	चौहान	ठा० प्रतापसिंह	
४	साकोद्रा	चौहान	ठा० शिवसिंह	
५	मांडा	सोलंकी	ठा० जवानसिंह	
६	नठावा	सीसोदिया (राणावत)	ठा० जसवंतसिंह	
७	पारडा-सकानी	सीसोदिया (चुंडावत)	ठा० उम्मेदसिंह	
८	चीखली	चौहान	ठा० मोतीसिंह	
९	गामड़ी-आड़ा	गेहलोत (अहाड़ा)	ठा० विजयसिंह	
१०	मांडवा	गेहलोत (अहाड़ा)	ठा० उम्मेदसिंह	
११	घड़माला	चौहान	ठा० सरूपसिंह	
१२	खेड़ा कछुवासा	कछवाहा	ठा० दलेलसिंह	
१३	पादरड़ी (छोटी)	चौहान	ठा० हिम्मतसिंह	
१४	गामड़ा वामनिया	चौहान	ठा० रणजीतसिंह	
१५	पारड़ा थूर	सीसोदिया (चुंडावत)	ठा० गुमानसिंह	

परिशिष्ट संख्या १

गुहिल से लगाकर वागड़ राज्य के संस्थापक सामंतसिंह तक मेवाड़ के राजाओं की वंशावली।

१ गुहिल
२ भोज
३ महेन्द्र
४ नाग (नागादित्य)
५ शीलादित्य (शील) वि० सं० ७०३
६ अपराजित वि० सं० ७१८
७ महेन्द्र (दूसरा)
८ कालभोज (बापा) वि० सं० ७९१-८१०
९ खुंमाण वि० सं० ८१०
१० मत्तट
११ भर्तृभट (भर्तृपट्ट)
१२ सिंह
१३ खुंमाण (दूसरा)
१४ महायक
१५ खुंमाण (तीसरा)
१६ भर्तृभट (भर्तृपट्ट दूसरा) वि० सं० ९९९,१०००
१७ अल्लट वि० सं० १००८, १०१०
१८ नरवाहन वि० सं० १०२८
१९ शालिवाहन
२० शक्तिकुमार वि० सं० १०३४
२१ अंबाप्रसाद
२२ शुचिवर्मा

२३ नरवर्मा

२४ कीर्तिवर्मा

२५ योगराज

२६ वैरट

२७ हंसपाल

२८ वैरिसिंह

२९ विजयसिंह वि० सं० ११६४, ११७३

३० अरिसिंह

३१ चोड़सिंह

३२ विक्रमसिंह

३३ रणसिंह (कर्णसिंह)

- मेवाड़ की रावल शाखा
  - ३४ क्षेमसिंह
    - ३५ सामंतसिंह वि० सं० १२२८-३६ पहले मेवाड़ का फिर वागड़ का राजा हुआ।
    - कुमारसिंह — मेवाड़ की रावल शाखा जिसका अंत वि० सं० १३६० में हुआ।
- सीसोदे की राणा शाखा
  - माहप
  - राहप — मेवाड़ का वर्तमान राजवंश
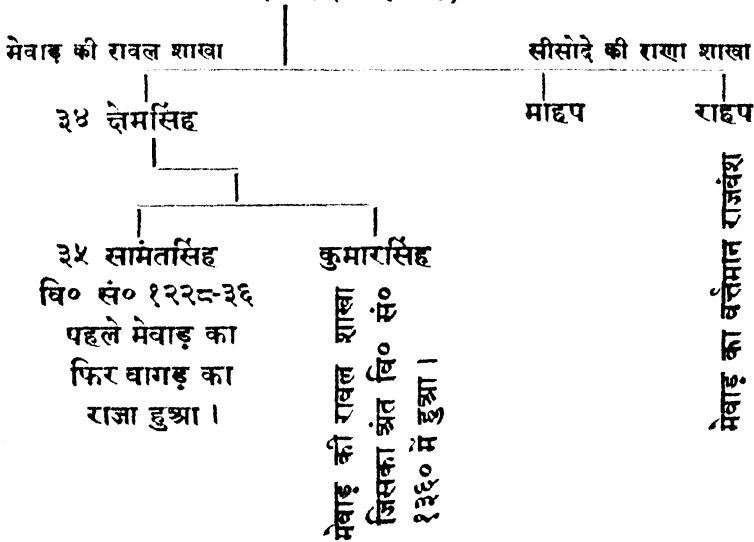
परिशिष्ट संख्या २

वागड़ राज्य के संस्थापक महारावल सामंतसिंह से लगाकर वर्त्तमान समय तक की डूंगरपुर के राजाओं की वंशावली

नाम	ख्यातों में उल्लिखित राज्याभिषेक के संवत्			शिलालेखों से ज्ञात संवत्	ग्रन्थकर्त्ता के मतानुसार गद्दीनशीनी का संवत्
	बड़वे की ख्यात	राणीमंगों की ख्यात	बांसवाड़े से प्राप्त एक पुरानी वंशावली		
महारावल सामंतसिंह	१२६६	०	०	१२२८-१२३६	०
,, जयतसिंह	०	०	०	०	०
,, सीहड़देव	१३०५	१३३५	०	१२७७-१२९१	०
,, विजयसिंह (जयसिंह)	०	०	०	१३०६-१३०८	०
,, देवपालदेव	१३१९	१३६५	०	०	०
,, वीरसिंहदेव	१३३५	०	०	१३४३-१३५९	०
,, भचुंड	१३६०	०	०	०	०
,, डूंगरसिंह	१३८८	०	१३९९	०	०
,, कर्मसिंह	१४१९	०	१४१९	०	०
,, कान्हड़देव	१४४१	१३८३	१४४१	०	०
,, प्रतापसिंह (पाता)	१४६३	१४०५	१४६३	०	०
,, गोपीनाथ (गजपाल, गोपाल या गेबा)	१४९८	१४४०	१४९८	१४८३-१४९८	०

महारावल सोमदास	१५१३	०	१५१३	१५०६–१५३६	०
,, गंगदास (गांगेय या गांगा)	१५३९	१४८१	१५३९	१५३६–१५५३	१५३६
,, उदयसिंह	१५६१	१५०४	१५६१	१५५५–१५८१	०
,, पृथ्वीराज	१५८३	१५१८	१५८६	१५८६–१६०४	१५८४
,, आसकरण	१५९६	१५८६	१५९६	१६०७–१६३६	०
,, सैंसमल	१६०७	१६२३	१६०७	१६३७–१६६२	१६३७
,, कर्मसिंह (दूसरा)	१६६३	१६२५	१६६३	१६६५	१६६३
,, पुंजराज (पूंजा)	१६६६	०	१६६६	१६६८–१७१३	१६६६
,, गिरधरदास	१७१७	१६५५	१७१३	१७१४–१७१७	१७१३
,, जसवंतसिंह	१७२३	१६६०	१७१७	१७२२–१७४४	१७१७
,, खुंमाणसिंह	१७४८	०	१७४८	१७५१–१७५८	१७४८
,, रामसिंह	१७६०	१७००	१७५८	१७५९–१७८६	१७५९
,, शिवसिंह	१८०७	१७२८	१७८६	१७८७–१८४२	१७८७
,, बैरिशाल	१८४१	१७८३	०	१८४२–१८४६	१८४२
,, फ़तहसिंह	१८४७	१७८६	०	१८५०–१८६४	१८४७
,, जसवन्तसिंह[1] (दूसरा)	१८६०	१८०७	०	१८६५–१८९८	१८६५
,, उदयसिंह (दूसरा)	१९०३	१९०३	०	०	१९०३
,, विजयसिंह	१९५३	१९५५	०	०	१९५४
,, लक्ष्मणसिंहजी (विद्यमान)	०	०	०	०	१९७५

(१) वि० सं० १९०२ पौष सुदि ६ को वृन्दावन में मृत्यु हुई।

परिशिष्ट—संख्या ३

डूंगरपुर राज्य के इतिहास का कालक्रम

महारावल सामन्तसिंह से गंगदास तक

वि० सं०	ई० स०	
१२२८	११७२	सामन्तसिंह का जगत गांव का शिलालेख।
(१२३१)[1]	(११७४)	सामन्तसिंह का गुजरात के राजा अजयपाल को युद्ध में घायल करना।
(१२३२)	(११७५)	सामन्तसिंह का मेवाड़ छोड़कर बागड़ में नया राज्य स्थापित करना।
१२३६	११७९	सामन्तसिंह के समय का बोरेश्वर के मंदिर का शिलालेख।
१२४२	११८५	गुहिलवंशी अमृतपाल का दानपत्र।
१२५३	११९६	सोलंकी राजा भीमदेव के समय का दीवड़ा गांव का लेख।
१२७७	१२२१	सीहड़देव का जगत गांव का शिलालेख।
१२९१	१२३४	सीहड़देव के समय का भैंकरोड़ गांव का शिलालेख।
१३०६	१२५०	विजयसिंह के समय का जगत गांव के देवी के मंदिर का शिलालेख।
१३०८	१२५१	विजयसिंह के समय का आड़ोल का शिलालेख।
(१३४४)	(१२८७)	वीरसिंहदेव का राज्याभिषेक।
१३४४	१२८७	वीरसिंहदेव का ताम्रपत्र।
१३४९	१२९३	वीरसिंहदेव का वड़ोदे गांव का शिलालेख।
१३५९	१३०२	वीरसिंहदेव का बरबासा गांव का शिलालेख।
१३५९	१३०२	वीरसिंहदेव का बमासा गांव का लेख।
(१४१५)	(१३५८)	डूंगरसिंह का राजधानी डूंगरपुर बसाना।

(१)—( ) इस चिह्न के भीतर दिये हुए संवत् आनुमानिक हैं, निश्चित नहीं।

वि० सं०	ई० स०	
१४५३	१३९६	डेसां गांव की बावड़ी का शिलालेख।
१४८३	१४२७	गोपीनाथ का ठाकरड़ा गांव के शिव-मंदिर का शिलालेख।
१४८९	१४३३	गुजरात के सुलतान अहमदशाह की वागड़ पर चढ़ाई।
१५१६	१४५९	मांडू के सुलतान महमूदशाह की चढ़ाई।
१५२५	१४६९	सोमदास के समय की आंतरी गांव की प्रशस्ति।
(१५३०)	(१४७४)	मांडू के सुलतान ग़यासुद्दीन की चढ़ाई।
१५३६	१४७९	चीतरी गांव का शिलालेख।
१५३६	१४७९	सोमदास का देहांत और गंगदास का राज्याभिषेक।
(१५५४)	(१४९७)	गंगदास का देहांत।

महारावल उदयसिंह (प्रथम)

(१५५४)	(१४९७)	उदयसिंह की गद्दीनशीनी।
१५७०	१५१४	राठोड़ राव रायमल की सहायतार्थ उदयसिंह का ईडर जाना।
१५७१	१५१४	निज़ामुलमुल्क को सज़ा देने के लिए अहमदनगर जाना।
(१५७५)	(१५१८)	वागड़ राज्य के दो विभाग करना।
१५७७	१५२०	गुजरात के सुलतान मुज़फ्फ़रशाह की वागड़ पर चढ़ाई।
१५८२	१५२५	गुजरात के शाहज़ादे बहादुरशाह को शरण देना।
(१५८२)	(१५२५)	बादशाह बाबर के नाम के पत्र को छीनना।
१५८३	१५२६	बहादुरशाह की वागड़ पर चढ़ाई।
१५८४	१५२७	खानवे के युद्ध में उदयसिंह का देहांत।

महारावल पृथ्वीराज

वि० सं०	ई० स०	
१५८४	१५२७	पृथ्वीराज का राज्य पाना।
१५८४	१५२७	जगमाल और पृथ्वीराज में विरोध होना।
१५८८	१५३१	बहादुरशाह का जगमाल को आधा राज्य दिलाना।
१५९३	१५३६	महाराणा उदयसिंह को लेकर धाय पन्ना का डूंगरपुर जाना।
१५९७	१५४१	भीलूड़ा गांव का शिलालेख।
१६००	१५४३	गोवाड़ी गांव का शिलालेख।
१६०४	१५४७	दोवड़ा गांव का शिलालेख।
(१६०६)	(१५४९)	पृथ्वीराज का देहांत।

महारावल आसकरण

(१६०३)	(१५४९)	आसकरण की गद्दीनशीनी।
१६१३	१५५७	हाजीखां के युद्ध में आसकरण का महाराणा उदयसिंह के साथ रहना।
१६१७	१५६१	वनेश्वर के पासवाले अम्बिकानाथ के मंदिर की प्रशस्ति।
(१६२१)	(१५६४)	बाज़बहादुर का डूंगरपुर में रहना।
१६३०	१५७३	आमेर के कुंवर मानसिंह की चढ़ाई।
१६३३	१५७६	आसकरण का शाही सेवा स्वीकार करना।
१६३५	१५७८	महाराणा प्रतापसिंह का डूंगरपुर पर सेना भेजना।
(१६३५)	(१५७८)	जोधपुर के राव चन्द्रसेन का डूंगरपुर में रहना।
(१६३७)	(१५८०)	आसकरण का देहांत।

महारावल सैंसमल

(१६३७)	(१५८०)	सैंसमल का राज्याभिषेक।
१६४३	१५८७	डूंगरपुर की नौलखा बावड़ी की प्रशस्ति।
१६४७	१५९१	माधवराय के मंदिर की प्रशस्ति।
(१६६३)	(१६०६)	सैंसमल का देहांत

महारावल कर्मसिंह (दूसरा)

वि० सं०	ई० स०	
(१६६३)	(१६०६)	कर्मसिंह की गद्दीनशीनी।
(१६६५)	(१६०८)	बांसवाड़े के महारावल उग्रसेन से युद्ध।
(१६६६)	(१६०९)	कर्मसिंह का देहावसान।

महारावल पुंजराज

(१६६६)	(१६०९)	पुंजराज की गद्दीनशीनी।
१६७२	१६१५	मेवाड़ के कुंवर कर्णसिंह के नाम डूंगरपुर का फ़रमान होना।
१६८४	१६२७	बादशाह शाहजहां से मन्सब पाना।
१६८६	१६२९	शाही सेना के साथ दक्षिण में जाना।
१७००	१६४३	गोवर्धननाथ के मंदिर की प्रशस्ति।
(१७१३)	(१६५७)	पुंजराज का स्वर्गवास।

महारावल गिरधरदास

(१७१३)	(१६५७)	गिरधरदास की गद्दीनशीनी।
१७१५	१६५८	महाराणा राजसिंह के नाम डूंगरपुर का फ़रमान होना।
(१७१७)	(१६६०)	महाराणा राजसिंह का डूंगरपुर पर सेना भेजना।
(१७१७)	(१६६१)	गिरधरदास का देहान्त।

महारावल जसवंतसिंह

(१७१७)	(१६६१)	जसवन्तसिंह का राज्याभिषेक।
१७३२	१६७६	राजसमुद्र की प्रतिष्ठा में महारावल का सम्मिलित होना।
१७३६	१६७९	महाराणा राजसिंह की मंत्रणा-सभा में जसवन्तसिंह का सम्मिलित होना।
१७३८	१६८१	शाहज़ादे अकबर का डूंगरपुर जाना।
(१७४८)	(१६९१)	जसवन्तसिंह का देहांत।

महारावल खुंमाणसिंह

वि० सं०	ई० स०	
(१७४८)	(१६९१)	खुंमाणसिंह का गद्दी बैठना।
१७५५	१६९८	महाराणा अमरसिंह का डूंगरपुर पर सेना भेजना।
१७५९	१७०२	महारावल का देहांत।

महारावल रामसिंह

१७५९	१७०२	रामसिंह का राज्याभिषेक।
१७७२	१७१५	वैद्यनाथ के शिवालय की प्रतिष्ठा पर महारावल का उदयपुर जाना।
१७७४	१७१७	महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) को डूंगरपुर का फ़रमान मिलना।
१७७४	१७१७	महाराणा संग्रामसिंह का डूंगरपुर पर सेना भेजना।
१७८५	१७२८	डूंगरपुर से ख़िराज वसूली का अधिकार ऊदाजी पंवार को मिलना।
१७८६	१७२९	राघोजी कदमराव आदि का डूंगरपुर में लूट-मार करना।
१७८६	१७३०	महारावल का देहांत।

महारावल शिवसिंह

१७८६	१७३०	शिवसिंह का राज्याभिषेक।
(१७८६)	(१७३०)	महाराणा संग्रामसिंह (दूसरे) का डूंगरपुर पर दबाव डालना।
१७९२	१७३५	बाजीराव पेशवा का डूंगरपुर जाना।
१८०२	१७४६	मल्हारराव होल्कर का डूंगरपुर जाना।
१८४२	१७८५	महारावल का स्वर्गवास।

महारावल वैरिशाल

वि० सं०	ई० स०	
१८४२	१७८५	महारावल का गद्दी बैठना।
१८४७	१७९०	महारावल का देहांत।

महारावल फ़तहसिंह

१८४७	१७९०	महारावल की गद्दीनशीनी।
१८५०	१७९४	महाराणा भीमसिंह की डूंगरपुर पर चढ़ाई।
१८५५	१७९९	महाराणा भीमसिंह का डूंगरपुर को घेरना।
१८६२	१८०५	सदाशिवराव का डूंगरपुर से रुपये वसूल करना।
१८६५	१८०८	महारावल का परलोकवास।

महारावल जसवंतसिंह (दूसरा)

१८६५	१८०८	महारावल का राज्य पाना।
१८६९	१८१२	सिंधियों का डूंगरपुर पर अधिकार होना।
१८७५	१८१८	अंग्रेज़ सरकार से संधि होना।
१८७६	१८२०	खिराज़ बाबत अहदनामा होना।
१८८०	१८२४	अंग्रेज़ सरकार का भीलों को दबाना।
१८८२	१८२५	कुंवर दलपतसिंह का प्रतापगढ़ से गोद आना।
१८९०	१८३३	दलपतसिंह का प्रतापगढ़ का स्वामी होना।
(१९०१)	(१८४४)	हिम्मतसिंह को गोद लेने का बखेड़ा।
१९०१	१८४४	महारावल का वृन्दावन भेजा जाना।
(१९०२)	(१८४५)	महारावल का वृन्दावन में स्वर्गवास।

महारावल उदयसिंह (दूसरा)

१९०३	१८४६	उदयसिंह का डूंगरपुर गोद आना।

वि० सं०	ई० स०	
१९०६	१८४९	सूरमा अभयसिंह एवं उदयसिंह सोलंकी को राज्य कार्य से पृथक् करना।
१९०९	१८५२	मुंशी सफ़दरखां का मुसाहब बनाया जाना।
१९११	१८५५	महारावल का पहला विवाह।
१९१३	१८५६	महाराजकुमार खुंमाणसिंह का जन्म।
१९१४	१८५७	ग़दर के समय की महारावल की सहायता।
१९१५	१८५८	महारावल का स्वतः राज्य-कार्य चलाना।
१९१८	१८६२	डूंगरपुर राज्य को गोद लेने की सनद मिलना।
१९२१	१८६४	महारावल की द्वारिका-यात्रा।
१९२३	१८६६	दीवानी फ़ौजदारी की अदालतों का सुधार।
१९२४	१८६७	भीलों का उपद्रव।
१९२५	१८६८	भीषण अकाल।
१९२५	१८६९	राजपूतों की लड़कियों को मारने की प्रथा को रोकना।
१९२५	१८६९	मुलज़िमों के लेन-देन का क़ौलक़रार।
१९२६	१८६९	महारावल का राजपूताने का दौरा।
१९२७	१८७०	कोटे के महाराव शत्रुशाल का डूंगरपुर में मेहमान होना।
१९३०	१८७३	महाराजकुमारी का जैसलमेर विवाह होना।
१९३०	१८७४	दीवान निहालचन्द की मृत्यु।
१९३१	१८७५	महाराजकुमार खुंमाणसिंह का रतलाम विवाह होना।
१९३२	१८७५	महाराणा सज्जनसिंह का बीछीवाड़े में मुक़ाम होना।
१९३३	१८७६	शिवलाल गांधी को दीवान बनाना।
१९३३	१८७६	महारावल का तीर्थ-यात्रा को जाना।
१९३४	१८७७	महारावल को क़ैसरेहिन्द दरबार का तमग़ा व झंडा मिलना।
१९३६	१८७९	महारावल का स्वर्ण का तुलादान करना।
१९३७	१८८०	दाण (चुंगी) का नया प्रबन्ध।

वि० सं०	ई० स०	
१९३७	१८८०	गेंजी का ठिकाना ज़ब्त होना।
१९३७	१८८१	राज्य में प्रथमवार मनुष्यगणना होना।
१९३८	१८८१	महाराणी देवड़ी का देहांत।
१९३९	१८८२	महारावल की आबू-यात्रा।
१९४३	१८८६	महाराजकुमार का दूसरा विवाह।
१९४३	१८८७	सरदारों की बैठकों का निर्णय होना।
१९४४	१८८७	महारावल के पौत्र विजयसिंह का जन्म।
१९५०	१८९३	महाराजकुमार का देहांत।
१९५४	१८९७	म्यूनीसिपेलिटी की स्थापना।
१९५४	१८९८	महारावल का देहांत।

महारावल विजयसिंह

१९५४	१८९८	महारावल का राज्याभिषेक।
१९५६	१९००	भीषण अकाल।
१९६३	१९०७	महारावल का पहला विवाह।
१९६४	१९०८	महाराजकुमार लक्ष्मणसिंह का जन्म।
१९६५	१९०९	महारावल को राज्याधिकार मिलना।
१९६५	१९०९	महाराजकुमार वीरभद्रसिंह का जन्म।
१९६७	१९१०	सम्राट् एडवर्ड सप्तम का परलोकवास।
१९६८	१९११	महारावल का बम्बई जाना।
१९६८	१९११	महारावल का दिल्ली दरबार में जाना।
१९६९	१९१२	महारावल को ख़िताब मिलना।
१९७०	१९१४	महाराजकुमार नागेन्द्रसिंह का जन्म होना।
१९७१	१९१४	यूरोपीय महायुद्ध का आरम्भ होना।
१९७२	१९१६	हिन्दू युनिवर्सिटी के शिलान्यासोत्सव पर महारावल का बनारस जाना।

वि० सं०	ई० स०	
१९७३	१९१७	महारावल का दोनों राजकुमारों को जागीर देना।
१९७४	१९१७	महारावल का दूसरा विवाह।
१९७४	१९१८	महारावल का शासन-सुधार करना।
१९७४	१९१९	महाराजकुमार प्रद्युम्नसिंह का जन्म।
१९७५	१९१८	महारावल का परलोकवास।

महारावल लक्ष्मणसिंहजी

१९७५	१९१८	महारावल का राज्याभिषेक।
१९७६	१९२०	महारावल का प्रथम विवाह।
१९८४	१९२७	महारावल की यूरोप-यात्रा।
१९८४	१९२८	महारावल को राज्याधिकार मिलना।
१९८४	१९२९	महारावल का दूसरा विवाह।

परिशिष्ट—संख्या ४

डूंगरपुर राज्य के इतिहास के प्रणयन में जिन जिन पुस्तकों से सहायता ली गई उनकी सूची ।

संस्कृत और प्राकृत

संस्कृत—

एकलिंगमाहात्म्य ।

काव्यमाला ।

कीर्तिकौमुदी (सोमेश्वर) ।

तीर्थकल्प (जिनप्रभसूरि) ।

पार्थपराक्रमव्यायोग (परमार प्रह्लादन) ।

राजप्रशस्तिमहाकाव्य (रणछोड़ भट्ट) ।

सुरथोत्सवकाव्य (सोमेश्वर) ।

हरिभूषणमहाकाव्य (गंगाराम) ।

प्राकृत—

पाइअलच्छीनाममाला (धनपाल) ।

पाइअसद्द महाएणवो (हरगोविन्ददास टीकमचन्द सेठ) ।

हिन्दी, डिंगल, मराठी, उर्दू, फ़ारसी आदि भाषाओं के ग्रंथ

हिन्दी—

अकबरनामा (मुंशी देवीप्रसाद) ।

ऐतिहासिक बातें (कविराजा बांकीदास) ।

जहांगीरनामा (मुंशी देवीप्रसाद) ।

जोधपुर राज्य की ख्यात ।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण), त्रैमासिक ।

बड़वे की ख्यात।
महाराणा उदयसिंह का जीवनचरित्र (मुंशी देवीप्रसाद)।
मुंहणोत नैणसी की ख्यात।
राजपूताने का इतिहास (गौरीशंकर-हीराचन्द ओझा)।
राणीमंगे की ख्यात।
वीरविनोद (महामहोपाध्याय कविराजा श्यामलदास)।
शाहजहांनामा (मुंशी देवीप्रसाद)।

डिंगल—

उदयप्रकाश (किशन कवि)।
भीमविलास (कृष्ण कवि)।
राजविलास (मान कवि)।
रायमलरासा।
वंशभास्कर (मिश्रण सूर्यमल्ल)।

मराठी—

धारकर्यां पंवारा चे महत्त्व व दर्जा (लेले तथा ओक)।
शिंदेशाही इतिहासांची साधनें (आनन्दराव भाऊ फालके)।
सिलेक्शन्स फ्रॉम दि सतारा राजाज़ एण्ड दि पेशवाज़ डायरीज़।

फ़ारसी, उर्दू—

डूंगरपुर राज्य का गज़ेटियर (सफ़दर हुसैन)।
तबक़ाते अकबरी (निज़ामुद्दीन अहमद बख़्शी)।
तारीखे फ़िरिश्ता (मुहम्मद क़ासिम फ़िरिश्ता)।
मासिरुल उमरा (शाहनवाज़ख़ां)।
मिराते अहमदी (ख़ातिमा, अलीमुहम्मदख़ां)।
मिराते सिकन्दरी (सिकन्दर)।
वक़ाये राजपूताना (मुंशी ज्वालासहाय)।

अंग्रेज़ी ग्रन्थ

Aberigh-mackay, G. R.—The Native Chiefs and their States (1877).
Aitchison, C. U.—Treaties, Engagements and Sanads.
Annual Reports of the Rajputana Museum, Ajmer.
Bayley—History of Gujrat.
Briggs, John—History of the Rise of the Mohammadan Power in India (Translation of Tarikh-i-Ferishta of Mohomed Kasim Ferishta).
Beveridge, A. S.—Translation of Tuzuk-i-Babri.
,, ,,—Translation of the Akbarnama.
Campbell, J. M.—Gazetteer of the Bombay Presidency.
Epigraphia Indica.
Erskine, K. D.—Gazetteer of the Dungarpur State.
Erskine, W.—History of India.
Forbes, A. K.—Rasmala.
Gaikwar Oriental series.
Gazetteer of the Banswara State.
Har Bilas Sarda (Dewan Bahadur)—Maharana Sanga.
Indian Antiquary.
Malcolm, J.—Memoirs of Central India.
Rajputana Gazetteer (A. D. 1879).
Rapson, E J.—Catalogue of the Coins of the Andhra Dynasty, the Western Kshatrapas, the Traikūṭaka Dynasty and the Bodhi Dynasty.
Rogers, A. & Beveridge, H.—Memoirs of Jahangir.
Ruling Princes, Chiefs and Leading Personages—Rajputana and Ajmer.
Rushbrook Williams—An Empire builder of the Sixteenth Century.
Syed Nawab Ali and Seddon—Mirat-i-Ahmadi, Supplement, Translated from the Persian of Ali Mohammed Khan.
Tod, James—Annals and Antiquities of Rajasthan.
Walter, Colonel—Biographical Sketches of the Chiefs of Mevwar.

अनुक्रमणिका

(क) वैयक्तिक

अ

ख

ह

(ख)

भौगोलिक

ग

घ

च

छ

ज

झ

ट

ठ

ड

ढ

त

थ

द

ध

न

प

फ

म

य

र

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५५	६	दुर्दश	दुर्दशा
५८	२८	सोमराज	सोमदास
७२	३	१४८०	१४७६
७२	४	वनेश्वर के मंदिर	वनेश्वर के पास के विष्णुमंदिर
७३	२०	ज़फ्नरखां	जफ़रखां
७८	५	नासीरखां	नासिरखां
९१	४	प्रतापगढ़	देवलिया
९५	२१	पांच लाख	चार लाख
९७	६	प्रतापगढ़	देवलिया
९७	१०	,,	,,
१०२	१७	घनेश्वर	धनेश्वर
११५	२०	मांडव	मांडवा
११५	२२	,,	,,
१३५	६	बंदा	बंदी
१३६	२५	भेड़तिया	मेड़तिया
१५२	२२	महारावल	महारावत
१५४	१८	,,	,,
१६३	१०	१६१६	१६१८
१६७	२०	१६२६	१६२५
२०१	५	भाई	चचा